शिव स्वरूप तथा शैव सिद्धान्त

(शिव पुराण तथा लिङ्ग-पुराण के विशेष सन्दर्भ में)

(बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय,झांसी की पी-एच.डी. उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध)
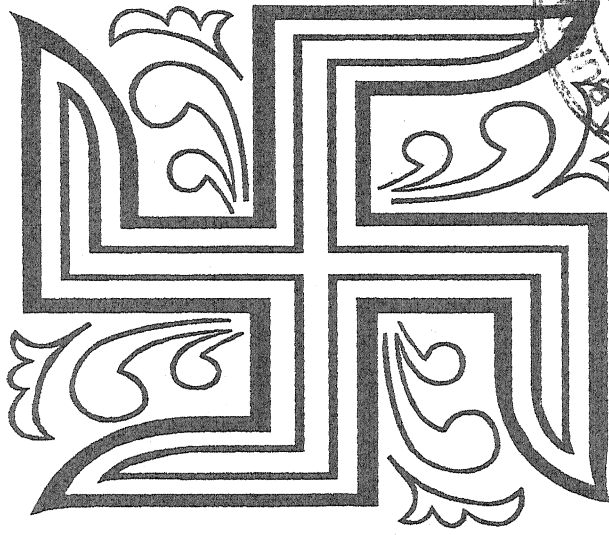
वर्ष-२००४

शोध पर्यवेक्षक :

डॉ. गदाधर त्रिपाठी

रीडर एवं अध्यक्ष : संस्कृत–विभाग

श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर महाविद्यालय

मऊरानीपुर (झाँसी) उ0 प्र0

शोध कर्त्री :
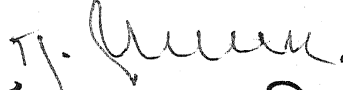
श्रीमती सीमा शुक्ला

श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मऊरानीपुर (झाँसी)

प्रमाण-पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि श्रीमती सीमा शुक्ला ने मेरे निर्देशन में निर्धारित समय तक रहकर अपना शोधकार्य पूर्ण किया है। यह इनकी मौलिक कृति है, जो इनकी अनुसन्धान दृष्टि को प्रकट करती है।

मैं इनकी सफलता की कामना करता हूँ।

फरवरी-२००४

डॉ. गदाधर त्रिपाठी

रीडर एवं अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग

श्री अग्रसेन स्नातकोत्तर महाविद्यालय

मऊरानीपुर (झाँसी)

प्राक्कथन :

ब्रह्मा, विष्णु और महेश में से मुझे महेश के स्वरूप और उनकी महत्ता जानने की इच्छा प्रारम्भ से ही रही है। जब मैंने अपना अध्ययन पूरा किया और शोध कार्य करने के लिए प्रवृत्त हुई तो पुराण साहित्य में शिव और विशेषतः शिव तथा लिङ्ग पुराण में शिव के स्वरूप का अध्ययन करना चाहा और उसी क्रम में यह विषय अनुसन्धान के लिए निश्चित कर लिया गया।

शिव के स्वरूप की और उनके दार्शनिक तत्त्व-चिन्तन की विशेषता यह है कि प्रारम्भ से लेकर आज तक जितना प्रचार-प्रसार और मान्यता शिव की है, वैसी और उतनी सम्भवतः श्री हनुमान जी को छोड़कर और किसी की नहीं है। दक्षिण से लेकर उत्तर तक और पूर्व से लेकर पश्चिम तक शिव एक ऐसे देव के रूप में प्रतिष्ठित हैं, जिनका पूजन-स्मरण बड़ी मात्रा में किया जाता है और जो सभी के लिए बहुतायत से मान्य और पूज्य हैं। इसी तरह से शिव तत्त्व का विचार भी प्रारम्भ काल से ही हुआ और पूरे साहित्य तथा पूरे देश में इसका दार्शनिक स्वरूप भी स्थिर हुआ,प्रचलित हुआ। यही आकर्षण मेरे लिए एक बड़ा आकर्षण हुआ, जिससे आकर्षित होकर मैंने इस विषय पर अपना शोध प्रबन्ध तैयार किया।

मेरे इस शोध प्रबन्ध की पृष्ठ भूमि में मेरे गुरु डॉ. गदाधर त्रिपाठी जी ही मुख्य रूप से हैं,जिनके मार्ग दर्शन में यह शोध प्रबन्ध तैयार हुआ।

मैं इनके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। डॉ० भगवतनारायण शर्मा, पूर्व प्राचार्य, तथा प्रो. ओमप्रकाश शास्त्री, अध्यक्ष, संस्कृत-विभाग, नेहरू महाविद्यालय, ललितपुर के मार्ग दर्शन का सौभाग्य भी मुझे मिला है इसलिए इनके प्रति भी मैं आभारी हूँ।

मेरे धर्मपिता श्री मदनगोपाल त्रिपाठी एवं मेरी धर्ममाता श्रीमती सुधा त्रिपाठी का आशीष मेरे लिए एक बड़ा सम्बल है जिसकी अपेक्षा मुझे सदा रहेगी। इसी तरह से मेरे पिता श्री रामचन्द्र शुक्ल, माता श्रीमती सरोज शुक्ल एवं भाई श्री नूतन शुक्ल भी इस कार्य की पूर्णता में परम हेतु रहे हैं, जिसके स्नेह और वात्सल्य के बिना यह कार्य पूर्ण नहीं हो सकता था। मैं इसके लिए स्वयम् को धन्यभागी मानती हूँ। मैं मेरे जीवन साथी श्री शैलेन्द्रकुमार त्रिपाठी के प्रति अपना विश्वास व्यक्त करती हुई इस शोध प्रबन्ध के टंकक श्री लक्ष्मीकान्त गुप्त के प्रति भी आभार व्यक्त करती हूँ साथ ही अन्य उन सभी के प्रति कृतज्ञ हूँ जिनका सहयोग किसी न किसी रूप में इस कार्य में रहा है।

श्रीमती सीमा शुक्ला

-श्रीमती सीमा शुक्ला

।। अनुक्रमणिका ।।

४. चतुर्थ अध्याय

(शैव दर्शन तथा सिद्धान्त)

दर्शन, दार्शनिक दृष्टि का प्रारम्भ, वेद और व्यापक तत्त्व, देवों में एकत्व, वेद और शिव, वेद और रुद्र, पशुप, शिव का औपनिषदिक स्वरूप, शैव दर्शन का स्वरूप, शैव सिद्धान्त, शैव सम्प्रदाय, पाशुपत मत और पशुपति, कापालिक, वीर अथवा लिंगायत मत, काश्मीरी शैव दर्शन, काश्मीरीय शैव दर्शन के सिद्धान्त, समीक्षा।

५. पंचम अध्याय

(पुराण रचना में दर्शन की पृष्ठ भूमि)

रुद्र की प्रारम्भिक परिकल्पना, उपनिषदों में रुद्र,शिव स्वरूप, उत्तरकालिक शिवस्वरूप, पुराणों में शिव के विविध रूप, रुद्र और शिव के स्वरूप का दार्शनिक विकास शैव सिद्धान्त का क्रमिक विकास, आगम ग्रन्थ और अपरकालिक शैव सिद्धान्त, समीक्षा एवं निष्कर्ष।

उद्घृत ग्रन्थ -सङ्केत सूची

क्रम सं०	ग्रन्थ सङ्केत	ग्रन्थ का नाम
१.	अ. पु.	अग्नि पुराण
२.	अथर्व.	अथर्ववेद (प्रथम खण्ड)
३.	अथर्व द्वितीय.	अथर्ववेद (द्वितीय खण्ड)
४.	अथर्वशिरस्	अथर्वशिरस् १०८ उपनिषद् (ज्ञानखण्ड)
५.	अ.सू.	अनुभव सूत्र
६.	ईशा.	ईशादिद्वादशोपनिषद्
७.	ई. (उ.स.)	ईशोपनिषद्
८.	ई. प्र. वि. (२)	ईश्वरप्रत्यभिज्ञा
९.	ऋक्	ऋग्वेद
१०.	ए. क. (२)	एपिग्राफाफिका कर्णाटिका भाग-२ एवं ३
११.	क. भ.	कल्याण (भगवल्लीलाङ्कः)
१२.	कल्याण (सं.)	कल्याण संस्कृति का अंक
१३.	कृ.य. तै. सं.	कृष्णयजुर्वेद तैत्तरीय संहिता
१४.	कौ. अ.	कौटिलीय अर्थशास्त्र
१५.	ग. पु.	गरुण पुराण
१६.	गी.	गीता
१७.	ज. वे. इ.	जनरल आफ वेंकटेश्वर इन्स्टीट्यूट

१८.	तं. आ.	तन्त्रालोक
१६.	तं. वि.	तन्त्रालोकविवृति
२०.	तै. सं.	तैत्तरीय संहिता
२१.	दे. भा.	देवी भागवत
२२.	निरुक्त	निरुक्त
२३.	प. सा.	परमार्थसार
२४.	प. पु. (उ.का.)	पद्‌म पुराण
२५.	प. पु.	पद्‌म पुराण
२६.	पा. भ. भा.	पातञ्जलि महाभाष्य
२७.	पु.	पुराणम्
२८.	पु. वि.	पुराण विमर्श
२६.	पु. मी.	पुराणमीमांसा श्रीकृष्णमति
३०.	पु. स.	पुराण समीक्षा
३१.	प्रश्न.	प्रश्नोपनिषद्
३२.	प्र. भा. सा.-१ (विष्ट)	प्राचीन भारतीय साहित्य (प्रथम भाग)
३३.	ब्र. पु.	ब्रह्माण्ड पुराण

३४.	बौ. वे. क. द.	बौद्ध वेदान्त एवं काश्मीर शैवदर्शन
३५.	भा. ३	भास्करी
३६.	म. भा.	महाभारत
३७.	म. पु. (१)	मत्स्य पुराण
३८.	मा. मा.	मालती माधव
३९.	मा. पु.	मार्कण्डेय पुराण
४०.	मै.	मैत्रायणी उपनिषद्
४१.	यजु.	यजुर्वेद
४२.	रि. मा. ऋ.	रिलिजन एण्ड माइथलाजी आफ दी ऋग्वेद
४३.	लिं. पु.	लिंगपुराणम्
४४.	लिं. पु. (हि.)	लिंग पुराण (हिन्दी टीका)
४५.	व. पु.	वराह पुराण
४६.	वा. पु.	वायु पुराण
४७.	वि. पु. (१)	विष्णु पुराण (प्रथम खण्ड)
४८.	बा. रा.	बाल्मीकि रामायण
४९.	वी. शै. प्र.	वीरशैवाचार प्रदीपिका
५०.	वै. को.	वैदिक कोश अ० सूर्यकान्त

५१.	वै. मा.	वैदिक माइथालाजी
५२.	वै. शै. धा. म.	वैष्णव शैव और अन्य अन्य धार्मिक मत
५३.	वृह.	वृहदारण्यकोपनिषद्
५४.	स्कन्द	स्कन्द पुराण
५५.	स. द. सं.	सर्वदर्शन संग्रह(हिन्दी टीक)
५६.	सं. सा. इ. (म.)	संस्कृत साहित्य का इतिहास अनु. श्री चारूचन्द्र शास्त्री
५७.	सं. श. कौ.	संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ्
५८.	सं. सि.	सम्बन्ध सिद्धिः
५९.	सि. कौ.	सिद्धान्त कौमुदी (बाल मनोरमा)
६०.	श्वे.	श्वेताश्वतरोपनिषद्
६१.	श. ब्रा.	शतपथ ब्राह्मण
६२.	शां. भा. (श्वे.)	शांकर भाष्य श्वेताश्वतरोपनिषद्
६३.	शि. तो.	शिवतोषिणी टीका
६४.	शि. दृ.	शिवदृष्टिः
६५.	शि. पु.	संक्षिप्त शिवपुराण
६६.	शि. म. पु.	शिवमहापुराण

६७.	शु. नी.	शुकनीतिसार
६८.	हि. स.	हिन्दू सभ्यता
६९.	हि. इ. लि. (१)	हिस्ट्री आफ अण्डियन लिटरेचर- भाग १
७०.	A. H. P.	Abhinava Gupta- An Historical & Philosophical Study (2)
71-	C. K.	Culture Heritage of Kasmir
72-	L. H. S. S.	Literalure and history of Southern Saivesm
73-	एन. एस. एस. पी.	Non DAULISM IN SAI AND SAKTA PHILO SOPHY
74-	Tr.	Travels-Tra-S Beal

प्रथम अध्याय

(शिव तथा लिंग पुराण की प्रारम्भिक उद्‌भावना)

प्रथम अध्याय

(शिव तथा लिंग पुराण की प्रारम्भिक उद्भावना)

रुद्र शिव स्वरूप, अक्षर रूप में रुद्र, विश्वचर रुद्र मूर्ति, शिव शक्ति, विश्वचर मूर्ति, रुद्र की चिकित्सक रूप मूर्ति, अन्य विविध रूप में रुद्र, उपनिषद् और शिव, शिव सूक्ष्म रूप में, शिव का सृष्टि कर्तृत्व, अथर्वशिरस् उपनिषद् में रुद्र, शिव स्वरूप, रुद्र की व्यापकता रुद्र का सृष्टि कर्तृत्त्व।

प्रथम अध्याय

(शिव तथा लिंग की प्रारम्भिक उद्भावना)

द्युत्यर्थक 'दिवु' धातु से निष्पन्न देव शब्द का अर्थ है- प्रकाश मान या कान्ति-मान। आचार्य यास्क ने इस शब्द के लिए दा, दीप, द्युत् और दिवु धातुओं का प्रयोग किया है।[1] आचार्य पाणिनि ने 'दिव्' धातु को द्युति, क्रीड़ा, विजिगीषादि अर्थों में प्रयुक्त किया है।[2] सामान्य रूप से देव अथवा देवता को जिस अर्थ में लिया जाता है, वह अर्थ है, सम्मान्य अथवा पूज्य। इसके साथ ही इन्हें अमर भी कहा और माना जाता है।[3] एक अन्य स्थान पर कहा गया है कि मनुष्य के आराध्य देव कहे गये हैं। इनमें से कुछ प्राकृतिक शक्तियों के रूप में हैं।[4]

प्राचीन वाङ्मय में ऋग्वेद यह संकेत करता है कि सृष्टि के आदि में ब्रह्मणस्पति ने कर्मकार के समान देवों को उत्पन्न किया। असत् अथवा अविद्यमान से सत् अर्थात् नाम, रूपादि का प्राकट्य हुआ। इसी प्रकार से वहाँ पर यह भी कहा गया है कि अदिति देवों की माता है। अदिति के पुत्र हैं- मित्र, वरुण, धाता, अर्यमा, अंश, भग, विवस्वान् तथा आदित्य। अदिति ने आदित्य को आकाश में स्थापित किया और वह शेष पुत्रों को लेकर देव लोक में चली गयी।[5]

---

१. देवो दानाद् वा दीपनाद् वा द्योतनाद् वा द्युस्थानो भवतीति रायो देवः स देवता। निरुक्त ७।२।१५

२. दिवु क्रीड़ा विजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमद्स्वप्नकान्ति गतिषु। सि. कौ., पृ.२१८

३. सं.श. कौ. पृ. ५४५

४. वै. का., पृ. २०५

५. ऋक् १०।७२।२,५,८

देव मर्त्य हैं अथवा अमर्त्य, इस विषय में भी वहाँ पर विचार किया गया है जैसे कि एक स्थान पर यह कहा गया है कि देव अपने प्रारम्भ के काल में मरण धर्मा थे, बाद में उन्होंने अमरता अर्जित की।[१] इसी प्रकार एक अन्य उद्धरण यह साक्ष्य देता है कि देव अपनी पार्थिव देहत्याग कर मुक्ति के द्वार पर आरुढ़ हुए।[२] इसी तरह से ब्रह्मचर्य की शक्ति के आख्यान में यह कहा गया है कि ब्रह्मचर्य और तप के प्रभाव से देवताओं ने मृत्यु को पार किया। इन्द्र ने ब्रह्मचर्य के बल से देवों के लिए स्वर्ग का पथ प्रशस्त किया।[३]

वेद देवों के सम्बन्ध में यह भी विचार करते हैं कि कौन देव पूर्ववर्ती हैं और कौन देव उत्तरवर्ती हैं। वे कुछ देवों को पूर्ववर्ती कहते हैं और कुछ देवों को उत्तरवर्ती कहते हैं।[४] इसी तरह से कुछ देव अर्भक कुछ युवा और कुछ बृद्ध कहे गए हैं।[५]

---

१. सतो नूनं कवयः सं शिशीत वाशीभिर्याभिरमृताय तक्षथ।
विद्रांसः पदा ह्यानि कर्तन येनदेवासो अमृतत्वमानसुः।।
ऋक् १०।५३।१०

२. येन देवाः स्वरारुहुर्हित्वा शरीरममृतस्य नाभिम।
अथर्व. (१) पृ. १४४

३. ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।
इन्द्रो ह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्।।
अथर्व. (२) पृ. ६०७

४. देवानां नु वयं जाना प्रवोचाम विपन्यया।
उक्थेषु शस्यमानेषु यः पश्यादुत्तरे युगे।।
ऋक् १०।७२।५

५. नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यो नमो युवभ्यो नमो अशिनेभ्यः।
यजाम् देवान् यदि शक्नवाम माज्यायसः शंसया वृक्षि देवाः।।
वही १।२७।१३

रुद्र

रुदिर् अश्रु विमोचने धातु से णिच् और रक् प्रत्यय का योग करने पर यह शब्द निष्पन होता है।[1] इस शब्द का अर्थ स्वयम् रोने वाला अथवा रुलाने वाला होता है।[2] एक अन्य स्थान पर रुद्र के सम्बन्ध में यह लिखा गया है कि वह अन्त में सबको रुलाता है, संसार रूपी दुःख से जीव को छुड़ाता है, शब्द रूपी उपनिषद् के द्वारा प्रतिपादित है, उपासकों को आत्म विद्या का प्रकाश करता है, जीव के अज्ञानान्धकार को दूर करता है और स्वयम् रोता है।[3]

रुद्र का स्वरूप कैसा है इस सम्बन्ध में वेद अनेक प्रकार के स्वरूप का कथन करते हैं। जैसे यह कहा गया है कि उनका शरीर अत्यन्त बलशाली है, वे सुन्दर होंठो वाले हैं। वे अपने शिर पर जटा जूट रखाते हैं, इसलिए उनको कपर्दी कहकर पुकारा जाता है। उनका रंग लाल है और वे जटा जूट वाले हैं।[4]

---

१. सि. कौ. पृ.

२. सोऽरोदीद्यदरोदीन्तस्माद्रुद्रस्य रुद्रत्वम्। तै. सं. १।५।१।१

सोऽरोदीत् यदरोदीत्तस्माद्रुद्रः। श. ब्रा. ६।१।३।१०

३. रोदयति सर्वमन्तकाले इति रुद्रः। रुत् संसाराख्यं दुखम् तत् द्रावयति अपगमयति विनाशयतीति रुद्रः। रूतः शब्दरूपाः उपनिषदः ताभिद्रूयते गम्यते प्रतिपाद्यते इति रुद्रः ऋक् १।११४।१ पर सायण भाष्य

४. इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद् वीराय प्रभरामहे मतीः।

यथा शबसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्।।

— ऋग, पृ.२२२

भगवान् रुद्र की ग्रीवा नील कही गई है किन्तु साथ में यह कहा गया है कि उनका कण्ठ श्वेत है। कभी-कभी विरोधाभास को प्रदर्शित करने वाले वाक्य भी कहे गए जिनमें कहा गया कि जटा जूट धारी होते हुए भी रुद्र मुण्डित केश वाले हैं। वे धनुष को धारण करते हैं और मेघ रूप से जीवों को तृप्त करते हैं।[1] वे अल्प देह वाले हैं और वामन रूप धारण करने वाले हैं। विद्या-विनय से युक्त पाण्डित्य रूप वाले हैं। वे वृद्धाङ्ग· वाले भी हैं, और तरुण अङ्ग· वाले भी हैं।[2]

रुद्र के वर्ण को विविध रूपों में कहा गया है जैसे एक स्थान पर यह कहा गया है कि वे प्रत्यक्ष में अर्थात् सूर्य के उदय काल में अत्यन्त लाल वर्ण वाले हैं, इसके विपरीत अस्त काल में वे अरुण वर्ण वाले हैं। जब मध्यान्हकाल होता है तो रुद्र पिंगल वर्ण वाले होते हैं। विष धारण करने के कारण रुद्र की ग्रीवा नीली हो गई है। वे सहस्त्र नेत्र वाले पर्जन्य रूप हैं।[2]

---

१. नम: कपर्दिने च व्युप्तकेशाय च नम: सहस्त्राक्षाय च शतधन्वने च नमो गिरिशायाय च शिपिविष्टाय च नमोमीढुष्टमाय चेषुमते च। नमो ह्रस्वाय च वामनाय च नमो वृहते च वर्षीयसे नमो वृद्धाय सवृधे च नमोऽग्रायाय च प्रथमाय च।।   यजु., पृ.२६३

२. असौ यस्ताम्रोरुण उत वभ्रु: सुमङ्गल:।
ये चैनं रुद्रा अभितो दिक्षुश्रिता: सहस्त्रोऽवैषां हेडईमहे।।

– – – – –

असौ योऽवसर्पति नीलग्रीवो विलोहित:।
उतैनं गोपा अदृश्यत्।।   वही, पृ. २५७

रुद्र के स्वरूप का और अधिक वर्णन करते हुए यह लिखा गया है कि श्मशान उनका घर है। अर्थात् वे वहाँ निवास करते हैं, जहाँ सभी प्राणी अन्ततः अपनी अन्तिम गति के लिए पहुँचते हैं। यही कारण है कि श्मशान से सम्बन्ध रखने वाले पिशाचों के वे स्वामी हैं।[1] वे शिर में शिरस्त्राण धारण करते हैं और शरीर में कवच धारण करते हैं। वे रथ में भी बैठते हैं, और हाथी के ऊपर भी सवारी करते हैं।[2] वे धनुष का संचालन करने में अत्यधिक कुशल हैं और उनके पास तीक्ष्ण वाण रहते हैं। उन वाणों को वे अपने तरकश में रखते हैं। धनुष और बाण के साथ उनका अस्त्र त्रिशूल भी है जिसे वे अपने पास रखते हैं।[3]

रुद्र की असीमित शक्ति का बार-बार कथन किया गया है और उनसे अपनी रक्षा की अनेकशः प्रार्थना की गई है। इसीलिए एक स्थान पर यह कहा गया कि आप घोर रूप वाले, लाल वर्ण वाले और जटाधारी हैं। आप महान, तेजस्वी हैं, इसलिए हम आपका आह्वान करते हैं। तथा यह कामना करते हैं कि हमें निर्भय बनावें।[3]

---

१. स्तुहि श्रुतं गर्तसदं जनानां राजानं भीममुपहन्त्युग्रम्।

अथर्व, पृ. ७९५

२. यजु. पृ. २६५

३. नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च नमो निषंगिणे चेषुधिमते च नमस्तीक्ष्णेषवे चायुधने च नमः स्वायुधाय च सुधनन्वने च।।

वही, पृ. २६६

शिव स्वरूप

रुद्र के लिए शिव शब्द का प्रयोग यजुर्वेद में किया गया है। वहाँ पर भगवान् रुद्र के लिए शम्भु, शंकर और शिव शब्दों का प्रयोग है। उस प्रार्थना में शम्भु को, शंकर को और शिव को नमस्कार किया गया है।[1] साथ ही उनके व्यापक रूप की व्याख्या करते हुए यह कथन है कि शिव ! तुम अत्यन्त कल्याण करने वाले हो, तुम हमारे निमित्त शान्त और श्रेष्ठ मन वाले हो जाओं। तुम अपने त्रिशूल को कहीं रखकर, धनुषवाण,धारण कर, मृगचर्म पहनकर हमारे लिए आओ।[2]

शिव कल्याण कारी होवें। इनकी जो औषधियाँ हैं वे इनकी शक्तियाँ हैं। वे इन औषधिरूप शक्तियों से हमारे जीवन को सुखमय करें। शिव जो रुद्र हैं, अपने आयुधों का परित्याग कर दें और इच्छित फल देने वाले होवें। वे हमारे साथ ही हमारे पुत्र-पौत्रादि को भी सुख देने वाले बने।[3] इस रूप में रुद्र ही शिव हैं और शिव ही रुद्र हैं क्योंकि इनके अनेक नामों में ये दोनों नाम एक साथ लिए गए हैं। यद्यपि रुद्र का नाम ही सर्वत्र अधिकता से लिया गया है।

---

१. नम: शंभवाय च मयोभवाय च नम: शंकराय च मयस्कराय च नम: शिवाय च शिवतराय च। यजु. पृ. २६७

२. मीढुष्टम शिवतम शिवो न सुमना भव। परमे वृक्ष आयुधं निधाय कृत्तिवसान आ चर पिनाकम्बिभ्रदा गहि। वही, पृ. २७०

३. या ते रुद्रशिवा तनू: शिवा विश्वाहाभेषजी।
शिवा रुतस्य भेषजी तया नो भृड जीवसे।।
वही, पृ. २६९

अक्षर रूप में रुद्र

अमर, अजर और अक्षर रूप में रुद्र के लिए जो कुछ संकेतात्मक रूप से कहा गया है उसका अभिप्राय यह है कि रुद्र अमर हैं, अजर हैं और अक्षर हैं। वे कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं होते, कभी भी जरा को प्राप्त नहीं होते और कभी भी उनका क्षरण नहीं होता। इसी दृष्टि से एक स्थान पर यह कहा गया है कि हे भव ! तुम्हारे प्राण के लिए, तुम्हारे क्रन्दन के लिए, तुम्हारे मायामय शरीर के लिए हमारा नमस्कार है। तुम कभी भी मृत्यु को प्राप्त नहीं होते हो, इसलिए अमर रूप तुम्हें हमारा नमस्कार है।[1]

इसी प्रकार से एक अन्य स्थान पर यह कहा गया है कि उस रुद्र को नमस्कार है जो हिरण्यमय भुजाओं वाले हैं और सेना नायक हैं। जो दिशाओं के स्वामी हैं, वल्कल धारण करने वाले हैं। पशुओं के पालक और शिशु तृण समान पीतवर्ण वाले तथा जरा अवस्था से रहित रुद्र को नमस्कार है। इसमें यह ज्ञापित है कि वे अजर हैं और इसीलिए अमर हैं। जब उनका किसी प्रकार का क्षरण नहीं होता तो अक्षर वे हैं ही।[2]

---

१. क्रन्दाय ते प्राणाय याश्च ते भव रोपयः।
नमस्ते रुद्र कृण्भः सहस्त्राक्षायामर्त्यः।।   अथर्व, पृ. ५८१

२. नमो हिरण्यवाहवे सेनानां दिशां च पतये नमो नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः
पशूनां पतये नमो नमः शिष्यञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमो नमो
हरिकेशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमः।।
यजु., पृ. २५९

विश्वचर रुद्र मूर्ति

रुद्र स्वयम् के इस रूप में तथा अन्य रूप में भी विश्व में व्यापक हैं। इसलिए उसकी व्यापकता की प्रार्थना करते हुए यह कहा गया है कि हे रुद्र ! हम तुम्हें पूर्व, उत्तर और दक्षिण दिशाओं में नमस्कार करते हैं। तुम आकाश के मध्य में सबके नियन्ता के रूप में प्रतिष्ठित हो। हे रुद्र ! तुम प्रचण्ड बल वाले हो। ये चारों दिशायें तुम्हारी हैं। यह स्वर्ग, पृथिवी, अन्तरिक्ष सब तुम्हारे शरीर रूप ही हैं। तुम सब पर कृपा करने वाले और पूज्यनीय हो।[1]

इसी प्रकार से एक अन्य स्थान पर रुद्र को पर्वत पर रहने वाला बताया गया है और यह कहा गया है कि तुम मेघों के अन्तर में स्थित हो। तुम्हारा जो वाण प्रलय कारक है, वह संसार की रक्षा करने वाला होवे। इसी प्रकार से यह भी कहा गया है कि वे रुद्र पशुओं में व्याप्त हैं, यज्ञ तथा सूर्य मण्डल में व्याप्त हैं, जल रूप से तृप्त करने वाले हैं। विश्व में व्यापक हैं, जल रूप में व्याप्त हैं, जल लहरों में विद्यमान को नमस्कार है।[3]

---

१. पुरस्तात् ते नमः कृण्म उत्तराधरादुत।
अभीवगार्द दिवस्पर्यन्तरिक्षाय ते नमः।।

तव चतस्त्र प्रदिशस्तव द्योस्तव पृथिवी तवेव मुयोर्वन्तरिक्षम्।
तवेंदं सर्वमात्मन्द्वदयत् साणत् पृथिवी मनु।।

अथर्व, पृ. ५८१

२. यामिषुं गिरिशन्त हस्ते विभर्ष्यस्तवे। शिवां गिरित्र तां कुरु मा हिंसीः पुरुषं जगत्। यजु., पृ. २५६

३. वही, पृ. २६४-२६५

शिव शक्ति

रुद्र, जो बाद के साहित्य और विचार में शिव रूप में स्वीकृत किए गए हैं[1], शक्ति से सम्पन्न हैं। यदि शक्ति के रूप में उनके साथ सदा रहने वाली अम्बिका का सन्दर्भ लिया जाए तो वे निरन्तर अम्बिका के साथ रहते हैं और अम्बिका के साथ रहते हुए यज्ञ का पुरोडाश प्राप्त करते हैं।[2] उनकी शक्ति-सामर्थ्य के सम्बन्ध में इतना अधिक कहा गया है कि इतना अधिक सम्भवतः ही किसी अन्य देवता के सम्बन्ध में कहा गया हो। उनका क्रोध अत्यधिक भयदायक है और वे अपने क्रोध से सभी को नष्ट कर देने की क्षमता रखते हैं। वे सूर्य के माध्यम से प्रत्यक्ष हैं क्योंकि वे उदयकाल में अत्यन्त लाल वर्ण के हैं। सूर्य के अस्तकाल में अरुण वर्ण वाले हैं। सूर्य के मध्यान्ह काल में पिंगल वर्ण वाले हैं। सूर्य के उदय काल में सभी प्राणियों के कर्मों का विस्तार करते हैं। सूर्य की सहस्त्रों रश्मियों में इनका ही अंश विद्यमान है।[3] जो रुद्र की स्तुति करते हैं, रुद्र अपनी शक्ति से उनकी रक्षा करते हैं। वे सभी प्रकार के रोगों और व्याधियों से उन्हें मुक्त करा देते हैं।[4] इस रूप में उनकी शक्ति और सामर्थ्य अन्य देवाताओं से विशेष है।

---

१. हि. स. पृ. १०४-१०५

२. एष ते रुद्र भागः सह स्वस्त्राम्बिकया तं जुषस्व स्वाहैष। ते रुद्रः भाग
   आखुस्ते पशुः। यजु. पृ. ४३

३. असौ यस्ताम्रोऽरुणऽउत वभ्रुः सुमङ्गलः ।
   ये चैनं रुद्राऽअमितो दिक्षु श्रिता सहस्त्रशोऽवैषा हेडईमहे।।

   वही, पृ. २५७

४. ऋक् (३), पृ. १०४१ : ऋक् (१), पृ. ४२६-४२७

विश्वचर मूर्ति

सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त और सम्पूर्ण भुवन मण्डल में विचरण करने वाले शिव का वर्णन अनेक स्थानों पर आया है। कहीं पर यह कहा गया है कि विश्व में व्यापक को नमस्कार है। गतिशील को नमस्कार है, वेग वाले को नमस्कार है। जल तरङ्ग. नदी और टापू आदि में व्यापक शिव को नमस्कार है।[1] वह शिव सम्रुद्र के पार विद्यमान है, सम्रुद्र के तट पर विद्यमान है, जल के पास और फेन आदि में विद्यमान है। वह गोशाला में और गोचारण के स्थान में विद्यमान है। रथ, कन्दरा, शुष्क काष्ठ, तृण-मूलादि में भी विद्यमान है।[2]

वे शिव स्वर्ग में विद्यमान हैं। मैं पूर्व दिशा में हाथ जोड़कर उनको नमस्कार करता हूँ, दक्षिण दिशा में हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ, पश्चिम दिशा में हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ। उत्तर दिशा में हाथ जोड़कर नमस्कार करता हूँ। वे अन्तरिक्ष में वास करते हैं। वे पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिशा में निवास करते हैं।[3]

---

१. नम आशवे चाजिराय च नमः शीघ्राय च शीभ्याय च नम ऊर्म्याय चाव स्वन्याय च नमो नादेयाय च द्वीप्याय च। यजु., पृ. २६४

२. नमः पायार्य च वार्याय च नमः प्रतरणाय चोत्तरणाय च नमस्तीर्थाय च कूल्याय च नमः शष्याय च फेन्याय च।

नमः सिकत्याय च प्रवाहयाय च नमः।

नमः शुष्क्याय च हरित्याय च नमः।। वही, पृ. २६७

३. वही, पृ. २७३, अथर्व, (२), पृ. ५८१

रुद्र का पशुप रूप

'यदरोदीत्तस्माद् रुद्र'':- इस परिभाषा के आधार पर रुद्र का स्वरूप कठोर और क्रूर कहा जा सकता है। इसलिए जब रुद्र की प्रार्थना की जाती है तो कहा जाता है कि हे रुद्र ! तुम हमारे पुत्र और पौत्रों को हिंसित न करो। हमारी आयु को नष्ट न करो। हमारे वीरों का भी वध मत करो और हमारे गो वंश पर तथा अश्व वंश पर प्रहार मत करो।[२]

इसी तरह से यह प्रार्थना भी की गई है कि जटाधारी रुद्र का धनुष प्रत्यंचा रहित हो जाए और तरकस फल वाले वाणों से खाली होवें। इनके वाणों का दर्शन न हो और इनके खड्ग रखने का स्थान भी खाली हो। हमारे लिए ये अपने सभी हथियारों का परित्याग कर देवें।[३]

रुद्र के सम्बन्ध में की गई ये सभी प्रार्थनाऐं उनके उग्र और कठोर रूप को ही इंगित करती हैं। वे रुलाने वाले हैं, पुत्र-पौत्रों की हिंसा करने वाले हैं, आयु को नष्ट करने वाले हैं और वीरों को वध करने वाले हैं। किन्तु उनके इस स्वरूप के साथ - साथ अन्य अनेक स्थानों पर उन्हें पशुओं का पालक और रक्षक भी कहा गया है।

---

१. वै. को., पृ. ४४७

२. मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः।
मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सद्मित् त्वा हवामहे।।
यजु., पृ. २५९

३. विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाण वां उत। अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ्गधिः। वही, पृ. २५८

एक स्थान पर यह कहा गया है कि वे हमारे पुत्रों को और सन्तानों को न मारें। साथ ही वे हमारी गायों तथा अश्वों का भी वध न करें। हे रुद्र ! पशुओं और मनुष्यों को मारने वाला तुम्हारा अस्त्र तुमसे दूर रहे।[१] जहाँ रुद्र का स्तवन मित्रावरुण के साथ किया गया है वहाँ पर यह कहा गया है कि जिससे हमारे पशु, मनुष्य, गो आदि सम्पन्न और सुखी रहें, ऐसे रुद्र इनके लिए ओषधियाँ उत्पन्न करें। वे हमारे अश्वों, मेषों, गायों आदि के लिए कल्याणकारी होवें।[२]

रुद्र के लिए पशुपति का शब्द प्रयुक्त किया गया है और यह प्रार्थना की गई है कि हे पशुपति! तुम्हें चार बार नमस्कार है, आठ बार नमस्कार है। दस बार नमस्कार है। तुम भिन्न-भिन्न जाति वाले गो आदि की रक्षा करो।[३] रुद्र जब भव, शर्व, ईशान की संज्ञा पाते हैं तब वे विविध दिशाओं की रक्षा में रहते हैं, और कभी भी पुरुषों तथा पशुओं की हिंसा नहीं करते हैं।[४]

---

१. यजु. पृ. २२३

२. कद्रुद्राय प्रचेतसे मील हुष्टमाय तव्यसे। वोचेम शन्तमं हृदे।
यथा नो अदितिः करत्पश्वे नृम्यो यथा गवे। यथा तोकाय रुद्रियम्।।

शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये। नृभ्यो नारिभ्यो गवे।
ऋक् (१), पृ. ९९-१००

३. चतुर्नमो अष्टकृत्वो भवाय दशकृत्वः पशुपते नमस्ते।
तवेमे पंच पशवो विभक्ता गावो अश्वाः पुरुषा अजावयः।।
अथर्व (२), पृ. ५८१

४. नैनं शर्वा न भवो नेशानः।
नास्य पशून् न समानान् हिनस्ति य एवं वेद।

अथर्व (२), पृ. ७४४-७४५

रुद्र का चिकित्सक रूप

भगवान् रुद्र ओषधियों के प्रयोक्ता और आरोग्य कर्त्ता के रूप में अनेक स्थानों पर स्मरण किए गए हैं। वे ओषधियों का वरदान प्राणियों के लिए देते हैं और पशु, मनुष्य आदि को निरोग बनाते हैं। इसलिए वे ओषधिपति भी कहे जा सकते हैं। यह भी सम्भव है कि वे ओषधि के रूप में अपने रक्षा साधनों का प्रयोग करते हों। एक स्थान पर उनकी प्रार्थना करते हुए यह कहा गया है कि आकाश के घोर रूप वाले, लाल वर्ण वाले, जटाधारी तथा महान् तेजस्वी रुद्र को हम नमस्कार करते हैं। वे वरणीय औषधियों को हाथ में धारण कर हमें सुखी करें तथा अपने रक्षा साधनों से हमें सुखी बनावें।[1]

इसी प्रकार से एक अन्य सन्दर्भ में यह विवेचित है कि हम उस रुद्र की प्रार्थना करते हैं जो यज्ञ के स्वामी हैं, आरोग्य देने वाले हैं और इस प्रकार की औषधि प्रदान करते हैं जो सुख देने वाली होती है।[2] रुद्र की प्रार्थना करते हुए यह कामना की गई है कि हे रुद्र ! आप हमारे लिए जिन औषधियों की व्यवस्था करो, हम उन औषधियों से सुखी और स्वस्थ रहें तथा सौ वर्ष तक की निर्धारित जीवन-सीमा को प्राप्त करें। हमारे शरीर में जितने भी रोग हैं, उनसे हमें विलग करें।[3]

१- दिवो वराहमरुषं कपर्दिन त्वेषं रूप नमसा निह्वयामहे ।
हस्ते विभ्रद् भेषजा वार्याण शर्म वर्म छदिरस्मभ्यं यसत् ।।
ऋक् (१) , पृ० २२२

२- गाथपतिं मेघपतिं रुद्रं जलाषभेषजम्। तच्छयोः मुम्नमीमहे ।।
वही, पृ० ९९

३- त्वादन्ते भी रुद्र शन्तमेभिः शतं हिमा आशीय भेषेजेभिः ।
उन्नो वीरां अर्पय भेजतेभिर्मिषक्तमं त्वा भिषजां श्रृणोमि ।।
वही, ४२४

अथर्ववेद में यह कहा गया है कि वह जब रुद्र बनता हुआ चला तो पशुओं की ओर चला तथा उसने औषधियों को अन्न के रूप में बनाया। इस तरह से जो जानता है, वह अन्नाद्य औषधियों से अन्न को खाता है।[1]

प्रार्थना करने वाले कैलाशपति भगवान् रुद्र से प्रार्थना करते हैं कि आप सभी देवों में प्रथम पूज्य हैं। स्मरण करने मात्र से सभी रोगों को निवारण करने वाले हैं। अर्थात् जो आपका स्मरण करता है वह सभी रोगों से दूर हो जाता है, तथा इस रूप में आप चिकित्सक हैं।[2]

भगवान रुद्र वृक्षों के पालन करने वाले हैं, भूमण्डल को विस्तृत करने वाले हैं। वे औषधियों को पुष्ट करने वाले रुद्र हैं। वे जंगल के गुल्मलता, वीरुध आदि के पालन करने वाले हैं।[3]

और एक स्थान पर तो यह कहा गया है कि रुद्र की शक्ति औषधि रूप है। अर्थात् औषधियाँ भगवान रुद्र की शक्ति हैं। भगवान रुद्र से यही प्रार्थना की गई है कि वे अपनी इसी शक्ति से सभी के जीवन को सुखमय बनावें। इस रूप में वे ओषधिपति और चिकित्सक तथा आरोग्य के दाता हैं।[4]

१- स यत् पशूननुव्य चलद रुद्रो भूत्वानु न्यचलदोषधीरन्नादीः कृत्वा ।
ओषधीमिरन्नादींभिरन्नमत्ति य एवं वेद ।।
अर्थव- (२), पृ० ७५७

२- अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्योभिषक् ।
अहींश्च सर्वाञ्जभ्भयन सर्वांश्च यातु धान्योऽराचीः परासुव ।।
यजु०, पृ० २५६- २५७

३- नमो रोहिताय स्थपतये वृक्षाणां पतये नमो नमो भुवन्तये पारिवस्कृतायौष-धानां पतये नमो नमो ----------। वही, पृ० २६०

४- याते रुद्र शिवा तनूः शिवा विश्वाहा भेषजी ।शिवा रुतस्य भेषजीतयानो मृड जीवसे।।
वही, पृ०२६९

अन्य विविध रूप में रुद्र

अन्य अनेक ऐसे स्थल हैं जहां पर शिव के विविध रूपों का कथन किया गया है। जैसे एक स्थान पर मरुद् गणों के जनक के रूप में शिव का स्तवन करते हुए यह प्रार्थना की गई है कि हमारे वीर पुत्र सदा विजयी हों। तुम हमारे समर्थ शत्रुओं को नष्ट करो। तुम्हारी भुजा में वज्र रहता है। तुम हमें पाप से पार लगाओ अर्थात् पाप हमसे सदा दूर रहें। शरीर में व्याप्त होने वाले जो रोग हैं वे सभी रोग हमसे दूर हो जावें। क्योंकि तुम श्रेष्ठ भिषक हो इसलिए विविध औषधियों द्वारा हमारी संतानों को बलवान् बनाओ। वे यद्यपि क्रोध बहुत करते हैं तथापि हम क्रोध- निवारक स्तुतियों के द्वारा उनके क्रोध को दूर करेगें। वे कोमल उदर वाले, पीत वर्ण वाले, सुन्दर नाक वाले और शोभायमान हैं। वे हमारी रक्षा करें।[1] इस रूप में रुद्र वज्रधारी हैं ।

१- आते पितर्मरुता सुम्नमेतु मानः सूर्यस्य सन्दृशो युयोथाः ।
अभिनो वीरो अर्वति क्षमेत प्रजायेमहि रुद्र प्रजाभिः ।।

\- - - - -

श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तमसां वज्रवाहो ।
पर्षिणिः पारमंहसः स्वति विश्वा अभीतो रपसो युयोधि ।।
मात्वा रुद्र कुकुधामा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभ मा सहूती ।

\- - - - -

हवीमभिर्हवते यो हविर्भिरव स्तोमे भी रुद्रं दिषीय ।
ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै बभ्रुः सुशिप्रो रीरन्धमनायै ।।
ऋक० पृ० ४२५

अपनी भुजाओं में वज्र धारण किए रहते हैं। साथ ही जो उनकी उपासना करता है उसे पाप से मुक्त करते हैं क्योंकि इस रूप में वे पाप संहारक भी हैं। उनकी सुन्दरता का कथन भी इस वर्णन में देखने को मिलता है, जिसमें वे सुन्दर उदर, नाक और कान वाले कहे गए हैं। भगवान रुद्र मृत्यु के भी मोचक हैं। वे मृत्यु को उसके पास नहीं आने देते, जो उनका उपासक है। इसीलिए एक स्थान पर कहा गया है कि हे पुष्टि वर्धक ! त्र्यम्बक! हम आपका पूजन करते हैं। आप हमें मृत्यु से दूर ले चलो, अर्थात् मृत्यु से मुक्ति दिलाओ। हमें निरन्तर अमृत के पास रखो और अमृत हमसे दूर न होवे।[1]

एक अन्य स्थान पर रुद्र के अन्य गुणों के साथ - साथ उनके इस गुण की चर्चा की गई है, जिसमें कहा गया है कि उनका तेज देवताओं के मध्य भली प्रकार प्रकाशित होता है। वे रुद्र ही हैं, जिन्होंने महान ज्योति रूप अग्नि को भली प्रकार प्रदीप्त किया है। इसका अभिप्राय यह हो सकता है कि वे इतने तेजस्वी हैं कि उनके तेज से ही अग्नि को प्रदीप्त मान लिया गया है।[2]

१- त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उरुवारकमिव वन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्।।
(१-ऋक् (१११) पृ. १०५५

२- रुद्राः स सृज्य पृथिवीं बृहज्ज्योतिः समीधिरे।
तेषां भानुरजस्त्र इच्छुक्रो देवेषु रोचते ।।
यजु० पृ० १६३

रुद्र के स्तवन में अन्य अनेक ऋचाओं का उल्लेख भी किया गया है जिसमें यह संकेत है कि वे सम्भवतः हिंसक देवता हैं और स्तुति कर्ता चाहता है कि वह हमारी हिंसा न करें। इसीलिए एक स्थान पर कहा गया है कि हे रुद्र! आप हमारे पुत्र-पौत्रों को हिंसित न करो। हमारी आयु को भी नष्ट न करो। हमारी गौओं और घोड़ों पर भी प्रहार मत करो। हमारे वीरों का भी हनन मत करो। हम हवि युक्त होकर निरन्तर आपका आहवान करते हैं और आपकी प्रसन्नता के लिए प्रयत्नशील हैं।[1]

भगवान् रुद्र के विषय में प्रायः यह धारणा है कि वे अपने हाथ में त्रिशूल धारण करते हैं किन्तु वे धनुष और बाण लेकर भी संहार में प्रवृत्त होते हैं, इसका भी संकेत किया गया है। इसीलिए एक स्थान पर यह कहा गया है कि हे भगवान् ! आपका धनुष प्रत्यञ्चा रहित हो जाए। आपका तरकस बाणों से खाली हो जाए। और आपने अपने हाथ में जो बाण लिए हैं, उनका भी परिहार हो जाए। भगवान् आपका धनुष प्रत्यञ्चारहित हो जाए और तरकस फल वाले बाणों से खाली हो जावे। हम प्रार्थना करते हैं कि हमारे लिए वे रुद्र सभी प्रकार के आयुधों का त्याग कर दें।[2]

---

१. मानस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्त सदमित् त्वा हवामहे ।।
यजु०, पृ० २५९

२. प्रमुञ्चधन्वनस्त्वमुभयोरार्ल्योज्याम् ।
याश्च ते हस्त इषव परा ता भगवो वप ।।
\- - - - -
विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवां उत ।
अनेशन्नस्य या इषव आभुरस्य निषङ.गधिः ।।
यजु०, पृ० २५७-२५८

भगवान रुद्र की अनन्त महिमा का आख्यान करने वाला वेद यजुर्वेद उनकी असीमित शक्तियों और उनके असीमित रूपों का कथन करता है। इस वेद में कहा गया है कि रुद्र वृषभ पर सवारी करते हैं। अर्थात् वृषभ उनका वाहन है। वे पशुओं के रक्षक और पशुपति तो हैं किन्तु वे पशुओं के लिए रोग रूप भी हैं। इसका अभिप्राय यह हुआ कि वही रोग रूप में पशुओं को लगते भी हैं।[१]

वे यद्यपि संहारक के रूप में अधिकतम रूप से कहे गए हैं और यही प्रतीत होता है कि वे अधिकतम रूप से संहार करने में ही प्रवृत्त रहते हैं किन्तु एक स्थान पर यह कहा गया है कि वे संहार तो अवश्य करते हैं किन्तु उनका यह संहार पापियों के लिए है, पुण्यात्माओं के लिए नहीं । अर्थात् भगवान रुद्र पातकियों का तो संहार करते हैं किन्तु पुण्य कर्मा लोगों की वे रक्षा करते हैं।[२]

भगवान रुद्र श्रेष्ठ मन्त्रदाता हैं, व्यापार में कुशल तथा वनों के वृक्षों, लताओं, गुल्मों और वीरुध, आदि के पुष्टि कारक भी हैं। वे संग्राम में शत्रुओं का विनाश करते हैं तथा पंक्तिवद्ध सेना के सेना नायक के रूप में प्रतिष्ठित हैं।[३]

---

१. नमो वम्लुशाय व्याथिनेऽन्नानां पतये नमो-नमो भवस्य, हेत्यै जगतां पतये नमो नमोरुद्रायाततायिने क्षेत्राणां पतये नमो........।

यजु. पृ. २५९

२. वही., पृ. २६०

३. नमो रोहिताय स्थपयते वृक्षाणां पतये नमो नमो भुवन्तये पारिवस्कृतायौषधानां पतये नमोनमो मन्त्रिणे वाणिजाय कक्षाणांपतये..........

वही, पृ. २६०

एक स्थान पर इस प्रकार का सन्दर्भ आया है कि सोम रुद्र के साथ आहूत हैं। वहाँ प्रार्थना करते हुए यह कहा गया है कि हे रुद्रो ! हमारे घर में व्याप्त अमीबा रोग और विषूचिका को नष्ट करो। रोग के कारणभूत पिशाचों को हमसे दूर ले जाओं और हमें पाप से पृथक् करो। हे रुद्रो ! हमारे शरीरों में व्याप्त पाप को हमसे पृथक् करो। हमारे रोगों को हमसे दूर करने के लिए औषधियों को शरीर में रमाओ।[1]

रुद्र की महिमा अनन्त है। वे शरणागत में आने वाले की रक्षा करते हैं। शत्रुओं का प्रबल तिरस्कार करते हैं और कठोरता पूर्वक उनकी हिंसा करते हैं। वे ऐसी सेनाओं का नेतृत्व करते हैं जो वीरों से युक्त हैं और उपद्रव करने वालों को कठोरता से कुचल देती हैं।

जो छल और कौशल से किसी के धन क़ा अपहरण करते हैं, वे भी रुद्र की दृष्टि से बच नहीं पाते और रुद्र उनको भी अनुशासित करते हैं। वे हर प्रकार के पाप करने वालों को नियन्त्रित करते हैं। वे दमन करने वालों को धनुष से शासित करते हैं। वे वाणों का निक्षेप करते हैं।[2]

---

१. सोम रुद्रा विवृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश।
वाधेर निर्ऋतिं पराचैः कृतंः चिदेन प्र मुमुक्तमस्मत्।
सोम युवमेतान्यस्मद् विश्वा तनुषु भेषजानि धत्तम्।
अवस्यतं मुञ्चतं मुञ्चतं यन्ना असत् तनुषु बद्धे कृतामेनो अस्मत्।
अथर्व. (१), पृ. ३७२

२. नमः कृत्स्नायतया धावते सत्वनां पतये नमो नमः सहमानायनिव्याधिने........
परिचरायारण्यानां पतये नमः।
- - - - - -
नम उष्णीषिणे गिरिचराय.......नम आयच्छद्भ्योऽस्यद्भयश्च वो नमः।
यजु. पृ. २६१,२६२

उपनिषद् और शिव

हम पिछले सन्दर्भों में यह देख चुके हैं कि रुद्र, पशुप, शिव आदि के स्वरूप की परिकल्पना ऋग्वैदिक समय से ही प्राप्त है तथापि औपनिषदिक परम्परा में इसका स्वरूप अपने दार्शनिक रूप में भी प्रतिष्ठित हो चुका था। श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा गया है कि परमात्मा परस्पर रूप में संयुक्त क्षर और अक्षर तथा व्यक्त एवं अव्यक्त का पालन पोषण करता है। भोक्तृभाव के कारण उस ईश्वर का बन्धन होता है और देव का ज्ञान होने पर वह सब प्रकार पाशों से मुक्त हो जाता है।[1] जहाँ तक रुद्र और शिव के अन्य रूपों के संकेतों का प्रश्न है तो ये संकेत भी स्थान-स्थान पर उपनिषदों में देखे जा सकते हैं। ऐसे संकेतों में वे स्थल हैं जो वेदों में वर्णित रुद्र और शिव के सन्दर्भों की ही भाँति इनका वर्णन करते हैं, और कुछ ऐसे अन्य सन्दर्भ भी हैं जो उपनिषदों में भिन्न रूप में आए हैं तथा शिव और रुद्र की कल्पना में कुछ नए आयाम भी जोड़ते हैं।

---

१. संयुक्तमेतत्क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाज्ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्व पापैः।।

वही, पृ. ६४

- - - - - -

क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।

- - - - - -

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मे त्युदाहृतः।
यो लोक त्रयमाविश्व विभर्तव्य ईश्वरः।।

गी. १५ ।१६ ।१७

शिवः सूक्ष्म रूप में

शिव की सूक्ष्मता और ईश रूप में उनका अक्षर रूप उपनिषद् कहती है। एक स्थान पर यह कहा गया है कि वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है। इस सूक्ष्मता की परिभाषा देते हुए आचार्य विज्ञान भगवान् कहते हैं कि सबसे अधिक सूक्ष्म पंचमहाभूत हैं। इनमें भी उत्तरोत्तर एक दूसरे से अधिक सूक्ष्म हैं। महत् उससे भी सूक्ष्म है और प्रकृति उससे भी सूक्ष्म है। स्व प्रकाश चिदरसैक परमात्मा उससे भी अधिक सूक्ष्म है। आचार्य शंकर भी इसी प्रकार के मत का आख्यान करते हैं।[1]

इसी प्रकार शिव की सूक्ष्मता इस रूप की कही गई है जैसे घृत के ऊपर स्थित उसका सार भाग है। अर्थात् जिस प्रकार घी के ऊपर उसकी झिल्ली और अधिक सूक्ष्म होती है उसी प्रकार से परमात्मा भी अधिकतम रूप में सूक्ष्म है।[2] इस रूप में शिव की सूक्ष्मता ऐसी है जैसी सूक्ष्मता पृथिवी के अन्य किसी तत्त्व की नहीं है। पृथिवी के अन्य सभी तत्त्व स्थूलातिस्थूल हैं, जबकि शिव तत्त्व सूक्ष्माति सूक्ष्म है।

---

१. सूक्ष्माति सूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये ।

– – – –

पृथिव्याद्यव्याकृतान्तमुत्तरोत्तरं सूक्ष्म सूक्ष्मतरमपेक्ष्येश्वरस्य तदपेक्षया सूक्ष–मत्वमाह।

शां. भा.,(श्वे.), पृ. १६३

२. घृतात्परं मण्डमिवाति सूक्ष्मं ज्ञात्वा शिवं सर्व भूतेषु गूढम् ।

– – – – –

घृतोपरि विद्यमानं मण्डं सारस्तद्वतामतिप्रीतिविषयो यथा तथा मुमुक्षूणामति सार रूपानन्दप्रदत्वेन निरतिशयप्रीतिविषय.............. ।

शां. भा. (श्वे.) पृ० १६३

शिव का सृष्टि कर्तृत्व

शिव के सृष्टि कर्तृत्व के विषय में यह कहा गया है कि जब रुद्र नाम से प्रथित हुए तब वे अकेले ही सूक्ष्म थे। उन्हें किसी की अपेक्षा नहीं थीं। वह अकेले ही इस सम्पूर्ण भुवन पर शासन करते हैं। वे सभी जीवों के भीतर भी हैं और सभी के बाहर भी हैं। वह सभी लोकों की रचना कर उन लोकों के अन्दर रहता है और उन लोकों की रक्षा करता है। अन्त में वह सभी लोकों को समेट भी लेता है।[1]

आचार्य शंकर इस प्रकार से व्याख्या करते हुए कहते हैं कि वह एक है और एक होता हुआ प्रत्येक रूप में पृथक्-पृथक् तरह से विद्यमान है। जन्म-जन्मान्तर में प्रति पुरुष में वही अवस्थित है। इसी विश्व का सृजन कर उसका गोप्ता और रक्षक भी वही है। वह उस कुम्भकार की तरह नहीं हैं, जो विविध उपादानों से केवल सृष्टि करता है।[2]

---

१. एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य हि रुद्रो इमाल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ्. जनांस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वाभुवनानि गोपाः ।।
श्वे., पृ. ११६

२. यस्मादेक एव रुद्रः स्वतो न द्वितीयायवस्त्वन्तराय तस्थुर्ब्रह्मविदः परमार्थ दर्शिनः।
.... य इमाल्लोकानीशते नियमयतीशनीभिः।
सर्वांश्च जनान्प्रत्यन्तरः प्रतिपुरुषमवस्थितः। रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव।
........................किञ्च संकोच, अन्तकाले प्रलयकाले। संसृज्यविश्वा भुवनानि गोप्ता। अद्वितीयः परमात्मा न चासौ कुम्भकारवदात्मानं केवलं मृत्पिण्ड स्थानीय मुपादानकारणमुपादन्ते।
शा. भा. (श्वे.), पृ. ११६

शिव के विविध वर्णों का कथन भी श्वेताश्वतरोपनिषद् में किया गया है। इसमें यह कथन है कि हे शिव! आप नील वर्ण के हैं, हरे वर्ण के हैं, लाल नेत्रों वाले हैं, अनादि और व्यापक हैं। आप से ही ये सम्पूर्ण लोक उत्पन्न हुए हैं। अर्थात् आप ही इन सबके सृष्टि कर्ता हैं।[1] शिव के रूप भी अनन्त हैं। वह सब ओर मुख वाला है, सब ओर शिर वाला है, सब ओर ग्रीवा वाला है, सभी प्राणियों के हृदय रूप गुहा में स्थित है तथा सर्वत्र व्याप्त है। ऐसा कोई भी स्थान नहीं है जहाँ वह पहुँचा हुआ न होवे।[2]

रुद्र रूप में शिव

शिव का रुद्र स्वरूप अपेक्षाकृत कठिन और रुलाने वाला है। जब उपनिषद् में यह प्रसंग आया तो वहाँ पर शाकल्य ने महर्षि याज्ञवल्क्य से पूछा कि रुद्र कौन है, तब याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि इस पुरुष में कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ ये दश तथा ग्यारहवाँ मन है। जिस समय प्राणियों के प्रारब्ध कर्म समाप्त हो जाते हैं उस समय यही एकादश रुद्र मरणशील शरीर से उत्क्रमण करते हैं।

---

१. नीलः पतङ्गो हरितो लोहिताक्ष
स्तडिद्गर्भ ऋतवः समुद्राः।
अनादिमत्त्वं विभुत्वेन वर्तसे
यतो जातानि भुवनानि विश्वा ।।
श्वे., पृ. १४६

२. सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः।
सर्व व्यापी स भगवांस्तस्मात्सर्वगतः शिवः।।
वही, पृ. १२८

तब ये उसके सम्बन्धियों को रुलाते हैं। इसलिए उत्क्रमण काल में अपने सम्बन्धियों को रुलाते हैं। इसी रोदन के निमित्त ये रुद्र कहे जाते हैं।[1] इसी प्रकार से एक अन्य स्थान पर प्राण रूप परमेश्वर की प्रार्थना में यह कहा गया है कि तू अपने तेज से जगत् का संहार करने वाला है इसलिए सम्पूर्ण जगत् का तू ही संरक्षक है। तू ही अन्तरिक्ष में सदा गमन करता है और तू ही सभी ज्योतियों का अधिपति सूर्य है।[2]

रुद्र रूप में शिव सभी देवताओं की उत्पत्ति के कारण हैं और सभी देवता इनसे ही ऐश्वर्य पाते हैं। इन्होंने ही हिरण्यगर्भ को जन्म दिया है, इसलिए ये हमें शुभ बुद्धि से युक्त करें।[3]

रुद्र की जब प्रार्थना की गई तो उनसे यही अनुरोध किया गया कि आप हमारे पुत्र, गौ, अश्वों आदि का बध न करें। आप हमारे वीरों का भी वध न करें। हम आहुतियाँ प्रदान करते हुए सदा ही आपका स्तवन करते हैं।[4]

---

१. कतमे रुद्रा इति दशेमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशस्ते यदास्माच्छरीरान्मर्त्यादुत्क्रामन्त्यथ रोदयन्ति तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति।

बृह. ३।९।४

२. इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता।
त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां पतिः।। प्रश्न.३।९

३. यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु।।

श्वे., पृ. १२०

४. मानस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषुरीरिषः।।
वीरान्मा नो रुद्र भामिनो बधीर्हविष्मन्तः........................। वही, पृ. १६९

अथर्वशिरस् उपनिषद् में रुद्र

अथर्वशिरस् उपनिषद् उपनिषद्-परम्परा का एक महत्वपूर्ण उपनिषद् है। इस उपनिषद् में भगवान शिव के लिए रुद्र और महेश्वर शब्दों का प्रयोग किया गया है और इनकी अनन्त शक्तियोंका आख्यान किया गया है इस उपनिषद् में इन्हें ओंकार, प्रणव, शिव, तारकादि क्यों कहा जाता है, इसकी व्याख्या अवश्य की गई है।

रुद्र के विविध नामों की व्याख्या

रुद्र का नाम सभी जगह पर प्रमुखता से दिया गया है। प्रायः यह देखा जा सकता है कि रुद्र का नाम ही अधिकतम रूप में लिया गया हैं। उनका ही सम्बोधन किया गया है और उनके ही नाम की महिमा गाई गई है। रुद्र के सम्बन्ध में कहा गया है कि आपके स्वरूप का ज्ञान ऋषियों को ही हो सकता है, अन्य सामान्यों को इसका ज्ञान नहीं हो सकता, इसलिए आपका नाम रुद्र है। इसी प्रकार से कहा गया है कि जो भक्त ज्ञान के लिए भजते हैं उन पर आप अनुग्रह करते हैं, वाणी का प्रादुर्भाव करते हैं। सब भावों को त्याग आत्म ज्ञान और योगेश्वर्य रूप से आप अपनी महिमा में स्थित रहते हैं इसलिए आपको महेश्वर कहते हैं।[1]

---

१. अथ कस्मादुच्यते रुद्रः यस्माद् ऋषिभिर्नान्ये भक्तैः द्रुतमना रूपमुपलभ्यते
तस्मादुच्यते रुद्रः। - - - - -
कस्मादुच्यते भगवान् महेश्वरः यस्माद् भक्ताज्ञानेन.........................तस्मादुच्यते
भगवान् महेश्वरः ।

अथर्व शिरष्, पृ. ३९८

उपनिषद् कहती है कि आपको ओंकार इस कारण से कहा जाता है कि इसके उच्चारण से प्राणों को ऊपर की ओर खींचना पड़ता है। प्रणव के नाम का कारण यह है कि इसका उच्चारण करते समय ऋक्, यजु, साम, अथर्व, अंगिरस और ब्रह्मा आदि प्रणाम करने आते हैं। जिस प्रकार से तिल में तेल व्याप्त रहता है, उसी प्रकार से आप अप्रत्यक्ष रूप से सृष्टि में व्याप्त हैं, इसलिए आपको व्यापक कहा जाता है। आपके नाम का उच्चारण करते समय उच्च, नीच और तिर्यक् कहीं भी आपका अन्त देखने को नहीं मिलता, इसलिए आप अनन्त हैं। आप गर्भ, जन्म, व्याधि, जरा और मरण वाले संसार के महाभय से तारने वाले हैं, इसलिए आपको तारक कहा जाता है। इसी तरह से इस उपनिषद् में रुद्र के जो अन्य-अन्य नाम दिए गए हैं, उन-उन नामों के हेतुओं का कथन किया गया है।[१]

---

१. अथ कस्मादुच्यत ओंकारो यस्मादुच्चार्यमाण एव प्राणान्नुत्कामयति तस्मादुच्यते ओंकार:। अथ कस्मादुच्यते प्रणव: यस्मादुच्चार्यमाण एव ऋग्यजु: सामाथर्वांगिरस ब्रह्म ब्राह्मणेभ्य: प्रणामयति नामयति च तस्मादुच्यते प्रणव:। अथ कस्मादुच्यते सर्व व्यापी तस्मादुच्चार्य-माण एव सर्वान्लोकान्वव्याप्नोति........................।
अथ कस्मादुच्यते तारं यस्मादुच्चार्यमाण एव गर्भजन्म व्याधिजरामरणसंसार महाभयान्तारयति त्रायते च तस्मादुच्यते तारम्........................। अथ कस्मादुच्यते परंब्रह्म यस्मात्परपरमं परायणं च वृहद् वृहत्या वृहं यति तस्मादुच्यते परंब्रह्म।......।
जगत: स्वर्दृशमीशानमिन्द तस्थुष इति तस्मादुच्यते ईशान:।

अर्थवशिरस्, पृ. ३९८

शिव स्वरूप

शिव के स्वरूप का विवेचन करती हुई उपनिषद् कहती है कि जीव ही शिव है और शिव ही जीव है। जिस प्रकार धान का छिलका निकल जाने पर चावल निकल आता है उसी प्रकार से बन्धन से मुक्त जीव निर्बन्ध होकर शिव रूप वाला हो जाता है। अभिप्राय यह है कि जीव पाश में बँधा हुआ है और जैसे ही वह पाश मुक्त होता है सदा शिव रूप हो जाता है। शिव और विष्णु की एकता का कथन भी यह उपनिषद् करती है। यह कहती है कि शिव ही विष्णु है और विष्णु ही शिव है। शिव के हृदय में विष्णु का निवास होता है और विष्णु के हृदय में शिव निवास करते हैं। जिस प्रकार विष्णु शिवमय हैं। उसी तरह शिव विष्णुमय हैं। शिव और केशव में भी कोई अन्तर नहीं है। दोनों एक रूप हैं। इस रूप में यह दृष्टिगत होता है कि शिव एक ओर जीव रूप में सर्वत्र हैं तो वह ब्रह्मा और विष्णु के रूप में देव रूप में भी सर्वत्र हैं।[1]

---

१. जीवः शिवः शिवो जीवः स जीवः केवलः शिवः।
तुषेण बद्धो ब्रीहिः स्यात् तुषाभावेन तण्डुलः ।।
एवं बद्धस्तथा जीवः कर्मनाशे सदा शिवः ।
पाशबद्धस्तथा जीवः पाशमुक्तः सदा शिवः ।।
शिवाय विष्णुरूपाय शिव रूपाय विष्णवे ।
शिवस्य हृदयं विष्णुर्विष्णोश्च हृदयं शिवः ।।
यथा शिवमयो विष्णुरेवं विष्णुमयः शिवः।
यथान्तरं न पश्यामि तथा मे स्वस्तिरायुषि ।।

अथर्व शिरस् , पृ. ४०५

रुद्र की व्यापकता

रुद्र व्यापक हैं। उनके अतिरिक्त इस सृष्टि में अन्य कोई नहीं है। रुद्र ने स्वयम् कहा है कि मैं भूत, भविष्य और वर्तमान स्वयं हूँ जो अन्तर के अन्तस् में भी विद्यमान हैं, वह मैं हूँ। जो सभी दिशाओं में प्रविष्ट है, वह मैं हूँ। मैं नित्य और अनित्य हूँ। मैं व्यक्त और अव्यक्त हूँ। मैं ब्रह्म और अब्रह्म हूँ। पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ऊर्ध्व और अधो दिशि रूप मैं हूँ। पुमान् ,आयुष्मान् और स्त्री भी मैं ही हूँ। मैं ही गायत्री, त्रिष्टुप्, वृहती आदि छन्द रूप हूँ तथा मैं ही गार्हपत्य, दाक्षिणात्य तथा आवाहनीय अग्नि रूप हूँ। सत्य, गौ, ऋक्, यजु, साम, और अर्थव रूप भी मेरा ही रूप है। मैं ही आंगिरस, ज्येष्ठ , श्रेष्ठ, वरिष्ठ, जल, तेज, ग्राहय, अरण्य, अक्षर, क्षर, पुष्कर, पवित्र, उग्र, मध्य, वाह्य, पुरस्तात रूप में सभी प्रकार से ज्योति रूप हूँ। मैं ब्रहम को ब्राह्मण से, गो को गो से, ब्राह्मण को ब्राह्मण से, हविष्य को हविष्य से, आयुष्य को आयुष्य से, सत्य को सत्य से, धर्म को धर्म से तृप्त करता हूँ।[1]

---

१. सोऽब्रवीदहमेक: प्रथममासं वर्तामि च भविष्यामि च चान्य: कश्चिन्मत्तो व्यतिरिक्त इति सोऽन्तदनन्तरं प्राविशन् दिशश्चान्तरं प्राविशत् सोहं नित्यानित्योऽहं व्यक्ताव्यक्तो ब्रह्म ब्रह्माहं प्राञ्च प्रत्यञ्चोऽहंदक्षिणाञ्च उदञ्चोहं अधश्चोर्ध्वचाह दिशश्च प्रति दिशश्चाहं पुमानपुमान् स्त्रियश्चाहं गायत्र्याहं सवित्र्यहं त्रिष्टुजगत्यनुष्टुपचाहं छन्दोऽहं गार्हपत्यो दक्षिणाग्निराहवनीयोऽहं सत्योऽहं गौरहं गौर्यहमृगहं यजुरहं सामाह मथर्वाङिरसोऽहं ज्येष्ठोऽहं श्रेष्ठो अहं.............आयुरायुष सत्येन सत्य धर्मेण धर्म तपयामि स्वेन तेजसा।

अथर्व शिरम्, पृ. ३९३-३९४

रुद्र का सृष्टि कर्तृत्व

रुद्र के सृष्टि कर्तृत्व तथा व्यापकत्व के विषय में यह कहा गया है कि वह एक ही देव है जो सर्वत्र सभी दिशाओं में रहता है, सर्व प्रथम वही उत्पन्न हुआ। वही मध्य में है और वही आदि में है वही अन्त में भी है। वह प्रत्येक व्यक्ति में व्याप्त है। केवल एक रुद्र ही है जो सबका नियमन करता है, सभी उसी के भीतर रहते हैं और अन्त में सभी का लय उसी में हो जाता है। वह विश्व का सृजन भी करता है और रक्षण भी करता है। जो सब में व्याप्त हो रहा है और सभी जिसमें व्याप्त हैं, उसका ध्यान करने से जीव को शान्ति मिलती है।[१]

इस रूप में रुद्र वैदिक वाङ्मय में जहाँ रुलाने वाले देवता के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं वहीं वे कृपा करने वाले देवता के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं। वे औषधिकर्ता और पशुप अर्थात् प्राणियों की रक्षा करने वाले हैं।

---

१. एकोह देवः प्रदिशोनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उगर्भे अन्तः स एव
जात स जनिष्यमाणः प्रत्यंङ् जनास्तिष्ठति सर्वोमुखः।

अथर्व शिरस्, पृ. ३९९

द्वितीय अध्याय

(शिव पुराण का परिचय एवं उसमें शिव का स्वरूप)

द्वितीय अध्याय

(शिव पुराण का परिचय एवं उसमें शिव का स्वरूप)

शिव पुराण, समय, विषय, शिव स्वरूप, शिव-माहात्य, शिव की शक्तियाँ, रुद्र, शिव और रुद्र में अभेद रुद्र का सृष्टि कर्तृत्त्व, रुद्र का सृष्टि विनाशकत्व नन्दिकेश्वर, शिव का अघोर रूप, शिव का पशुप रूपमहेश की पंच तथा अष्टमूर्तियाँ, लिंग रूप शिव।

द्वितीय अध्याय

(शिव पुराण का परिचय एवं उसमें शिव का स्वरूप)

संस्कृत वाड्.मय का पुराण खण्ड अपनी कथाओं और विचार धाराओं से इतना अधिक सार्थक और प्रभावशाली है कि यह सम्पूर्ण देश को सहस्त्राब्दियों से प्रभावित और अनुप्राणित कर रहा है। अठारह पुराण और लगभग इतने ही उप पुराण एक ऐसी विपुल साहित्य निधि इस देश को प्रदान की गई जिससे यह देश सामाजिक सम्पुष्टता और सांस्कृतिक प्रभुता से बहुत समय तक सम्पन्न रहेगा!

शिव पुराण

एक महत्व पूर्ण पुराण पुराणों का त्रिविध विभाजन करता है। यह विभाजन है- सात्विक, राजस और तामस। सात्विक पुराण प्रायः वे कहे गए हैं, जिनमें विष्णु का महत्त्व अधिक रूप से वर्णित है। राजस पुराण वे हैं, जिनमें ब्रह्मा तथा अग्नि का महत्त्व कहा गया है। इसी तरह से तामस पुराण वे हैं, जिनमें शिव का वर्णन है।[1] गरुड पुराण में इस विभाजन के सात्विक आदि भेदों उत्तम, मध्यम और अधम सात्विक जैसा भेद किया है।[2]

---

१. सात्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरे ।
राजसेषु च माहात्म्यधिकं ब्रह्मणो विदुः ।
तद्वदग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च ।
संकीर्णेषु सरस्वत्याः पितृणां च निगद्यते ।। म. पु. अ. ५

२. सत्वाधमे मात्स्य कौर्म तदाहुर्वायुं चाहुः सात्विकं मध्यमं च
विष्णोः पुराणं भागवतं पुराणं सत्वोत्तमे गारुडं प्राहुरार्याः । म. पु. अ. १०

पद्म पुराण एक अन्य प्रकार का विभाजन करता है। इस पुराण के अनुसार मत्स्य, कूर्म, लिंग, शिव, स्कन्ध और अग्नि ये छह पुराण तामस पुराण हैं। ब्रह्माण्ड-ब्रह्म वैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य, वामन और ब्रह्म ये छह पुराण राजस पुराण हैं। विष्णु, नारद, भागवत, गरुड, पदम् और वाराह ये छह सात्विक पुराण कहे गए हैं। यह वर्गीकरण भी विष्णु को सात्विक मानकर किया गया है। इस वर्गीकरण में एक बात यह दिखाई देती है कि इसमें सात्विक, राजस और तामस पुराणों की संख्या समान रूप से कही गई है।[1]

स्कन्द पुराण का यह मत है कि अठारह पुराणों में से दश पुराणों में केवल शिव की स्तुति की गई है। चार पुराण ब्रह्मा की स्तुति करते हैं और दो पुराण देवी तथा हरि की स्तुति करते हैं। वहाँ पर यद्यपि इन पुराणों का नाम नहीं दिया गया है।[2]

इन विविध दृष्टिकोणों को ध्यान में रखकर आधुनिक दृष्टि से पुराणों के छह वर्गीकरण किए गए हैं।[3] इनमें सभी पुराण सम्मिलित हैं। यह वर्गीकरण विविध मत तो दर्शाता है किन्तु वैज्ञानिक नहीं है।

---

१. मात्स्यं कौर्मं तथा लैङ्गं शैवं स्कान्दं तथैव च।
आग्नेयं च षडेतानि तामसानि निवोध मे।
वैष्णवं नारदीयं च तथा भागवतं शुभम्।
गारुडं च तथा पादमं वाराहं शुभ दर्शने।
सात्विकानि पुराणानि विज्ञेयानि शुभानि वै।
ब्रह्माण्डं ब्रह्मवैवर्त मार्कण्डेयं तथैव च।
भविष्यं वामनं ब्राहमं राजसानि निबोध मे।।

प. पु. ३० खण्ड, १६३।८१-८४

२. अष्टादश पुरणेषु दशभिर्गीयते शिवः।
चतुर्भिर्भगवान् ब्रह्मा द्वाभ्यां देवो तथा हरिः। स्कन्द, केदारखण्ड १

३. पु. वि. पृ. ९३

आधुनिक वर्गीकरण में प्रथम वर्ग में वे पुराण हैं जिन्हें साहित्य का विश्व कोष कहा जाता है। इन पुराणों में मानव समाज के लिए उपयोगी सभी विद्याओं का आध्यात्मिक तथा भौतिक अंश संकलित कर दिया गया है। ऐसे पुराणों में गरुड, अग्नि और नारद पुराण को समाहित किया गया है। कुछ पुराण ऐसे हैं जिनमें विविध तीर्थों और व्रतों का वर्णन किया गया है। इन पुराणों में पद्म, स्कन्ध तथा भविष्य पुराणों की गणना की गई है। वैसे व्रतों और तीर्थो का वर्णन अन्य पुराणों में भी दिखाई देता है किन्तु इन पुराणों में इनका वर्णन विशेष रूप से किया गया है।

अन्य कुछ पुराणों के विषय में कहा जाता है कि इनके दो-दो संस्करण हो चुके हैं। इनका मूल भाग तो वही है किन्तु इनके द्वितीय संस्करण में आगे-पीछे बहुत कुछ जोड़ा गया है। जो पुराण ऐतिहासिक हैं वे कलियुग के राजाओं का विशेष रूप से वर्णन करते हैं। यह वर्णन ऐतिहासिक दृष्टि को रखकर किया गया है- ऐसा कुछ समालोचकों का मन्तव्य है। इसमें वायु पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण का अन्तः साम्य बहुत अधिक है- ऐसा भी कहा जाता है।[1] पुराणों का एक वर्ग ऐसा है[1] जिसमें साम्प्रदायिक पुराणों का अन्तर्भाव है, इसमें लिंग, वामन और मार्कण्डेय पुराण आते हैं। एक अन्य पुराण-वर्ग के विषय में यह कहा जाता है कि इस वर्ग के पुराणों का इतना अधिक संशोधन किया गया है कि इनका मूल पाठ ही नहीं रह गया है।[2]

१.ज. वे. इ. (भाग७ एवं ८)

२. कल्याण (सं.), पृ. ५५२-५५३

समय

वायु पुराण तथा शिव पुराण की कथा वस्तु की भिन्नता होने पर भी पुराण–गणना के क्रम में किस पुराण को चतुर्थ पुराण के रूप में गिना जाए, यह विवाद निरन्तर बना रहा है। शिव पुराण कितना प्राचीन तथा वायु पुराण कितना प्राचीन तथा अर्वाचीन है–यह भी विवाद का विषय रहा है। बम्बई के वेंकटेश्वर प्रेस से तथा पण्डित पुस्तकालय, काशी से छपकर- शिव पुराण निकला है। शिव पुराण की विघेश्वर संहिता में तथा वायवीय संहिता के पूर्वार्ध में बारह संहिताओं तथा उनकी श्लोक संख्या का निर्देश प्रायः एक रूप में ही किया है। इन संहिताओं का नाम है–विघेश्वर, रौद्र, विनायक, ओम, मातृ, रुद्रैकादश, कैलाश, शतरुद्र, कोटिरुद्र, सहस्त्रकोटि, वायुप्रोक्त तथा धर्म संहिता।[१]

शिव पुराण का रचना काल निर्धारित करना उसी प्रकार से कठिन और विवादास्पद है जैसे किसी भी पुराण का रचना समय इदमित्थं रूप से कहना कठिन है। तमिल क्षेत्र में शिव पुराण का प्रचलन और महत्त्व पूरी तरह से पुराने समय में व्याप्त था, जिसमें इस पुराण का तमिल अनुवाद तो उपलब्ध नहीं है किन्तु इसके तीन विशिष्ट आख्यानों का अनुवाद अवश्य हस्तलिखित रूप से प्राप्त है। इनमें से वेंकटेश्वर प्रेस से जो शिव पुराण प्रकाशित किया गया है उसमें शतरुद्रिय संहिता के १० से लेकर बारहवें अध्याय तक उपलब्ध हैं। इस तमिल अनुवाद के रचयिता तिरुमल्लैनाथ माने जाते हैं।[२]

---

१. पु. वि., पृ. ६३४–६३८
२. पु. पृ. २२९–२३०

अपने भारत भ्रमण के तारतम्य में अलवरूनी ने जो सूचनात्मक संकेत किए हैं, उनके अनुसार पुराणों की सूची में शिव पुराण का नाम दिया गया है। इन्होंने जो पुराणों की सूची दी है, वह दो प्रकार की है। एक सूची में वायु पुराण का नाम दिया गया है और उसी स्थान पर दूसरी सूची में शिव पुराण का नाम दिया गया है। इस सूची में शिव पुराण का नाम होने के कारण यह तो निश्चित किया ही जा सकता है कि इसकी रचना १०३० ईसवीय से पूर्व हो चुकी थी।

शिव पुराण के रचना काल के विषय में एक अन्य साक्ष्य यह दिया जाता है कि इस पुराण में प्रत्यभिज्ञादर्शन के सिद्धान्तों का विशद विवेचन किया गया है। इस विवेचन में चैतन्यात्मा प्रथम शिव सूत्र है और ज्ञानं बन्धः द्वितीय शिव सूत्र है।[1] शिव सूत्र की उपलब्धि का श्रेय आचार्य वसु गुप्त को है। इन आचार्य वसुगुप्त के शिष्य कल्लट थे, जो अर्वान्त वर्मा के राज्य काल में महनीय सिद्ध पुरूष के अवतार माने जाते थे। बसु गुप्त का ८२५ ईसवीय के आस पास होने के कारण यह कहना सुसंगत है कि शिव पुराण इसके पूर्व का रचित पुराण है।

---

१. चैतन्यमात्मेति मुने शिव सूत्रं प्रवर्तितम्।
चैतन्यमिति विश्वस्य सर्वज्ञान क्रियात्मकम्।।
स्वातन्त्र्यं तत्स्वभावो यः स आत्मा परिकीर्तितः।
इत्यादि शिव सूत्राणां वार्तिकं कथितं मया।
ज्ञानं बन्ध इतीदं तु द्वितीयं सूत्रमीशितुः।।

विषय

पुराणों का जो क्रम कहा जाता है उसमें शिव पुराण चतुर्थ पुराण कहा गया है। इस पुराण में सात संहिताऐं हैं। ये सात संहिताएँ इस रूप में कही गई हैं-१. विवेश्वर संहिता, २. रुद्र संहिता, ३. शतरुद्र संहिता, ४. कोटिरुद्र संहिता, ५. उमा संहिता, ६. कैलाश संहिता तथा ७. वायवीय संहिता।

इन संहिताओं में विविध विषयों का समावेश किया गया है। इसमें से विद्येश्वर संहिता में यह देखकर कि कलिकाल का प्रभाव बढ़ रहा है वर्णाश्रम धर्म की हीनता की स्थिति का वर्णन कर यह कहा गया कि घोर कलियुग के प्राप्त होने पर सभी नर पुण्य-रहित हो जाऐंगे, सभी दुराचार में फंसकर सत्य वार्ता से पराङ्‌मुख हो जाऐंगे। दूसरे की स्त्री के प्रति अभिलाषी होगें, दूसरे के धन की आकांक्षा करेंगे, दूसरे की स्त्री में आसक्त रहेंगे और पर हिंसा परायण होंगे। विप्र लोभ ग्रस्त होंगे, वेद के विक्रय करने वाले होंगे। क्षत्रिय पापाचार करने वाले तथा वैश्य संस्कार हीन होगें। शूद्र भी ब्राहमण का तिरस्कार करने वाले और अपने कर्तव्य का त्याग करने वाले होगें।[1]

---

१. प्राप्ते कलियुगे धोरे नराः पुण्यविवर्जिताः।
दुराचाररताः सर्वे सत्य वार्ता पराङमुखाः।।
पराषवाद निरताः परद्रव्याभिलाषिणः।
परस्त्रीसक्तमनसः परहिंसापरायणः।।
\- \- \- \-
विप्रा लोभग्रस्ता वेद विक्रयजीविनः।
धनार्जनार्थभम्यस्त विद्यामद्‌विमोहिताः।।
\- \- \- \-
क्षत्रियाश्च तथा सर्वे स्वधर्मत्याग शीलिनः।
असत्संगाः पापरता व्यभिचारपरायणाः।।
शि. म. पु. पृ. १९-२०

इस पुराण में कलिकाल में स्त्रियों की भ्रष्टता का भी संकेत किया गया है और कहा गया है कि स्त्रियाँ भी प्रायः भ्रष्ट होगीं। श्वसुर से द्रोह करने वाली तथा मलिन वसन धारिर्णी होंगी। ऐसी स्त्रियाँ पर पति के संग को महत्व देंगी, अपने पुत्रों-पुत्रियों के प्रति मोह हीना होंगी, विद्या हीना होंगी और प्रायः रोग ग्रस्त होंगी। इनकी बुद्धि प्रायः नष्ट होगी और ये अपना धर्म तथा शालीनता का त्याग कर देंगी। पुराणकार कहते हैं कि इस प्रकार की स्त्रियाँ प्रायः दुःख का अनुभव करेंगी तथा वे न तो इस लोक में सुख का अनुभव कर पाएँगी और न ही ऐसी स्त्रियाँ परलोक में प्रतिष्ठित हो सकेंगी। इसलिए अन्ततः पुराणकार यह कहते हैं कि परोपकार का जीवन जीना ही एक मात्र सज्जीवन है और परमार्थ से बढ़कर अन्य कोई धर्म भी नहीं।[1]

---

१. स्त्रियश्च प्रयाशो भ्रष्टा भर्त विज्ञान कारिका ।
श्वसुरद्रोह कारिण्यो निर्भाया मलिनासना: ।।
कुहावभावनिरता: कुशीला स्मरविह्वला: ।
जारसंगरता नित्यं स्वस्वामिविमुखस्तथा ।।
तनया मातृपित्रोश्च भक्तिहीना दुराशया: ।
अविद्यापाठका नित्यं रोग ग्रसितदेहका: ।।
एतेषां नष्टबुद्धीनां स्वधर्मत्यागशीलिनाम् ।
परलोकेपि इहलोके कथं सूत गतिर्भवेत् ।।
- - - - -
इति चिन्ताकुलं चिन्त्तं जायते सततं हि न: ।
परोपकार सदृशो नास्ति धर्मोऽपर: खलु ।। शि. म. पु., पृ. २०

इस पुराण की रुद्र संहिता में वर्णन है कि निर्गुण स्वरूप शिव शक्ति से सम्बद्ध होकर किस प्रकार से सृष्टि का निर्माण करते हैं बाद में नारद का मोह और उसके संमोहन से नारद का विष्णु लोक जाना और वहाँ पर भगवान विष्णु को नर रूप धारण करने का श्राप देने का वृतान्त भी वर्णित है। श्राप देने के बाद नारद तीर्थ क्षेत्रों के दर्शनार्थ यत्र-तत्र भ्रमण करते हैं, शिव के गणों से भेंट होने के बाद उन्हें शाप मुक्त होने का आश्वासन देते हैं। और फिर काशी क्षेत्र की ओर प्रयाण करते हैं।[1] इस क्रम में इस पुराण में भगवान शिव के लिंग पूजा का विधान महत्त्वपूर्ण ढ़ंग से प्रतिपादित किया गया है, क्योंकि लिंग स्वरूप शिव का महत्वपूर्ण स्वरूप है।

---

१. अन्तर्हिते हरौ विप्रा नारदो मुनि सत्तम: ।
विचचार महीं पश्यञ्शिवलिंगानि भक्तित: ।।
\- - - - -
आवां हरगणौ विप्र तवागस्कारिणौ मुने ।
\- - - - -
स्वकर्मण: फलं प्राप्तं कस्यापि न हि दूषणम् ।
सुप्रसन्नो भव विभो कुर्वनुग्रहमद्य नौ ।।
\- - - - -
यदुक्तं तत्त्वया भावि तथापि श्रृणुतां गणौ ।
शापोद्धारमहं वच्मि क्षमेप्याहमद्य मे ।
\- - - - -
नारदोऽपि परं प्रीतो ध्यायन्शिवमनन्यधी: ।
विचचार महीं पश्यञ्शिवतीर्थान्य भीक्ष्णश: ।।
शि. म. पु., पृ. ९५

सृष्टि के रक्षण के लिए हरि और विधि किस प्रकार से वराह रूप धारण करते हैं, किस प्रकार से भुवन का निर्माण होता है, किस प्रकार से कैलाश और वैकुन्ठ की उत्पत्ति होती है तथा किस प्रकार से शिव सृष्टि का विकास होता है- यह सब इस पुराण में विस्तार से कहा गया है।[1]

रुद्रसंहिता एक प्रकार से सृष्टि संहिता भी कही जा सकती है, क्योंकि इसमें सृष्टि का विधिवत् वर्णन किया गया है। सूक्ष्म भूत किस प्रकार पृथिवी-जल-तेजादि स्थूल भूतों की उत्पत्ति करते हैं, और किस तरह से समुद्र, पर्वतों का निर्माण होता है यह सब वर्णन प्राप्त है। इसके बाद ब्रह्मा के अंग से मरीचि आदि ऋषियों की उत्पत्ति का कथन, मनुष्य रूप में सुर और असुरों की उत्पत्ति का वर्णन, बाद में मैथुनी सृष्टि का कथन भी इस पुराण में वर्णित है।[2]

---

१. गमनेऽधो वराहस्य गतिर्भवति निश्चला।
धृत वराहरूपं हि विष्णुना वन चारिणा ।।
अथवा भवकल्याणार्थं तद् रूपं हि प्रकल्पितम् ।
विष्णुना च वराहस्य भुवनावनि कारिणा ।। शि. म. पु., पृ. १२३

२. शब्दादीनि च भूतानि पंचीकृत्याहमात्मना ।
तेभ्य: स्थूलं नभो वायुं वह्निं चैव जलं महीम् ।।
पर्वतांश्च समुद्रांश्च वृक्षादीनपि नारद ।
कलादियुग पर्यन्तान्कालानन्यानवासृजम् ।।
\- - - - -
मरीचिं च स्वनेत्राभ्यां हृदयाद् भृगुमेव च ।
शिरसोऽगिरसं व्यानात्पुलहं मुनि सत्तम् ।।
\- - - - -
सापुनर्मनुना तेन गृहीतातीव शोभना ।
विवाहविधिना तात सृजत्सर्गं समैथुनम् ।। वही पृ. १२५-१२६

रुद्र संहिता का दूसरा भाग सती खण्ड है। इसमें सती की उत्पत्ति और इसके पश्चात् सती के साथ शिव-विवाह का वर्णन किया गया है। इस विवाह के पश्चात् शिव से दक्ष का विरोध होता है, और दक्ष एक ऐसे यज्ञ का विधान करते हैं, जिसमें रुद्र का भाग नहीं होता। इस स्थिति में सती का कोप होता है। यज्ञ का विध्वंस हो जाता है। बाद में कुछ समय के पश्चात् जब श्री राम सीता को खोजते हुए वन में भ्रमण कर रहे होते हैं तो सती के मन में श्रीराम की परीक्षा लेने की इच्छा होती है। सीता के अन्वेषणकाल में सती की परीक्षाकी स्थिति से ऐसी परिस्थिति बनती है कि सती के मन में इस घटना से ग्लानि होती है। शिव भी श्रीराम को अपना इष्ट मानकर सती का मानसिक स्तर पर त्याग कर देते हैं, जिससे वे और खिन्न हो जाती हैं। और अंततः वे उसी दक्ष-यज्ञ में अपना शरीर त्याग देती हैं। जिसमें शिव को यज्ञ-भाग न देकर अपमानित किया गया था।[1]

---

१. रुद्रो ह्यं यज्ञवहिष्कृतो मे वर्णेष्वतीतोऽथ विवर्ण रूपः ।
देवैर्न भागं लभतां सहैव श्मशानवासी कुलजन्महीनः ।।

– – – – –

रे दक्ष सठ दुर्बुद्धे वृथैव शिव किंकराः ।
शप्तास्ते ब्रह्मचापल्याच्छिवतत्त्वमजानता ।।

– – – – –

ये रुद्र विमुखाश्चात्र ब्राह्मणास्त्वादृशः खलाः ।
रुद्रतेजः प्रभावत्वात्तेषां शाप्यं ददाम्यहम् ।।

– – – – – –

हतकल्मषतद्देहः प्राप्तच्य तदग्निना ।
भस्मसादभवत्सघो मुनिश्रेष्ठ तदिच्छया ।
तत्पश्यतां च खे भूयौ वादोऽभूत्सुमहांस्तदा ।
हाहेति सोऽद्भुतश्चित्रः सुरादीनां भयावहः ।। शि. म. पु.,पृ. २०१-२११

इस पुराण के पार्वती खण्ड में हिमवान् और मेनका के घर में पार्वती ने जिस प्रकार जन्म लिया, उसका वर्णन किया गया है। सती ने अपना वलिदान दक्ष के यज्ञ में करने के पश्चात् देवकार्य पूर्ण करने के निमित्त मैना के गर्भ से जन्म लिया। मेनका ने अपने समक्ष प्रादुर्भूत हुई उस देवी के दिव्य रूप को देखकर उसकी स्तुति की और कहा कि हे जगदम्बे! आपने करुणा करके ही मेरे यहाँ जन्म लिया है। हे भगवती! तुम आदि देवी हो, तुम्ही इस संसार की शक्ति हो, तुम्हीं त्रिलोक की जननी हो। तुम्हारा स्तवन सभी देवता करते हैं। हे देवी! मुझ पर कृपा करो और मेरे ध्यान में स्थित हो जाओ। हे देवी ! तुम साक्षात् देवी होकर भी मेरे लिए पुत्री सदृश हो जाओ।[1]

मेनका यह निवेदन करती है और इसके प्रत्युत्तर में देवी प्रसन्न होकर कहती है कि मैंने अपना यह रूप इस लिए धारण किया है जिससे जगत् को मेरी शक्ति के प्रति किसी प्रकार का भ्रम न हो। अब मैं तुम्हारी पुत्री के रूप में जन्म लेकर शिव की अर्धाङ्गिनी बनूँगी।[2]

---

१. जगदम्ब महेशानि कृतातिकरुणा त्वया।
आविर्भूताामम पुरी बिलसन्ती यदम्बिके।।
त्वामाद्या सर्वशन्क्तीनां त्रिलोकजननी शिवे।
शिव प्रिया सदा देवी सर्व देवस्तुतिपरा।।
कृपां कुरु महेशानि मम ध्यानस्थिता भव।
एतद्रूपेण प्रत्यक्षं रूपं देहि सुता समम्।। शि. म. पु., पृ. २५५

२. युवां मां पुत्रिभावेन दिव्यभावेन वाऽसकृत्
चिन्तयन्तौ कृतस्नेहौ यातोस्थो मद्गतिम्परराम्।।
शम्भु पत्नी भविष्यामि तारयिष्यामि सज्जनान्।। वही, पृ.२५६

शिव पुराण के वर्णन के इसी क्रम में शिव और पार्वती का संवाद भी मनोरम ढंग से प्रस्तुत किया गया है। पर्वत राज हिमालय के द्वारा प्रार्थना करने पर जब शिव उस प्रार्थना को स्वीकार नहीं करते तो काली रूप में शक्ति शिव से कहती है कि हे शिव। यदि शक्ति नहीं होगी तो फिर आपकी स्थिति कैसे सिद्ध की जा सकेगी। काली रूप धारिणी शक्ति कहती है कि इस संसार में वाणी, रचना-सभी कुछ प्रकृति पर भी निर्भर है। जो कुछ सुना जाता है, जो खाया जाता है, जो देखा जाता है और जो किया जाता है, वह सभी प्रकृति पर ही निर्भर है। इन्द्रिय-व्यवहार का जो जगत है, वह सभी प्रकृति-व्यवहार के अधीन है। वे कहती हैं कि यह मेरा अर्थात् प्रकृति का अनुग्रह है कि आप सगुण रूप में दृष्टि गत हैं। मेरे बिना आपकी कोई भी स्थिति नहीं है। नाना प्रकार के कर्म करने पर आप मेरे ही अधीन हैं। स्वतन्त्र रहकर आप कोई भी कर्म नहीं कर सकते हैं, क्योंकि तब आप प्रकृति के बिना निर्गुण रूप में होगे। निर्गुण रूप में होने पर आपका कोई स्वरूप ही सिद्ध नहीं हो सकेगा। वे शिव पर व्यंग करती हुई कहती हैं कि यदि आप प्रकृति से परे हैं तो मेरे पास आने पर भयभीत क्यों हो रहे हैं।[1]

---

१. यदुक्तं भवता योगिन्वचनं शंकर प्रभो।
सा च किं प्रकृतिर्न स्यादतीतस्तां भवान कथम्।।

\- - - - -

यच्छृणोषि यदश्नासि यत्पश्यसि करोषि यत्।
तत्सर्वं प्रकृतेः कार्यं मिथ्यावादो निरर्थकः।।

\- - - - -

इन्द्रियाणां गोचरत्वं यावद् भवति देहिनाम्।
तत्सर्वं विमंतव्यं प्राकृतं ज्ञानिभिर्धिया।।

\- - - - -

मदनुग्रहतस्त्वं हि सगुणो रूपवान्यतः।
मां विना त्वं निरीहोऽसि न किंचित्कर्तुर्हसि।।

शि. म. पु., पृ. २६७-२६८

भगवान् शिव द्वारा पत्नी के रूप में पार्वती को स्वीकार किए जाने के बाद शिव पुराण के इस खण्ड में सप्तर्षियों द्वारा पार्वती के परीक्षण का प्रसंग है और बाद में काम का भगवान शंकर के पास जाने का प्रसङ्ग कहा गया है। भगवान् शिव के अघोररूप का दर्शन जब मेनका को होता है तो मेनका क्रोधित होकर महर्षि नारद से कहती है कि ऋषिवर यह आपने क्या किया,मेरा ऐसा क्या अपराध था, जो आपने इस प्रकार का वर मुझे बताया। हे महर्षि! आपने तो इस तरह का व्यवहार किया है, जैसे कोई हवन का पवित्र भस्म का परिहार करके श्मशान भूमि की भस्म घर में इकट्ठी कर लेवे। वे अपने आपको धिक् कहती हैं, नारद को धिक्कार कहती हैं, और सप्तर्षियों को भी धिक्कार कहती हैं।

बाद में भगवान् शिव के सुन्दर स्वरूप की चर्चा करते हुए महर्षि नारद कहते हैं कि हे रानी! तुम्हें शिव के सुन्दर रूप का ज्ञान नहीं है। यह तो अद्भुत रूप धारण करने की भगवान् शिव की अद्भुत लीला ही है। यह उनका यथार्थ रूप नहीं है। उनका यथार्थ रूप तो परम सुन्दर और मंगलकारी है। इस लिए तुम खेद का भाव त्याग कर शिव के लिए शिवा का दान करो।[1]

---

१. किं करोमि क्व गच्छामि को मे दुखं व्यपोहताम् ।
कुलादिकं विनष्टं मे विहितं जीवितं मम ।।

– – – – –

गृहे यज्ञविभूतिं हि दूरीकृत्य सुमंगलाम् ।
गृहीतञ्च चिताभस्म त्वया पुत्रि ह्यमंगलम् ।।

– – – – –

यथार्थं सुन्दरं रूपं न ज्ञातं ते शिवस्य वै ।
लीलयेदं धृतं रूपं न यथार्थ शिवेन च ।।
तस्मात् क्रोधं परित्यज्य स्वस्था भव पतिवृते ।
कार्यं कुरु हठं त्यक्त्वा शिवां देहि शिवाय च ।। शि. म. पु. पृ. ३४१

अन्ततः भगवती का विवाह शिव के साथ करने के लिए मैना तैयार हो जाती है और हिमवान् तथा मैना शिवा का दान भगवान शंकर के लिए करती हैं। भगवान शिव के इस विवाह में जब पुरोहितों और हिमवान् के द्वारा शिव का कुल, गोत्र और प्रवर आदि पूछा जाता है तो एक बड़ी विचित्र स्थिति का निर्माण होता है क्योंकि शिव का न कोई कुल है, न कोई गोत्र है और न ही कोई प्रवर है। किन्तु नारद भगवान् शंकर का जिस रूप में परिचय देते हैं वह उनका निर्गुण रूप ही प्रकट है। नारद हिमवान को संबोधित कर कहते हैं कि इनके कुल गोत्र और प्रवरादि का ज्ञान तो ब्रह्मा, विष्णु आदि को भी नहीं है। जिनके एक दिन के काल परिमाण में करोड़ों ब्रह्मादि लय हो जाते हैं, काली की तपस्या के बल से वही आज शिव रूप में उपस्थित हैं। ये अरूपी परब्रह्म हैं, निर्गुण रूप हैं, और प्रकृति से परे हैं। इनका न कोई आकार है। न कोई इनमें विकार है। ये मायाधीश, साक्षात् परात्पर परब्रह्म हैं। न इनका कोई कुल है, और न कोई गोत्र है। पार्वती के तप से ही आज ये तुम्हारे जामाता हैं।[1]

---

१. त्वं हि मूढत्वमापन्नो न जानासि च किंचन ।
वाच्ये महेश विषयेऽतीवासि त्वं बहिर्मुखः ।।

– – – – –

अस्य गोत्रं कुलं नाम नैव जानन्ति पर्वत ।
विष्णु ब्रह्माद योऽपीहि परेषां का कथा स्मृता ।।
यस्यैकदिवसे शैल ब्रह्मकोटिर्लयं गतः ।
स एव शंकरस्तेऽद्य दृष्टः काली तपोवलात् ।।

– – – – –

अरूपोऽयं परब्रह्म निर्गुणः प्रकृतेः परः ।
निराकारो निर्विकारो मायाधीशः परात्परः ।।

शि. म. पु., पृ. ३५२

शिव पुराण के कुमार खण्ड में भगवान शंकर की गिरिजा के साथ हजारों वर्ष की दिव्य लीलाओं का वर्णन किया गया है। इसके बाद जिस रूप में कुमार का जन्म हुआ और जैसे छह कृत्तिकाओं ने कुमार का पालन-पोषण किया है, इसका वर्णन इस पुराण में है। तारक असुर का युद्ध में विनाश हो , यह सभी देवता चाहते थे। इसलिए शिव तथा ब्रह्मा आदि देवताओं ने अपने-अपने सामर्थ्य से कार्तिकेय को विविध अस्त्र-शस्त्र प्रदान किए। भगवान हरि ने कुमार को रत्नों से जटित किरीट प्रदान किया, बैजन्ती माला दी और स्वयम् का विशेष अस्त्र चक्रभी प्रदान किया। भगवान शंकर ने शूल, पिनाक, परशु, शक्ति, पाशुपतशर तथा इनके संचालन की परम विद्या प्रदान की। सुरेश्वर ने कार्तिकेय को गजेन्द्र और वज्र प्रदान किया। जलेश्वर ने उन्हें श्वेत छत्र, रत्न माला प्रदान की। इसी प्रकार से सूर्य, यम, अग्नि, वायु , कुबेर आदि ने प्रसन्न होकर कार्तिकेय को अस्त्र, शस्त्र प्रदान किए।[1]

---

१. सद्रत्न साररचितं किरीट मुकुटांगंदम् ।
बैजयन्ती स्वमालां च तस्मै चक्रं ददौ हरिः ।।
शूलंपिनाकं परशुं शक्ति पाशुपतं शरम् ।
संहारास्त्रं च परमां विद्यां तस्मै ददौ शिवः ।।

\- - - - -

गजेन्द्रं चैव वज्रं च ददौ तस्मै सुरेश्वरः ।
श्वेतच्छत्रं रत्नमालां ददौ वस्तुं जलेश्वरः ।।
मनोयायिरथं सूर्यः सन्नाहं च महाचयम् ।
यमदण्डं यमश्चैव सुधाकुंभं सुधा निधिः ।।

\- - - -

गदां ददौ कुबेरश्च शूलमीशो ददौ मुदा ।
नाना शस्त्राण्युपायांश्च सर्वे देवा ददुमुर्दा ।।
शि. म. पु.,पृ. ३८५

शिव पुराण की विषय वस्तु में युद्ध खण्ड में भगवान् शिव के और त्रिपुरासुर के युद्ध का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसमें ही शिव द्वारा जलन्धर के वध का वर्णन महिषासुर के पुत्र गजासुर का शिव द्वारा वध आदि का वर्णन किया गया है। शतरुद्र संहिता में अन्य कथाओं के साथ ही भगवान के मोहिनी रूप पर मोहित होने पर शिव के वीर्य स्खलन से अंजनिपुत्र का जन्म, अंजनि पुत्र द्वारा श्रीराम की सहायता के लिए उनके साथ जाना, इक्ष्वाकुंवश में उत्पन्न नभग के चरित्र वर्णन में कृष्ण दर्शन का प्रसंग और शिवावतार का प्रसंग तथा श्री शंभु का द्वादश लिंगों के रूप में अवतार वर्णन किया गया है।

कोटि रुद्र संहिताओं में काशी में स्थित शिव लिंग का माहात्म्य मल्लिकार्जुन ज्योतिलिंग के माहात्म्य का कथन, ओंकारेश्वर, केदारेश्वर, भीमेश्वर, विश्वेश्वर, त्र्यम्बकेश्वर, बैद्यनाथेश्वर, रामेश्वर, घुश्मेश्वर आदि का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार से शिवरात्रि का वर्णन भी इसी में किया गया है।[1]

---

१. विचार्य सर्व शास्त्राणि धर्मांश्चैवाप्यनेकशः ।
शिवरात्रिव्रतमिदं सर्वोत्कृष्टं प्रकीर्तितम् ।।
ब्रतानि विविधान्यत्र तीर्थानि विविधानि च ।
दानानि च विचित्राणि मखाश्च विविधास्तथा ।।
तपांसि विविधान्येव जपाश्चैवाप्यनेकशः ।
नैतेन समतां यान्ति शिवरात्रिव्रतेन च ।।
तस्माच्छुभतरं चैतत्कर्तव्यं हितमभीप्सुभिः ।
शिवरात्रि व्रतं दिव्यं भुक्ति मुक्ति प्रदं सदा ।।
शि. म. पु., पृ. ७६६

इस पुराण की पंचमी उमा संहिता है। इसमें उमा और दुर्गा की उत्पत्ति और उनके चरित्र का कथन तो किया गया है किन्तु साथ ही इस संहिता में भेद निरूपण तथा किन कर्मों से कौन से नरक प्राप्त होते हैं, इसका भी कथन किया गया है। जो जिस प्रकार का कर्म करता है, उसे उसी प्रकार का फल प्राप्त होता है। इसका वर्णन करते हुए शिव पुराण में यह कहा गया है कि जो क्रोध में भरकर कभी भी माता और पिता की भर्त्सना करता है, वह गन्दे पदार्थों से मुंह से पूर्ण होता है और बाद में मारा जाता है। इसी प्रकार से जो सज्जनों की निन्दा सुनते हैं, उनके कान लोहे की तप्त कीलों से पूरित किए जाते हैं। जो परस्त्री के स्पर्श के लोभ से उनके किसी अंग का स्पर्श करते हैं, उनके हाथ अग्नि सदृश वाणों से र्स्पश कराये जाते हैं। उनके पूरे शरीर में क्षार का अनुलोपन किया जाता है और इस प्रकार उन्हें घोरतम कष्ट प्राप्त होते हैं। जो कोई बिना देवता को बिना अग्नि को और बिना अपने गुरुजन को निवेदित किए हुए भोजन करता है वह लोह कीलों से बाद में जिह्वा में पीड़ित किया जाता है।[१]

---

१. निर्भर्त्सयति यः क्रूरो मातरं पितरं गुरुम् ।
विष्ठाभिः कृमिमिश्राभिर्मुखमापूर्य हन्यते ।।
– – – –
ये श्रृण्वन्ति सतां निन्दां तेषां कर्णप्रपूरणम् ।
अग्निवर्णैरयः कीलैस्तप्तैस्ताम्रादिनिर्मितैः ।।
त्रपुसीसार कूटाद्भिः क्षीरेण च पुनः ।
सुतप्ततीक्ष्ण तैलेन वज्रलेपेन वा पुनः ।।
– – – –
स्पर्श दोषेण ये मूढाः स्पर्शीति च परस्त्रियम् ।
तेषां करोऽग्नि वाणाभिः पांसुभिः पूर्यतेभृशम् ।।
– – – – –
देवाग्नि गुरुविप्रेभ्यश्चानिवेद्य प्रभुंजते ।
लोहकीलशतैस्तप्तैस्तज्जिह्वास्यं च पूर्यते । शि. म. पु.,पृ. ७९४

उमा के प्रादुर्भाव के वर्णन के संदर्भ में यह लिखा गया है कि एक बार देवताओं ने असुरों को युद्ध में पराजित कर दिया और अहंकार से भरकर स्वयम् की प्रशंसा करने लगे। उसी समय एक तेज प्रकट हुआ और उस तेज ने कहा कि यदि आप शक्तिशाली हैं तो इस तृण को हिला दें। देवता अपनी पूरी शक्ति का प्रयोग करनेके बाद भी उस तृण को नहीं हिला सके। बाद में वही उमा के रूप में चैत्र शुक्ल नवमी को मध्यान्ह में उत्पन्न हुई। वह चारों हाथों में पाश, अंकुश, श्रुति आदि धारण किए हुए थी। रक्त अम्बर धारण किए हुए थी, रक्त चन्दन का लेप मस्तक पर था। करोड़ों चन्द्रमा के सदृश सुन्दर रूप है और कामदेव के समान अनुपम सौन्दर्य है।[1]

इसी प्रकार से इस खण्ड में क्रिया, भक्ति और ज्ञान के क्रम का भी कथन किया गया है जिसमें यह कहा गया है कि कर्म से भक्ति का भक्ति से ज्ञान का उदय होता है। और ज्ञान के बल से ही मुक्ति प्राप्त होती है।[2]

---

१. चैत्र शुक्लनवम्यां तु मध्याह्नस्थे दिवाकरे ।
प्रादुरासीदुमा देवी सच्चिदानन्द रूपिणी ।।
\- \- \- \- \-
चतुर्भिदधती हस्तैर्वरपाशां कुशाभयान् ।
श्रुतिभिः सेविता रम्यानव यौवनगर्विता ।।
रक्ताम्वरपरीधाना रक्तमाल्यानुलेपना ।
कोटिकंदर्पसंकाशा चन्द्रकोटि समप्रभा ।।

२. ज्ञान योगः क्रिया योगो भक्तियोगस्तथैव च ।
त्रयो मार्गाः समाख्याताः श्री मातुर्भुक्तिमुक्तिदाः ।।
कर्मणाजायते भक्तिर्भक्त्या ज्ञानं प्रजायते ।। शि. म. पु., पृ. ८८५

शिव पुराण की कैलाश संहिता में अपेक्षाकृत रूप में शिव के माहात्म्य का कथन किया गया है और उनके नामों का विवरण दिया गया है। जैसे कि इसके नवम अध्याय में शिव के आठ नामों के महत्त्व के क्रम में शिव, महेश्वर, रुद्र, विष्णु, पितामह संसार वैद्य, सर्वज्ञ और परमात्मा के नाम गिनाए गए हैं। वहाँ पर इन नामों की गणना कराते हुए यह कहा गया है कि ये आठों नाम शिव के महत्त्व के प्रति पादक हैं। शिव के निर्मल स्वभाव की स्थापना में यह भी विवेचना है कि शिव रूप अनादि मल के संश्लेष से प्रथम ही विद्यमान है और त्रिविध उपाधियों की रचना करने के कारण ही शिव है।[१]

इसी संहिता में तथा आगे की संहिता वायवीय संहिता में शिव पुराण में शुद्ध रूप से तत्त्व ज्ञान का कथन किया गया है। इसके उन्नीसवें अध्याय में प्रज्ञानं ब्रह्म, अहं ब्रह्मास्मि, तत्त्वमसि अयमात्मा ब्रह्म, ईशावास्यमिदं सर्वम् आदि वाक्यों का निरूपण करते हुए यह संकेत किया गया है कि गुरु मुख से शिष्य के लिए जो उपदेश हो, वह यह स्पष्ट करे कि जो भूत कालिक है, वर्तमान कालिक है और भाविकालिक है, वह सब मैं हूँ और वही रुद्र है।[२]

---

१. शिवो महेश्वरश्चैव रुद्रो विष्णुः पितामहः ।
संसार वैद्यः सर्वज्ञः परमात्मेति मुख्यतः ।।
नामाष्टकमिदं नित्यं शिवस्य प्रतिपादकम् ।
आद्यन्त पञ्चकं तत्र शान्त्यतीताद्यनुक्रमात् ।।
शि. म. पु.,पृ. ९२१

२. यद्भूतं यच्च भव्यं यद् भविष्यत् सर्वमेव च ।
मन्ययत्वादहं सर्वः सर्वो वै रुद्रं इत्यपि ।।
शि. म. पु. पृ. ९३३

वायवीय संहिता में जहाँ श्रेष्ठ अनुष्ठान के स्वरूप का कथन है वहीं पर पशुपति व्रत विधान का वर्णन भी किया गया है। इस संहिता में भगवान के पशुपति स्वरूप की व्याख्या भी दी गई है और यह निरूपित किया गया है कि ब्रह्मादि जितने भी देवादि हैं वे सब पशु शब्द से कहे गए हैं। उनके पति होने के कारण भगवान शंकर पशुपति कहे जाते हैं। वे मल-मायादि के पाशों से सभी पशुओं को बाँधते हैं। और फिर वही उन सबको मुक्त करते हैं।[1]

इसी के क्रम में जिस आचार्य अथवा गुरु से दीक्षा प्राप्त होती है और परम कल्याण की प्राप्ति होती है, उसके महत्त्व का कथन इस पुराण में किया गया है। यह कहा गया है कि गुरु के आलोक मात्र से, उनके स्पर्श और संभाषणादि से प्राणी में विशेष संज्ञा जागृत हो जाती है।[2]

इस प्रकार से इस पुराण में विविध प्रकार की विषय वस्तु का संयोजन करके अन्त में इसमें यह कहा गया है कि इसे सावधानी पूर्वक पढना चाहिए और इससे श्रोता सदा-सदा कल्याण के अधिकारी होते हैं और भगवान शंकर सर्वदा ही उनका कल्याण करते हैं।[3]

---

१. ब्रह्माद्याः स्थावरांताश्च देव देवस्य शूलिनः ।
पशवः परि कीर्त्यते संसारवशवर्तिनः ।।
तेषां पतित्वाद् देवेशः शिवः पशुपतिः स्मृतः ।
मलमायादिभिः पाशैः स बध्नाति पशून्पतिः ।।
स एव मोचक स्तेषां भक्त्या सम्यगुपासितः ।
चतुर्विंशति तत्त्वानि माया कर्म गुणा अभी ।।
शि० म० पु०, पृ०, १०२३

२. वही, पृ०, १०५१

३. एतच्छिव पुराणस्य वक्तुः श्रोतुश्च सर्वदा ।
सगणः ससुतः सांबः करोतु स शंकरः ।। वही, पृ० १११८

शिव स्वरूप

शिव के स्वरूप-निरूपण के सम्बन्ध में इस पुराण में यह कहा गया है कि शिव मुख्य रूप से अद्वैत स्वरूप हैं। द्वैत और नश्वर स्वरूप ब्रह्मा का है, किन्तु शिव का अद्वैत स्वरुप् है। वह शिव सर्वज्ञ है, सर्व कर्त्ता है और सर्वेश्वर है वह त्रिदेव का जनक है और सत् चित तथा आनन्द रूप है। वही शंकर अपनी इच्छा से संकुचित रूप में उत्पन्न और प्रकट होता है, तथा वही वृहद् रूप में स्वेच्छा से प्रकट होता है।[1]

भगवान शिव के स्वरूप-कथन में इन्हें ज्ञान रूप, अव्यय, साक्षी, ज्ञानगम्य, अद्वय, कैवल्य के प्रदाता के रूप निरूपित किया गया है। इस रूप में शिव न रक्त रूप हैं, न पीत रूप हैं, न श्वेत रूप हैं, न नील रूप हैं, न ह्रस्व हैं, न दीर्घ हैं, न स्थूल हैं, और न ही सूक्ष्म हैं। जहाँ मन के सहित वाणी प्रवृत्त नहीं होती वह ब्रह्म रूप शिव का ही है।[2]

शिव का यह अव्यय और निर्विकारी रूप जब सगुण रूप में व्यक्त दिखाई देता है तब वह परम आकर्षक और मनोहारी दिखता है। इस रूप में उनका दिव्य विग्रह सभी अंगों से सुन्दर है। करोड़ों सूर्य की प्रभामण्डल सा चमकने वाला शिव का रूप है।

---

१. अद्वैत शैव वादोऽयं द्वैतं न सहते क्वचित्।
द्वैतं च नश्वरं ब्रह्माद्वैतं परम नश्वरम्।।
सर्वज्ञः सर्वकर्ता च शिवः सर्वेश्वरोऽगुणः।
त्रिदेव जनको ब्रह्मा सच्चिदानन्द विग्रहः।।
स एव शंकरो देवः स्वेच्छया च स्वमायया।
संकुचद्रूप इव सत्पुरुष संवभूव ह।।
शि. म., पु., पृ. ९२७

२. ज्ञानरुपोऽ व्ययः साक्षी ज्ञानगम्योऽद्वयः स्वयम्।
कैवल्य मुक्तिदः सोऽत्र भिवर्गस्य प्रदोऽपि हि।।
— — — — —
न रक्तो नैव पीतश्च न श्वेतो नील एव च।
न ह्रस्वो न च दीर्घश्च न स्थूल सूक्ष्म एव च।।
वही, पृ. ७६६

उनका रूप प्रसन्न मुद्रावाला, हँसता हुआ लावण्य से युक्त है। उनका सुन्दर स्वरूप गौर वर्ण वाला है, चन्द्र रेखा विभूषित है। अनेक प्रकार के विभूषणों से मण्डित है, गंगा-यमुना से अलंकृत है।[१]

शिव का जो अद्‌भुत रूप कहा गया है, उसके अनुसार वे पंच वक्त्र, त्रिनयन, भालचन्द्र और गदा धारण करने वाले हैं। वे गौर वर्ण के हैं, ललाट पर भस्म का लेप किए हैं। उनके दश भुजाऐं हैं, नीला कण्ठ है, सभी प्रकार के आभूषणों से आभूषित हैं।[२] इस रूप में भगवान् शिव अपने अव्यक्त रूप में जहाँ अव्यय, नित्य, निर्विकार और कुटस्थ हैं। वहीं वे साकार स्वरूप में सुन्दर आनन्द दायक और सभी प्रकार के आभूषण धारण किए हुए हैं। वे पञ्च वक्त्र वाले हैं और अपने मस्तक पर त्रिपुण्ड धारण किए हुए हैं। इस प्रकार वे निर्गुण भी हैं और सगुण भी हैं। यही उनके स्वरूप का वैशिष्ट्य है।

---

१. कोटि सूर्य प्रतीकाशं सर्वावयव सुन्दरम्।
विचित्रवसनं चात्र नाना भूषण भूषितम्।।
सुप्रसन्नं सुहासं च सुलावण्यं सुमनोहरम्।
गोराभं द्युति संयुक्तं चन्द्र रेखा विभूषिताम्।।

\- - - - -

सर्वथा रमणीयं च भूषितस्य विभूषणैः।
वाहनस्य महा शोभा वर्णितुं नैव शक्यते।।

शि. म. पु., ३४६

२. पञ्चवक्त्रस्त्रि नयनो भाल चन्द्रो जटाधरः।
गौर वर्णो विशालक्षो भस्मोद् धूलित विग्रहः।।
दशबाहुर्नीलगलः सर्वाभरण भूषितः।
सर्वाङ्ग सुन्दरो भस्म त्रिपुण्डान्तिक मस्तकः।।

वही, पृ. १०४

शिव माहात्म्य

शिव के माहात्म्य का कथन शिव पुराण में विस्तार के साथ किया गया है। स्वयम् महेश ब्रह्मा और विष्णु को संबोधित कर कहते हैं कि तुम दोनों की उत्पत्ति मेरी मायात्मक शक्ति से हुई है। प्रलयात्मक स्थित्यात्मक और विनाशात्मक इस सम्पूर्ण सृष्टि का कर्ता मैं ही हूँ। मैं परब्रह्म हूँ, निर्विकारी हूँ और सत् चित् तथा आनन्द लक्षण वाला हूँ।[1]

अपनी पुत्री के विवाह के अवसर पर शिव का अद्भुत रूप देखकर जब मेना के मन में विकार उत्पन्न हुआ तो उसका समाधान करते हुए ब्रह्मा जी ने कहा कि मेना! तुम शिव के यथार्थ रूप को नहीं जानती हो। शिव ही जगत के कर्ता, भर्ता और हर्ता हैं। इनके अनेक रूप हैं, अनेक प्रकार की इनकी लीलाऐं हैं। ये सभी के स्वामी, स्वतन्त्र, मायाधीश और अविकल्प हैं। भगवान् विष्णु ने उनके इस कथन का समर्थन किया और कहा कि वे निर्गुण, सगुण दोनों ही रूप वाले हैं। इन्होंने ही इस त्रिगुणात्मक प्रकृति की रचना की है।[2]

---

१. युवां प्रसूतौ प्रकृतेर्मदीयाया महाबलौ ।
गात्राभ्यां सव्यसव्याभ्यां मम सर्वेश्वरस्य हि ।।
_ _ _ _ _
प्रलयस्थिति सर्गाणां कर्ताऽहं सगुणोऽगुणः ।
परब्रह्मनिर्विकारी सच्चिदानन्द लक्षणः ।। शि. म. पु., पृ. १०५

२. शंकरो जगतः कर्ता भर्ता हर्ता तथैव च ।
_ _ _ _ _
अनेक रूपनामा च नानालीलाकरः प्रभुः ।
सर्वे स्वामी स्वतन्त्रश्च मायाधीशोऽविकल्पकः ।।
_ _ _ _ _
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं यत्किंचिद्दृश्यते जगत्।
तत् सर्वं च शिवं विद्धि नात्र कार्या विचारणा ।। वही पृ. ३४४-३४५

शिव की महत्ता का और उनकी शक्ति- सामर्थ्य का वर्णन महर्षि सूत जी ने इस रूप में किया है, जिसमें यह कहा गया है कि सृष्टि के पूर्व में शिव थे, सृष्टि के मध्य में शिव हैं और सृष्टि के अन्त में भी शिव ही हैं। किन्तु इस रूप में शिव रूप में होते हुए भी शिव सर्व शून्यात्मक हैं। वे कारण भूत भी हैं और स्वयम् कार्य रूप भी हैं। वे एक भी हैं और अनेक भी हैं। एक बीज रूप में वे स्वयम् उत्पन्न हो कर बहुत रूप में हो जाते हैं।[1]

शिव सर्वज्ञ हैं, सर्वकर्ता हैं, सर्वेश्वर हैं, त्रिदेवों के जनक ब्रह्म रूप हैं। वे ही अपनी माया से संकुचित होकर सतपुरुष रूप हो जाते हैं।[2]

जिस प्रकार शिव के माहात्म्य का कथन किया गया है, उसी तरह से शिव नाम की महिमा का भी आख्यान किया गया है और कहा गया है कि जिसके मुख में शिव नाम रहता है, उसे कभी भी पाप स्पर्श नहीं कर पाते । जो अपने मुख से शिव का नाम जप करता है, उसका मुख एक पावन तीर्थ के समान होता है।[3]

---

१. सृष्टेः पूर्वं शिवः प्रोक्तः सृष्टेर्मध्ये शिवस्तथा ।
सृष्टेरन्ते शिवः प्रोक्तः सर्व शून्ये सदा शिवः ।।
\- - - - -
स्वयं च कारणं कार्यं स्वस्य नैव कदाचन ।
एकोऽप्यनेकतां यातोऽप्यनेकोप्येकतां ब्रजेत् ।।
एकं बीजं बहिर्भूत्वा पुनर्बीजं च जायते ।
बहुत्वे च स्वयं सर्वं शिवरूपी महेश्वरः ।।
\- - - - -
एक बीजं बहिर्भूत्वा पुनर्बीजं च जायते ।
बहुत्वे च स्वयम् सर्वं शिव रूपी महेश्वरः ।। शि. म. पु., पृ. ७६८

२. वही, पृ. ९२६

३. वही, पृ. ७३

शिव की शक्तियाँ

जिससे वशीकृत सभी कुछ है उसी से यह शिव है- ऐसा शिव के विषय में कहा गया है। शिव ही सर्वज्ञ है, शिव ही परिपूर्ण है, और शिव ही निस्पृह है। शिव ही सर्वरूप में विद्यमान है। शिव की विशिष्ट शक्तियों का निरूपण करते हुए यह कहा गया है कि प्रकृति के आठ बन्धनों से जीव बंधा हुआ है। यही जीव का बन्धन है। ये बन्धन हैं- प्रकृति, बुद्धि,अहंकार तथा पंच तन्मात्राएँ । यही आठ अपनी बंधनात्मक प्रकृति से जीव को बांधे हुए हैं। प्रकृति आदि के द्वारा कृत कर्म ही देह के कर्म कहे जाते हैं। इसी कर्म फल रूपी बन्धन का ही यह प्रभाव है कि जीव अनन्त काल तक संसार बंधन में बंधा हुआ आवागमन के चक्रमें फंसा रहता है। अतः शिव की प्रसन्नता प्राप्त करके प्रकृति को अपने वश में करना चाहिए और शिव ही इससे मुक्त करते हैं।[2]

शिव ही इस सृष्टि के परम कारण हैं। अर्थात् वे ही इस संसार में कारण रूप में विद्यमान हैं। इस संसार में जो माया का चक्र परिभ्रमित हो रहा है, उसे परिभ्रमित करने की शक्ति भी शिव में ही है। अर्थात् संसार के इस माया चक्र को भी शिव ही संचालित करते हैं।

---

१. सर्वं वशीकृतं यस्मात्तस्माच्छिव इति स्मृतः ।
शिव एव हि सर्वज्ञः परिपूर्णश्च निः स्पृहा ।। शि. म.पु., पृ. ५९

२. प्रकृत्यादि वशीकारो मोक्ष इत्युच्यते स्वतः ।
बद्ध जीवस्तु निर्मुक्तो मुक्त जीवः स कथ्यते ।।
प्रकृत्यग्रे ततो बुद्धिरंहकारो गुणात्मकः ।
पचतन्मात्रमित्येतत्प्रकृत्याद्यष्टकं विभुः ।।
प्रकृत्याद्यष्टजो देहो देहजं कर्म उच्यते ।
पुनश्च कर्मजो देहो जन्मकर्म पुनः पुनः ।।
- - - - -
अतः शिव प्रसादेन प्रकृत्यादिवशं भवेत् ।
वही, पृ. ५९

यह संसार की माया उसी को समर्पित कर देनी चाहिए। वे ही जीव को इस माया चक्र से मुक्त करते हैं।[1]

शिव की महिमा का आख्यान करते हुए यह कहा गया है कि शिव ही सर्वेश्वर हैं, शिव ही विशिष्ट देव हैं। उनकी महिमा का यह महत्त्व है कि वे ही इस सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त हैं। उनकी ही मूर्ति ब्रह्म रूपिणी और विष्णु रूपिणी है। सभी मूलमात्र में वे व्याप्त हैं और स्वयम् लिङ्ग· रूप धारी हैं। देवताओं की आठ योनियाँ, मनुष्य की नव योनियाँ, तिर्यगों की पाँच योनियाँ सभी शिव में ही समाहित हैं। ये सभी शिव में ही होती हुई वृद्धि को प्राप्त होती हैं, और लीन भी हो जाती हैं।[2]

इस प्रकार से शिव की शक्तियों का कथन करते हुए यह कहा गया है कि सम्पूर्ण प्रकार के पापों के मूल और सभी प्रकार के दुःख–दोष शिव का नाम मात्र लेने से नष्ट हो जाते हैं।[3] यह शिव की और उनके नाम की शक्ति का परम सामर्थ्य है।

---

१. माया चक्र प्रणेता हि शिवः परमकारणम् ।
शिव मायार्पित द्वन्द्वं शिवस्तु परिमार्जीति ।। शि. म. पु., पृ. ६४

२. शिव सर्वेश्वरो देवः सर्वात्मा सर्व दर्शनः ।
महिमा तस्य सर्वंहि व्याप्तं च सकलं जगत् ।।
शिवस्यैव पराभूर्तिव्रह्म विष्ठवीश्वरात्मिका ।
सर्वभूतात्मभूताख्या त्रिलिंगा लिंग रूपिणी ।।
देवानां योनयश्चाष्टौ मानुषी नवमी च या ।
तिरश्चां योनयः पञ्च भवत्येवं चतुर्दश ।।
भूता वा वर्तमाना वा भविष्याश्चैव सर्वशः ।
शिवात्सर्वे प्रवर्तन्ते लीयन्ते बृद्धि भागतः ।। वही पृ. ७८२

३. पापमूलानि दुःखानि विविधान्यपि शौनक ।
शिव नामैकनश्यानि नान्यनश्यानि सर्वथा ।। वही पृ. ७४

रुद्र

ब्रह्मा, विष्णु और महेश देवों का पुराणों में महत्त्वपूर्ण रीति से कथन किया गया है। इन तीनों देवताओं के सम्बन्ध में यह कथन है कि ब्रह्मा सृष्टि की उत्पत्ति कर्ता, विष्णु पालक और महेश विनाशक हैं। शिव पुराण में एक स्थान पर यह कहा गया है कि ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र महेश के ही अंश हैं और इनकी उत्पत्ति महेश से हुई है। महेश का इस सम्बन्ध में स्वयम् ही कथन है कि मेरे शिव स्वरूप से दक्षिण भाग से पितामह ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई है और मेरे वाम पार्श्व से विष्णु की उत्पत्ति हुई है।[1] इसी प्रकार से यह कहा गया है कि मेरे ही रूप से रुद्र का अवतरण हुआ है। मेरे इसी रूप के अवतरण को लोक में रुद्र नाम से कहा जाता है। इसी के साथ यह भी कथन है कि यह रुद्र रूप मेरा ही अंश है, इस लिए जो सामर्थ्य इसमें है, वही सामर्थ्य मुझमें है। जो यह है, वही मैं हूँ। इन दोनों रूपों में किसी प्रकार का भेद नहीं है। इस रूप में महेश का कथन है कि जो पूजा-विधि मेरी है, वही इसकी भी है। इसमें भी कोई भिन्नता नहीं है।[2]

---

१. अयं मे दक्षिणात्पाश्र्वाद् ब्रह्मा लोक पितामहः ।
वाम पार्श्वच्च विष्णुस्त्वं समुत्पन्नः परात्मनः ।।
शि. म. पु., पृ. १०५

२. मद्रूपं परमं ब्रह्मन् नीदृशं भवदंगतः ।
प्रकटी भवितालोके नाम्ना रुद्रः प्रकीर्तितः ।।
\- \- \- \- \-
मदंशान्तस्य सामर्थ्यं न्यूनं नैव भविष्यति ।
योऽहं न सोऽहं भेदोऽस्ति पूजा विधि विधानतः ।। वही, पृ. १०५
\- \- \- \- \-
तस्य वामांगजो विष्णुर्ब्रह्माहं दक्षिणांगजः ।
रुद्रो हृदयतो जातोऽभवच्च मुनिसत्तम् ।।

शिव और रुद्र में अभेद

भगवान महेश स्वयम् ही यह कहते हैं कि जो मेरा शिव स्वरूप है, वही रुद्र स्वरूप है। वस्तुतः इन दोनों स्वरूपों को एक मानकर ही व्यवहार करना चाहिए और शिव तथा रुद्रमें किसी भी स्थिति में भेद नहीं करना चाहिए। शिव और रुद्र की इस अभिन्न स्थिति के स्थापन में यह तर्क दिया गया है कि जैसे स्वर्ण और स्वर्ण-निर्मित अलंकारों में नाम मात्र का भेद होता है, उसी प्रकार का भेद वस्तुतः शिव और रुद्र में है। यर्थाथ में कोई भेद नहीं है। इसी तरह से एक तर्क यह दिया गया है कि जैसे मृत्तिका से अनेक प्रकार के घटादि बनते हैं, किन्तु कारण रूप मृत्तिका सभी में एक रूप में विद्यमान है और विविध रूप में घटों के जो पृथक्-पृथक् नाम हैं वे कल्पित हैं, उसी तरह से शिव और रुद्र के भिन्न नाम कल्पित हैं। वे दोनों वस्तुतः एक हैं।[1]

एक अन्य स्थान पर शिव और रुद्र के अभेद कथन में यह कहा गया है कि रुद्र शिव के हृदय से उत्पन्न हुए। ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र रूप में शिव त्रिधा समुद्भूत हुए।

---

१. शिव रूपं ममैतच्च रुद्रोऽपि शिववत्तदा ।
न तत्र परं भेदो वै कर्तव्यश्च महामुने ।।
– – – – –
सुवर्णस्य तथैकस्य वस्तुत्वं नैव गच्छति ।
अलंकृतिकृते देव नाम भेदो न वस्तुतः ।।
यथैकस्या मृदो भेदे नानापात्रे न वस्तुतः ।
कारण रूपैव कार्ये च सन्निधानं निदर्शनम् ।।
शि. म. पु., पृ. १०५

विष्णु पालक के रूप में, ब्रह्मा उत्पत्ति कर्त्ता के रूप में तथा रुद्र संहारक के रूप में शिव त्रिधा उत्पन्न हुए।[1]

निर्गुण परमात्मा से सगुण रूप में रुद्र की शिव से अभिन्नता का कथन करते हुए यह कहा गया है कि जो पूर्व में निर्गुण था वही बाद में सगुण रूप में शिव संज्ञक हुआ। बाद में निर्गुण शिव स्वरूप लोकानुग्रह के भाव से रुद्र रूप में प्रादुर्भूत हुआ। शिव में जिन त्रिगुणों का आधान था, वही त्रिगुण समविन्त होकर गुण धाम रुद्र प्रकट हुआ। इसलिए स्वर्ण और स्वर्णाभूषणों में जैसे अभिन्नता होती है वैसे ही शिव और रुद्र में अभिन्नता है।[2]

बाद में यह कहा गया है कि जिस प्रकार से निर्गुण के क्रम से सगुण की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार से विलोम भाव से सगुण का निर्गुण में विलय होता है और रुद्र का विलय शिव रूप में हो जाता है।[2] और इस रूप में यद्यपि रुद्र में संहारात्मक विशिष्ट शक्ति है किन्तु रुद्र और शिव में किसी प्रकार की भिन्नता न होकर मूल रूप से अभिन्नता है।

---

१. पुरा यदा शिवो देवो निर्गुणो निर्विकल्पकः ।
अरूपः शक्ति रहितश्चिन्मात्रः सदसत्परः ।।
रुद्रो हृदयतो जातोऽभवच्च मुनि सत्तम् ।
– – – – –
सृष्टि कर्त्ताऽभवं ब्रह्मा विष्णुः पालनकारकः ।।
लयकर्ता स्वयं रुद्रस्त्रिधाभूतः सदा शिवः ।।
शि. म. पु., पृ. १३९

२. शिवे त्रिगुण सम्भिन्ने रुद्रे तु गुणधामनि ।
वस्तुतो न हि भेदोऽस्ति स्वर्णे तद्भूषणे यथा ।।
– – – – –
सर्वथाशिव रूपोहि रुद्रो रौद्र पराक्रमः ।
– – – – –
अन्ये च ये समुत्पन्ना यथानुक्रमतोलयम् ।
यान्ति नैव तथा रुद्रः शिवे रुद्रो विलीयते ।। वही, पृ. ७६८

रुद्र का सृष्टि कर्तृत्व

भगवान रुद्र के अक्षरों की महत्ता के कथन में शिव पुराण में यह प्रतिपादन है कि मनसा, वाचा, कर्मणा, चिन्तासे रहित वह एकाक्षरात्मक है। वह अपने एकाक्षर स्वरूप से सृष्टि का परम कारण है। वही इसी रूप से सत्य, आनन्द और अमृत का स्वरूप है। भगवान रुद्र अपने रकार अक्षर से इस ब्रह्माण्ड के बीज हैं। इसी उकारात्मक रूप अक्षर से ही ईश्वर परम कारण हैं। इसी उका- रात्मक रुप से भगवान मोहक हैं। उकार रूप से भगवान हरि प्रधान परमेश्वर हैं। यही परम प्रभु सभी लोकों का परम सृष्टि रूप हैं।[1]

रुद्र की स्तुति करते हुए यह कहा गया है कि परमात्मा, कपर्दी महेश के लिए नमस्कार है। वे ही विश्व का सृजन करने वाले विधाता हैं। वे त्रिगुण हैं और निर्गुण हैं।[2]

एक स्थान पर यह कहा गया है कि भगवान शिव की जो तामसी मूर्ति रौद्र मूर्ति कही गई है, वही अपनी आज्ञा के बल से चतुरानन से सृष्टि का सृजन कराती है।[3]

---

१. चिन्तया रहितो रुद्रो वाचो यन्मनसा सह ।
अप्राप्य तन्निवर्तन्ते वाचस्त्वेकाक्षरेण सः ।

\- - - - -

एकाक्षराहुकारारव्या भगवान् बीजकोऽण्डजः ।
एकाक्षरादु काराख्याद्धरिः परम कारणम् ।।

\- - - - -

सर्ग कर्ता त्वकाराख्यो ह्युकारारव्यस्तु मोहकः ।

\- - - - -

उकारारव्यो हरिर्योनिः प्रधान पुरुषेश्वरः ।
बीजी च बीजं तद्योनिर्नादारव्यश्च महेश्वरः ।। शि. म. पु., पृ. २३६

२. नमो रुद्राय शांताय ब्रह्मणे परमात्मने ।

\- - - - -

त्वं हि विश्वसृजां स्रष्टा धातात्वं प्रपितामहः ।। वही, पृ. १०२

३. यामाहुस्तामसीं रौद्रीं मूर्तिमंतकरीं हरेः ।
सृजत्यशेषमीशस्य शासनाच्चतुराननः ।। वही, पृ. १०२४

रुद्र का सृष्टि विनाशकत्व

यद्यपि शिव पुराण बार-बार यह वर्णन करता है कि शिव और रुद्र में वस्तुतः कोई भेद नहीं है और जो भेद दिखाई देता है, वह केवल स्वर्ण और स्वर्णाभूषणों के सदृश ही जानना चाहिए। इस रूप में शिव की शक्ति ही सर्वोपरि शक्ति है तथा रुद्र की शक्ति का प्रथक् से भी संकेत किया गया है। रुद्र के सम्बन्ध में यह कथन है कि वे सर्व प्रभुत्व वाले देव हैं स्वरूपवान हैं और सर्व सुखद हैं। आदि देव रुद्र सभी अधिष्ठानों के कर्त्ता हैं किन्तु साथ ही साथ यही देवता सभी के हर्ता भी हैं। ये निर्विकारी, त्रिदेवेश और सनातन हैं।[1]

एक अन्य स्थान पर यह वर्णन किया गया है कि भगवान महेश ही रुद्र के स्वरुप में उत्पन्न हैं और वे ही ऐसे हैं कि शिव के पूर्ण अवतार हैं, तथा त्रिजगत के लयकारक हैं। वे ही रुद्र रूप में अवतरित होकर जगत् का लय करते हैं। चारों वर्ण और आश्रमों वाले लोक का लय करने के हेतु वे ही रुद्र हैं।[2]

---

१. अधिष्ठानं च सर्वेषां कर्ता हर्ता च स प्रभुः ।
निर्विकारी त्रिदेवेशो ह्यविनाशी सनातनः ।। शि. म. पु., पृ. ३४३

२. रुद्ररूपेण प्रलयं करिष्ये कार्यमुत्तमम् ।
चतुर्वर्णमयं लोकं तत्सर्वैराश्रमैर्ध्रुवम् ।।
तदन्यैर्विविधैः कार्यैः कृत्वा सुख मवाप्स्यथः ।
ज्ञानविज्ञानसंयुक्तो लोकानां हितकारकः ।।
– – – – –
विष्णो सृष्टिकरं प्रीत्यापालयैनं पितामहम् ।
संपूज्यस्त्रिषुलोकेषु भविष्यसि मदाज्ञया ।।
तवसेव्यो विधेयश्चापि रुद्र एव भविष्यति ।
शिव पूर्णावतारोहि त्रिजगल्लय कारकः ।। वही, पृ. १०६

नन्दिकेश्वर

श्री शिव महापुराण में यह प्रसंग आया है कि सनतकुमार जी ने भगवान नन्दीश्वर से पूछा कि आप भगवान शिव के अंश से उत्पन्न होकर बाद में शिव को कैसे प्राप्त हुए। यह जानना इसलिए आवश्यक था, क्योंकि भगवान नन्दिकेश्वर दयालु, सर्वसाक्षी तथा गणेश्वर हैं।[1]

नन्दीश्वर भगवान ने इसका उत्तर देते हुए कहा कि प्राचीन समय में शिलाद नामक एक धर्मात्मा मुनि थे। पितरों के आदेश से उन्होंने अयोनिज, सुव्रत, मृत्युहीन, पुत्र की प्राति के लिए तपस्या करके देवेश्वर इन्द्र को प्रसन्न किया। किन्तु देवेश्वर इन्द्र की शक्तिऐसी नहीं थी कि वे इस प्रकार के पुत्र होने का वरदान दे सकते। अतः उन्होंने मुनि को प्रेरित किया कि वे सर्व समर्थ भगवान शिव की तपस्या करें। भगवान शिव ही ऐसे समर्थ हैं जो अपने अनन्त सामर्थ्य से इस प्रकार का पुत्र दे सकते हैं। इस पर धर्मात्मा शिलाद मुनि ने शिव की तपस्या की और शिव ने सन्तुष्ट होकर स्वयम् ही शिलाद के अयोनिज पुत्र के रूप में अवतरित होने का वचन दिया।[2]

---

१. शिवाज्ञया ततः प्राप्तो भगवान् नन्दिकेश्वरः ।
स मे दयालुर्भगवान् सर्वसाक्षी गणेश्वरः ।।
शि. म. पु., पृ. २६, शि. पु., पृ. ३७४

२. न दास्यामि सुतं तेऽहं मृत्युहीनमयोनिजम् ।
हरिर्विधिश्च भगवान् किमुतान्ये महामुने ।।
— — — — —
किन्तु देवेश्वरो रुद्रः प्रसीदति महेश्वरः ।
सुदुर्लभे मृत्युहीनस्तव पुत्रो ह्ययोनिजः ।।
— — — — —
पूर्वमाराधितो विप्र ब्रह्मणांह तपोधन् ।
तपसा चावतारार्थं मुनिभिश्च सुरोत्तमैः ।।
तव पुत्रो भविष्यामि नन्दी नाम्ना त्वयोनिजः ।
पिता भविष्यसि मम पितुर्वै जगतांमुने ।। वही, पु. ५७८,५७९,
शि. पु., पृ. ३७४

इस रूप में भगवान नन्दिकेश्वर शिव रूप ही हैं और वे अपने ही वरदान से महर्षि शिलाद के पुत्र के रूप में अवतरित हुए हैं। भगवती उमा ने अयोनिज होने पर भी नन्दीश्वर को अपना पुत्र स्वीकार किया और भगवान शिव ने कहा कि यह मेरा परम प्रिय पुत्र है इसलिए इसे आप गणाध्यक्ष के रूप में स्थापित करें। भगवान शंकर ने उमा की बात मान कर नन्दीश्वर को गणाध्यक्ष रूप में स्थापित किया और प्रसन्न होकर नन्दीश्वर से कहा कि मैं पार्वती सहित तुम पर परम प्रसन्न हूँ। तुम मेरे अटूट प्रेमी, परम स्नेही, महा योगी, महान, धनुर्धारी, अजेय, सभी पर विजय प्राप्त करने वाले सदा पूज्य होओगे। भगवान शंकर ने कहा कि जहाँ मेरी स्थिति रहेगी, वहीं पर तुम स्थित रहोगे। और इसी प्रकार से जहाँ पर तुम्हारी स्थिति होगी, वहाँ पर मैं भी विद्यमान रहूँगा। इस रूप में बाद में भगवान नन्दीश्वर की अकाल मृत्यु का योग भी टल गया था। और वे भगवान शिव के परिवार के एक अंग हो गए थे।[1]

---

१. वत्स नन्दिन्महा प्राज्ञ मृत्योर्भीतिः कुतस्तव ।
मयैव प्रेषितौ विप्रौ मत्समस्त्वं न संशयः ।।
अमरो जरया व्यक्तोऽदुःखी गणपतिः सदा ।
अव्ययश्चाक्षयश्चेष्टः स पिता स सुहृज्जनः ।
\- - - - -

दातुमर्हसि देवेश नन्दिने परमेश्वर ।
महाप्रिय तमो नाथ शैलादिस्त नयो मम ।।
\- - - - -

नन्दीश्वरोऽयं पुत्रो मम सर्वेषामीश्वरेश्वरः ।
प्रिया गणाग्रीः सर्वैः क्रियतां वचनं मम ।।
सर्वे प्रीत्याभिषिञ्चध्वं मद् गणानां गतिम्पतिम् ।
अद्य प्रभृति युष्माकमयं नन्दीश्वरः प्रभुः ।। शि. म. पु., पृ. ५८१-५८२
शि. पु.,पृ. ३७७-३७८, क्र. भ., पृ. ३४४

शिव का अघोर रूप

भगवान शिव की लीलाएँ विचित्र हैं। इसी तरह से उनका स्वरूप भी बड़ा विचित्र और अद्‌भुत है। वे पंचवक्त्र हैं, जटाधारी हैं। चर्म देह में लपेटे रहते हैं, सिर में गंगा है और भुजाओं में सर्प हैं। वे कैलास में रहकर पंच वक्त्र वाले होकर अपनी लीला करते हैं और ब्रह्माण्ड के नाश होने पर भी उनका नाश नहीं होता है।[1]

भगवान के अघोर रूप का वर्णन विस्तार से शिव पुराण में उस प्रसंग में किया गया है जहाँ वे अपनी बरात लेकर हिमवान् के द्वार पर पहुंचते हैं। उनकी बरात बहुत अद्‌भुत और विस्मय कारक रूपवाली है। उसमें कोई वायु रूप धारी है, कोई वक्रतुण्ड वाला है, कोई बड़ी-बड़ी मूछों वाला है, कोई बिना हाथ वाला तो कोई अनेकों हाथ वाला है। भगवान शिव की बरात में कोई बिना नेत्र वाला है, तो किसी के बहुत नेत्र हैं। कोई बिना कान वाला है तो किसी के अनेक कान हैं। किसी ने अपना स्वरूप यदि सुन्दर बना लिया है तो किसी का रूप अत्यधिक भयदायक है। इस रूप में भगवान शिव की बारात में असंख्य गण भीमाकार रूप में हैं और अद्‌भुत-अद्‌भुत प्रकार के स्वरूप धारण किए हुए हैं।[2]

---

१. कैलासे भवनं रम्यं पञ्चवक्त्रश्चकार ह ।
ब्रह्माण्डस्य तथा नाशे तस्य नाशोऽस्ति वैनहि ।। शि. म. पु., पृ. १२७

२. वात्यारूप धराः केचित्पताकामर्मस्वनाः ।
वक्रतुण्डास्तत्र केचिद्विरूपाश्चापरे तथा ।।

\- - - - -

अमुखाः विमुखाः केचित् केचित् बहुमुखाः गणाः ।
अकराविकरा केचित् केचित् गोमुख वादिनः ।।

\- - - - -

अनेत्रा बहुनेत्राश्च विशिराः कुशिरास्तथा ।
अकर्णा बहुकर्णाश्च नानावेषधरा गणाः ।।

\- - - -

असंख्यास्तथा तात महावीरा भयंकरा । शि.म. पु., पृ. ३४०,
शि. पु., पृ. २६२

पुराणकार वर्णन करते हैं कि यह तो शिव के परिकरों का विचित्र रूप था । बाद में आती हुई बारात में जब मेना ने भगवान शिव के विकट रूप को देखा तो वे न केवल भयभीत हुईं अपितु आश्चर्य से मति भ्रमित भी हो गईं। उस समूह के बीच भगवान शंकर बृषभ में बैठे हुए प्रकट हुए। वे पाँच मुख वाले थे, तीन नेत्र वाले थे, शरीर में विभूति का लेप किए थे। उनके मस्तक में चन्द्रमा था। वे कपाली थे और दश हाथ वाले थे। हाथ में पिनाक धारण किए हुए और शरीर में व्याघ्र का चर्म पहने हुए थे। शूल धारण किए थे, तीसरा नेत्र विरूपाक्ष था। आकार विकृत था। 'गज' का चर्म ओढे हुए थे।[1]

मैना ने शिव के इस अद्भुत रूप को देखकर उनके अवगुणों का भी कथन किया और कहा कि न इनकी माता है, और न इनके पिता हैं। न इनके बन्धु हैं और न कोई अन्य स्वजन ही हैं। न इनमें स्वरूप है,और न ही किसी प्रकार के अलंकार ही हैं। वे शिव की विचित्र अवस्था का वर्णन करती हुई कहती हैं कि न इनके पास कोई शुभ दर्शन वाला वाहन है, न ही इनकी अवस्था रम्य है और न ही इनके पास सम्पत्ति है। इनमें किसी प्रकार की पवित्रता नहीं दिखाई देती।

---

१. वृषभस्थं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रं भूति भूषितम् ।
कपर्दिनं चन्द्रमौलिं दशहस्तं कपालिनम् ।।
व्याघ्र चर्मोत्तरीयञ्च पिनाकवर पाणिनम् ।
शूलयुक्तं विरुपाक्षं विकृताकारमाकुलम् ।।
गजचर्मवसानं हि वीक्ष्य त्रेसे शिवाप्रसूः ।। शि. म. पु., पृ. ३४०

इनमें कोई विधा का वैशिष्ट्य नहीं है। इस रूप में तो ये सभी गुणों से हीन और अघोर स्वरूप वाले ही हैं।[1]

भगवान शंकर के इस अद्‌भुत स्वरूप का कथन एक अन्य स्थान पर और किया गया है। भगवान और गजासुर का युद्ध विकट रूप में होता है किन्तु बाद में गजासुर शिव की प्रार्थना कर उन्हें प्रसन्न कर लेता है। तब भगवान शिव उससे कहते हैं कि मैं तुम से प्रसन्न हूँ। और अब जो वरदान तुम मांगना चाहो, वह माँग लो। तब गजासुर कहता है कि प्रभु! आपके त्रिशूल से पवित्र हुई मेरे शरीर की यह चर्म आप सदा धारण करें। यह मेरी कृति सुन्दर, पवित्र और उज्जवल हो जाए। इसके साथ ही वह कहता है कि मेरी यह कृत्ति धारण कर आपका नाम कृत्तिवास हो जाए। शिव उसे इसका वरदान दे कृत्ति धारण कर कृत्तिवास के नाम से विख्यात हो जाते हैं।[2]

---

१. न माता न पिता भ्रातान बन्धुगोत्रिजोऽपि हि ।
न सुरूपं न चातुर्यं न गृहं वास्य किंचन ।।
न वस्त्रं नाप्यलंकरा: सहाया: केऽपि तस्य न ।
वाहनं न शुभं हयस्य न वयो न धनं तथा ।।
न पावित्र्यं न विद्या च कीदृश: काय अर्तिद: ।
शि. म. पु., पृ. ३४४

२. यदि प्रसन्नो दिगवासस्तदा नित्यं वसान मे ।
इमां कृत्तिं महेशान त्वात्मशूलाग्नि पाविताम् ।।
\- - - - -
अन्यं च मे वरं देहि यदि तुष्टोऽसि शंकर ।
नामास्तु कृत्तिवासास्ते प्रारभ्याद्यतनं दिनम् ।।
\- - - - -
कृत्तिवासेश्वरं नाम महापातकनाशनम् ।
सर्वेषामेव लिंगानां शिरोभूतं विमुक्तिदम् ।। वही, पृ. ५६४

शिव का पशुप रूप

भगवान शिव का महत्त्व शिव पुराण में अप्रतिम रूप से कहा गया है। इस रूप में वे सभी देवों के देव हैं और इसी लिए वे महादेव भी हैं। भगवान शिव के प्रभाव की अतिशयता का अनुभव करके ही सभी देवता उनकी स्तुति करते हैं और उन्हें रुद्र के रूप में, शान्त स्वरूप के रूप में प्रतिपादित करते हैं। वे प्रार्थना करते हुए उन्हें विश्व के स्रष्टा, त्रिगुणात्मक तथा गुणों से परे भी बताते हैं। इसी क्रम में यजमान के रक्षक के रूप में तथा पशुओं के पति के रूप में वर्णित करते हैं।[1]

पशु कौन है, उनके बांधने का पाश क्या है और पशुप कौन है- इसका विस्तृत स्वरूप श्री कृष्ण और उपमन्यु के संवाद में निरूपित किया गया है। श्री कृष्ण द्वारा यह प्रश्न किए जाने पर कि पशुपति देवता कौन है, पशु कौन है, और किन पाशों से पशुओं का बन्धन होता है तथा कैसे वे मुक्त होते हैं[2] इसके उत्तर में महर्षि उपमन्यु ने जो कहा था, उसका अभिप्राय यह है कि ब्रह्मा आदि से लेकर सृष्टि में जो भी है, वे सभी पशु कहे गए हैं। उन सभी के पति होने के कारण भगवान शिव को पशुप कहा गया है। इसी तरह मल आदि के पाशों से ही यह संसार बन्धन में बंधा रहता है। संसार के जीवों के लिए जो विषय-भोगादि हैं, वे भी उनके लिए दृढ़ बन्धन हैं।[2] प्रकृति आदि जो चौबीस तत्त्व हैं, वे जीव को अपने दृढ़ बन्धन से बाँधते हैं। इन्हीं गुण रूपी पाशों से ही पशु पति जीव को बांधने का कार्य करते

---

१. पशूनां पतये तुभ्यं यजमानाय वेधसे।

शि. म. पु. पृ. २३६

२. ब्रह्माद्याः स्थावरांताश्च देव देवस्य शूलिनः।
पशवः परिकीर्त्यंते संसारवशवर्तिनः।।
तेषां पतित्वाद्देवेशः शिवः पशुपतिः स्मृतः।
मलयादादिभिः पाशैः स बध्नाति पशून्पतिः।।

- - - - -

विषया इति कथ्यन्ते पाशा जीव निबन्धनाः।

वही, पृ. १०२३

हैं। और बाद में वे ही कृपा पूर्वक छोड़ते हैं।

पशु, बन्धन और पशुपति की स्वरूपावस्थिति का एक निरूपण एक अन्य स्थान पर भगवान वायु के द्वारा भी किया गया है। जहाँ पर यह कहा गया है कि दुःख अज्ञान से ही उत्पन्न होता है और ज्ञान से उसकी निवृत्ति होती है। ज्ञान से जो वस्तु का स्पष्ट स्वरूप आता है, उसके अनुसार चैतन्य, जड़ और इन दोंनो का नियन्त्रक तीन प्रथक्-प्रथक् वस्तु रूप दिखाई देते हैं। इनमें से जो चेतन रूप है, वह पशु है। जो जड़-स्वरूप है, वह पाश है और इन दोनों का नियन्त्रक पशुपति है। दूसरे रूप में यही अक्षर, क्षर तथा क्षराक्षर से पर स्वरूप भी कहा गया है। इसमें अक्षर पशु है, क्षर पाश है और क्षरात्क्षर से पर पशुपति है। प्रकृति को क्षर कहा गया है और पुरुष को अक्षर के नाम से अभिहित किया गया है। इन दोनों के प्रेरक के रूप में शिव को पशुपति के नाम से अभिहित किया गया है। माया प्रकृति है, पुरुष माया से आवृत है। मूलकर्मों से इनका सम्बन्ध है और शिव ही इसके प्रेरक हैं। इन्हीं पाशों से बंधे पशु के पाश- नाशक शिव हैं।

---

१. अज्ञान प्रभवं दुखं ज्ञाने नैव निवर्तने।
ज्ञानं वस्तु परिच्छेदो वस्तु च द्विविधं स्मृतम्।।
अजडं वस्तु च जडं चैव नियंतृ च तयोरपि।
पशुः पाशः पतिश्चेति कथ्यते तत्त्रयं क्रमात्।।

शि. म. पु., पृ. ९५१

_ _ _ _ _

अक्षरं च क्षरं चैव क्षराक्षर-परं तथा।
तदेतत् त्रितयं भूम्ना कथ्यते तत्त्ववेदिभिः।।
अक्षरं पशुरित्युक्तः क्षरं पाश उदाहृतः।
क्षराक्षरपरं यततत्पतिरित्यभिधीयते।।

_ _ _ _ _

प्रकृतिः क्षरमित्युक्त पुरुषोऽक्षर उच्यते।
ताविमौप्रेरयत्यन्यः स परः परमेश्वरः।।
स एस बध्यते पाशैः सुख-दुःखाशनः पशुः।

वही, पृ. ९५३-९५४

महेश की पंच तथा अष्टमूर्तियाँ

शिव पुराण में श्री कृष्ण को उपदेश करते हुए महर्षि उपमन्यु ने कहा कि ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेश तथा सदा शिव भगवान महेश की ही मूर्तियाँ हैं। इन्हीं मूर्तियों से यह सम्पूर्ण विश्व अधिष्ठितं है। इन मूर्तियोंके अतिरिक्त ईशान , पुरुष, अघोष, वाम और सघोजात पंच मूर्तियाँ भी भगवान शिव की कही गई हैं। इन पंचमूर्तियों में ईशान नाम की इनकी जो मूर्ति है वह आदि और श्रेष्ठतम मूर्ति है। वह प्रकृति के साक्षात् भोक्ता क्षेत्रज्ञ को व्याप्त कर स्थित है। मूर्तिमान् प्रभु शिव की जो तत्पुरुष नामक मूर्ति है वह गुणों के आश्रय रूप भोग्य अव्यक्त में अधिष्ठित है। भगवान शंकर की जो अत्यन्त पूजित अघोर नामक मूर्ति है, वह धर्म आदि आठ अंगों से युक्त बुद्धितत्त्व को अपना अधिष्ठान बनाती है। महादेव की वामदेव नामक मूर्ति को आगम वेत्ता विद्वान अहंकार की अधिष्ठात्री मूर्ति कहते हैं। महादेव की सघोजात मूर्ति मन की अधिष्ठात्री मूर्ति है।[1]

---

१. श्रणु कृष्ण महेशस्य शिवस्य परमात्मनः।
मूर्त्यात्मभिस्ततं कृत्स्नं जगदेतच्चराचरम्।।
स शिव सर्वमेवेदं स्वकीयाभिश्च मूर्तिभिः।
अधितिष्ठत्य मात्मा हयेतत्सर्वमनुस्मृतम्।।
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो महेशानः सदाशिवः।
मूर्तयस्तस्य विज्ञेया याभिर्विश्वमिदं ततम्।।

\- - - -

ईशानः पुरुषोऽधोरो वामः सद्यस्तथैवच।
ब्रह्माण्येतानि देवस्य मूर्तयः पञ्च विश्रुताः।
ईशानाख्यातु या तस्य मूर्तिराद्या गरीयसी।
भोक्तारं प्रकृतेः साक्षात् क्षेत्रसमधिष्ठति।।

\- - - -

वामदेवाह्वयां मूर्तिं महादेवस्य वेधसः।
अहंकृतेरधिष्ठात्रामाहुरागमवेदिनः।।

शि. म. पु., पृ. १०२५, सं. शि. पु. पृ. ६१६

ये पाँचो मूर्तियाँ इस सृष्टि जाल की स्वामिनी हैं। शिव की ईशान मूर्ति श्रवणेन्द्रिय, वाणी, शब्द और आकाश तत्त्व की स्वामिनी हैं। तत्पुरुष नामक मूर्ति त्वचा, हाथ, स्पर्श और वायु तत्त्व की स्वामिनी है। शिव की अघोर मूर्ति नेत्र, पद तथा अग्नि तत्त्व की अधिष्ठात्री मूर्ति है। वामदेव नामक शिव की मूर्ति रसना, वायु, रस और जल तत्त्व की स्वामिनी है। भगवान शिव की सद्योजात मूर्ति घ्राणेन्द्रिय, उपस्थ, गन्ध और पृथिवी तत्त्व की अधिष्ठात्री मूर्ति है।[१]

इस रूप में शिव की पंच मूर्तियाँ अधिष्ठता, व्यापक और सार्वकालिक हैं। रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्शादि की जो भी स्थिति और अवधारणा है, वह सभी भगवान् शिव में ही समाहित और उन्हीं के द्वारा ही क्रियात्मक रूप में विद्यमान है। भगवान् की इस शक्तिमत्ता के कारण ही यह कहा गया है कि इनकी इन पंच मूर्तियों की वन्दना प्रयत्न पूर्वक करनी चाहिए।[२]

---

१. श्रोत्रस्य वाचः शब्दस्य विभोर्व्योमनस्तथैव च।
ईश्वरीमीश्वरस्येमामीशाख्यां हि विदुर्बुधाः।।
त्वक्पाणि स्पर्शवायूनापीश्वरीं मूर्तिमैश्वरीम्।
पुरुषाख्यं विदुः सर्वे पुराणार्थविशारदः।
चक्षुषश्चरणस्यापि रूपस्याग्नेस्तथैव च।
अघोराख्यामधिष्ठात्रीमूर्तिमाहुर्मनीषिणः।।
रसनाश्च पायोश्च रसस्यापां तथैव च।
ईश्वरीं वामदेवाख्यां मूर्तिः तन्निरतां विदुः।।
घ्राणस्य चैवोस्थस्य गंधस्य च भुवस्तथा।
सद्यो जाताह्वया मूर्तिमीश्वरीं संप्रचक्षते।।

म. शि. पु. पृ. १०२५

२. वही, पृ. १०२५

शिव पुराण में भगवान् शिव की अष्ट मूर्तियों का भी वर्णन किया गया है और यह कहा गया है कि वही शिव मणियों में सूत्र की तरह से इस संसार में व्याप्त है। वह लोक में सभी कार्यों का कर्ता है और सुखदायक है।[1]

शिव की इन अष्ट मूर्तियों में शर्व, भव, रुद्र, उग्र, भीम, पशुपति, ईशान, महादेव की गणना की गई है। इन आठों मूर्तियों के लिए यह कहा गया है कि भूमि, अग्नि, जल, मरुत्, व्योम, क्षेत्र, सूर्य और निशाकार को अधिष्ठित कर शिव की आठों मूर्तियाँ प्रतिष्ठित हैं।[2]

सम्पूर्ण चर और अचर स्वरूप विश्व का भरण भगवान विश्वम्भर के द्वारा ही होता है। क्योंकि भगवान शिव सलिल रूप से संसार में व्याप्त हैं, इसलिए उनकी एक संज्ञा भव है। इस संसार के बाहर तथा अन्दर विश्व का भरण-पोषण और स्पन्दन उग्र रूप से होता है, इसलिए शिव की एक संज्ञा उग्र है।[3]

---

१. सर्व कार्य कराल्लोके सर्वस्य सुखदान्मुने ।
तस्य शंभो परेशस्य मूर्त्यष्टकमयं जगत् ।
तस्मिन् व्याप्य स्थितं सूत्रे मणिगणाइव ।।
शि. म. पु., पृ. ५०१

२. शर्वो भवस्तथा रुद्र उग्रो भीमः पशोः पतिः ।
ईशानश्च महादेवो मूर्तयश्चाष्ट विश्रुताः ।।
भूम्यंभोऽग्निमरूद्व्योमक्षेत्रज्ञार्क निशाकराः ।
अधिष्ठिताश्च शर्वाद्यैष्ट रूपैः शिवस्य हि ।।
वही, पृ. ५०१

३. संजीवनं समस्तस्य जगतः सलिलात्मकम् ।
भव इत्युच्यते रूपं भवस्य परमात्मनः ।
बहिरन्तर्जगत् विश्वं विभर्ति स्पन्दते स्वयम् ।
उग्र इत्युच्यते सद्भिः रूपमुग्रस्य सत्प्रभो ।।
वही, पृ. ५०२

भगवान शंकर का जो सबको अवकाश देने वाला सर्व व्यापी आकाशत्मक रूप है, उसे भीम कहते हैं। वह भूत वृन्द का भेदक है। जो स्वरूप भगवान् शिव का समस्त आत्माओं का अधिष्ठान, सम्पूर्ण क्षेत्रों में निवास करने वाला और जीवों के भव-पाश का छेदक है उसे पशुपति का रूप कहा गया है। महेश्वर भगवान का सम्पूर्ण जगत् को प्रकाशित करने वाला जो सूर्य नामक रूप है, उसे ईशान कहा गया है। वह द्युलोक में भ्रमण करता है। अमृतमयी रश्मियों वाला जो चन्द्रमा सम्पूर्ण विश्व को आह्लादित करता है, शिव का वह रूप महादेव के नाम से पुकारा जाता है। आत्मा भगवान शिव का आठवां रूप है। यह मूर्ति अन्य मूर्तियों की स्थापिका है इसलिए सम्पूर्ण विश्व शिवमय है। जैसे वृक्ष के मूल को सींचने से उसकी शाखाएँ पुष्पित हो जाती हैं, उसी प्रकार शिव का पूजन करने से शिव स्वरूप परिपुष्ट होता है।[१] यही मृत्युञ्जय है। यही अष्टधा होकर विश्व का भरण-पोषण करता है। इसी के प्रताप से वायु प्रवाहित होती है, सूर्य तपता है और चन्द्रमा प्रकाश करता है।[२]

---

१. सर्वात्मनामधिष्ठानं सर्वक्षेत्रनिवासकम्।
रूपं पशुपतेर्ज्ञेयं पशुपाशनिवृत्तनम्।।
संदीपयज्जत्सर्वं दिवाकरसमाह्वयम्।
ईशानाख्यं महेशस्य रूपं दिवि विसर्पीति।।
आप्याययति यो विश्वममृतांशुर्निशाकरः।
महादेवस्य तद् रूपं महादेवस्य चाह्वयम्।।
आत्मा तस्याष्टमं रूपं शिवस्य परमात्मनः।
व्यापिकेतरमूर्तीनां विश्वं तस्मा च्छिवात्मकम्।।
शि. म. पु., पृ. ५७२, सं. शि. पु., पृ.३८६

२. शि. म. पु., पृ.२३७

लिंग रूप शिव

भगवान शिव के लिङ्ग रूप का न केवल कथन किया गया है, अपितु उनके इस रूप का महत्त्व भी अतिशय रूप में वर्णित किया गया है। शिव के लिङ्ग रूप के लिए यह कहा गया है कि शिव का लिङ्ग साक्षात् उनका आत्म रूप ही है। वही लिङ्ग रूप शक्ति स्वरूप है और वही नाद रूप तथा देवी रूप भी है। शिव का लिङ्ग रूप विन्दु रूप है और वह शक्ति का साक्षात् आधान स्थल है। इसी रूप की प्रधान और उपप्रधान के रूप में पूजा करनी चाहिए।[1]

ऋषियों को अनेक प्रकार के शिव लिंगों का स्वरूप बताते हुए सूत जी ने कहा है कि प्रणव ही समस्त अभीष्ट वस्तुओं को देने वाला लिङ्ग है। सूक्ष्म स्वरूप यह लिंग निष्कल होता है और स्थूल लिंग सकल होता है। पंचाक्षर मंत्र को स्थूल लिंग कहते हैं। पौरुष लिंग और प्रकृति लिंग के रूप इतने अधिक हैं कि उनका कथन शिव के अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता। सात लिंगों में स्वयम्भू लिंग प्रथम है, विंदु लिंग दूसरा है, प्रतिष्ठित लिंग तीसरा है, चरलिंग चौथा और गुरुलिंग पाँचवा है।[2]

---

१. शिव लिंग शिवं मत्वा स्वात्मानं शक्तिरूपकम्।
शक्तिलिंग च देवीं च मत्वा स्वं शिवरूपकम्।।
शिवलिंग नादरूपं विन्दुरूपं च शक्तिकम्।
उपप्रधानभावेन अन्योन्यासक्तलिंगकम्।।

शि. म. पु., पृ. ५८

२. तदेव लिंग प्रथमं प्रणवं सार्वकामिकम्।
सूक्ष्म प्रणवरूपं हि सूक्ष्मरूपं तु निष्कलम्।।
स्थूललिंगं हि सकलं तत्पंचाक्षरमुच्यते।।
– – – –
प्रतिष्ठितं चरं चैव गुरुलिंग तु पंचमम्।। वही, पृ. ६०

एक अन्य स्थान पर यह कहा गया है कि श्री शिव के माहात्म्य की कथा जानने के लिए विशेषकर शिव लिंग के स्वरूप के महत्त्व को जानने के लिए ऋषियों ने श्री सूत जी से इच्छा व्यक्त की तो श्री सूत जी ने कहा कि शिव के लिंग स्वरूप तथा उनके लिंग के महत्त्व का कथन करना सहज सम्भव नहीं है। यह ऐसा विषय है जिसका कथन स्वयम् ईश्वर ही कर सकता है। लिंग से युक्त जितने तीर्थ हैं और जितने लिंग हैं वे सर्वत्र पृथ्वी में व्याप्त हैं। सभी लिंग स्वरूप हैं और सभी कुछ लिंग में ही प्रतिष्ठित हैं। लिंग स्वरूप भगवान् की संख्या का कथन करना सम्भव नहीं है। संक्षेप में केवल इतना ही कहना सम्भव है कि यह सम्पूर्ण भूमि लिंग स्वरूप है, और यह जगत् लिंग रूप है।[1]

इस रूप में भगवान शिव का अप्रतिम महत्त्व का कथन शिव पुराण का अभीष्ट है तथा शिव के सृष्टि कर्तृत्व, संरक्षकत्व एवं उनके संहारक रूप का वर्णन प्रस्तुत है। वे यदि शुभ रूप वाले हैं, तो वे अघोर रूप वाले भी हैं और लिंग रूप में तो वे सम्पूर्ण चराचरमय ही हैं।

---

१. सर्वेषां शिवलिंगानां मुने संख्या न विद्यते।
सर्वा लिंगमयी भूमिः सर्वंलिंगमयं जगत्।।

यत् किंचित् दृश्यते दृश्यं वर्ण्यते स्मर्यते च यत्।
तत्सर्वं शिवरूपं हि नान्यदस्तीति किंचन।।

शि. म. पु., पृ.६७१

तृतीय अध्याय

(लिंग पुराण का परिचय एवं उसमें लिंग का स्वरूप)

तृतीय अध्याय

(लिंग पुराण का परिचय एवं उसमें लिंग का स्वरूप)

पुराण विषय, लिंग पुराण, पुराणों का निहितार्थ, पुराण-रचना का उद्देश्य, रचना काल, लिंग का उद्भव, लिंग का माहात्म्य, पालक तथा संहारक के रूप में लिंग,लिंग का विश्वरूप, लिंग और रुद्र, लिंग और पशुपति, लिंग का अधोर रूप, शिवतथा उनकी पंचमूर्तियां, शिव की अष्टमूर्तियां, महेश महिमा, शिव तत्त्व दर्शन, शिव- शिवा में अभेदरूपता, शिव और लिंग का भेदाभेद, त्र्यंबक की अवधारणा, लिंग का दार्शनिक स्वरूप ।

तृतीय अध्याय

(लिंग पुराण का परिचय एवं उसमें लिंग का स्वरूप)

पुराण-विषय

पुराणों में यद्यपि अनन्त आख्यान हैं और इनमें अनन्त विषयों का समावेश किया गया है तथापि सबका समेकित स्वरूप पांच भागों में विभक्त किया जाता है। इन पांच प्रकार के विषयों में सर्ग (ब्रह्मा द्वारा की गई सृष्टि रचना) प्रति सर्ग (ब्रह्मा के मानस पुत्रों द्वारा रचित सृष्टि अथवा प्रलय) वंश (सूर्य वंश, चन्द्र वंश के साथ-साथ अन्य राजाओं के वंश का वर्णन) मन्वन्तर(स्वायम्भुव आदि मन्वन्तरों का कार्य काल) वंशानुचरित (पूर्वोल्लिखित वंशों में उत्पन्न राजाओं का जीवन चरित) कहा जाता है। इसके अतिरिक्त पुराणों में अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष का विस्तृत विवेचन भी किया गया है-

सर्गश्च प्रति सर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पंच लक्षणम् ।।
- - - - -
ब्रह्म विष्ण्वर्क रुद्राद्यां माहात्मयं भुवनस्य च।
- - - - -
धर्मार्थश्च कामश्च मोक्षश्चैवान्न कीर्त्यते।
सर्वेष्वपि पुराणेषु तद् विरुद्धं चयत् फलम् ।[1]

इन पंच लक्षणों वाले विषय प्रायः सभी पुराणों में प्राप्त होते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि प्रायः सभी पुराणों में सृष्टि का वर्णन मिलता है, सभी पुराणों में राजाओं का वंशों का वर्णन होने के साथ- साथ सूर्यवंश तथा चन्द्रवंश के राजाओं का वर्णन है। विष्णु पुराण, मार्कण्डेय पुराण, देवी भागवत् तथा अग्नि पुराण आदि में यह सभी प्राप्त होता है। और जिनमें पंच लक्षणात्मक विषयों का कथन किया गया है, वे सभी प्राप्त होते हैं।[2]

१- म. पु.(१), पृ. २१८
२- वि.पु. (१), पृ.३९१, दे.भा.१।२१।६, मा.पु. १३७।१३

पुराणों के लिए जिन पंच लक्षणात्मक स्वरूप की चर्चा की गई है, उनका पालन यद्यपि किया गया है, तथापि कुछ पुराण ऐसे हैं जिनमें इन पंच लक्षणात्मक विषयों के वर्णन का परिपालन नहीं किया गया है। एक पुराण-समीक्षक आचार्य यह लिखते हैं कि वायु, मत्स्य, ब्रह्माण्ड तथा विष्णु आदि प्राचीन पुराणों में पञ्च लक्षणात्मक विषय प्राप्त होते हैं। किन्तु बाद के समय में जैसे-जैसे पुराणों की रचना होती गई वैसे- वैसे पंच लक्षणात्मक विषयों के वर्णन का क्रम घटता गया।[1] एक विद्वान् आचार्य तो यह कहते हैं कि कोई भी पुराण ऐसा नहीं है जो पुरी तरह से पंचलक्षणात्मक होवें। अर्थात् किसी भी पुराण में पांच प्रकार के विषयों का सर्वाङ्ग विवेचन नहीं किया गया है। कुछ पुराण ऐसे हैं जिनमें इन पांच विषयों के अतिरिक्त अन्य कई विषयों का समावेश है और कुछ पुराण ऐसे हैं जिनमें इन पांच विषयों की चर्चा तक नहीं की गई है। इन आचार्य का यह कथन है कि पंच विषयात्मक जिन पंच लक्षणों की चर्चा की गई है वे केवल उप पुराणों के लिए हैं। महापुराणों के लिए तो दस लक्षणात्मक विषयों का कथन होना चाहिए।[2]

एक अन्य विद्वान का यह कथन है कि जिन पंच लक्षणात्मक विषयों का संकेत किया गया है, उसका परिपालन पुराणों के चार लाख श्लोकों में से केवल दस हजार श्लोकों में ही किया गया है। शेष श्लोकों में अन्य अनेक विषयों का समावेश है।[3]

श्री मद् भागवत महापुराण में यह संकेत किया गया है कि पुराण - विषयों के पांच नहीं, दस लक्षण होने चाहिए। वहाँ पर सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, अन्तर वंश, वंशानुचरित, संस्था, हेतु तथा अपाश्रय के रूप में दस लक्षण कहे गए हैं।[4]

१- पु.स., पृ. २०

२- कल्याण पृ. ५५२

३- द. पृ. पं. ल., पृ. ९, ४९

४- वही, पृ. १०७, ७४३ ।

लिंग पुराण

मत्स्य पुराण में लिंग पुराण का लक्षण देते हुए यह कहा गया है कि जिसमें कल्पान्त के समय अग्नि का आश्रय लेकर देवाधि देव महेश्वर ने अग्नि लिंग के मध्य में स्थित रहते हुए धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का उपदेश किया है उस पुराण को लिंग पुराण के नाम से अभिहित किया गया है। इसमें ग्यारह हजार श्लोक हैं।[१]

लिंग पुराण के दो भाग हैं। एक पूर्व भाग और दूसरा उत्तर भाग। इसमें प्रमुख रूप से योगाख्यान, कल्पाख्यान, लिंगोत्पत्ति, लिंग की उपासना, सनत्कुमार-पर्वत संवाद, दधीचि चरित, युग धर्म, शैव अवतारों और व्रतों का वर्णन तथा तीर्थों का वर्णन किया गया है।

लिंग पुराण में शिव लिंग की पूजा का वर्णन विधिपूर्वक किया है। इसमें भगवान शिव के द्वारा सृष्टि के उत्पत्ति के क्रम को कहा गया है। इस पुराण में भगवान शंकर से सम्बन्धित अठाईस अवतारों तथा उनके कथा वृत्तों का विशेष वर्णन है। इसमें शैव दर्शन के ही अनुकूल पशु, पाश, तथा पाशुपत शब्दों की सुन्दर विवेचनात्मक व्याख्या की गई है। इस पुराण में अग्नि कल्प की कथा का स्पष्ट उल्लेख तो नहीं है, किन्तु लिंग पुराण के प्रतिपाद्य, विषय के साथ-साथअग्निमय लिंग का विवरण दिया गया है। यद्यपि यह साम्प्रदायिक आक्षेप नहीं करता किन्तु इसमें कुछ वर्णन ऐसा अवश्य है जो साम्प्रदायिक विद्वेष को सूचित करता है।

१- यत्राग्नि लिंग मध्यस्थ: प्राह देवो महेश्वर: ।
धर्मार्थ काम मोक्षार्थ भाग्नेय माधिकृत्य च ।।
कल्पान्ते लैङ्ग मित्युक्तं पुराणं ब्रह्मणा स्वयम् ।
तदेकादश साहस्त्रं फाल्गुन्यां य: प्रयच्छति ।।
म. पु. , पृ. २१५

पुराण का निहितार्थ

पुराणों की परम्परा और इनकी रचना वृत्ति इनकी एक विशेष शैली और प्रकृत्ति को प्रकट करती है। इनकी रचनावृत्ति का ही यह प्रभाव है कि यहाँ का जन सामान्य आज पुराणों से जितना प्रभावित है, उतना किसी अन्य साहित्यिक विधा से प्रभावित नहीं है। पुराण शब्द के निर्माण में पुरा अव्यय के साथ णी प्राणे धातु से ड प्रत्यय और टिलोप सहायक है। इसमें पुरा अव्यय के साथ 'सायंचिरं प्राह्वेप्रगे' सूत्र से ट्यु प्रत्यय होने पर ट्कार की इत्संज्ञा लोप होने पर यु का अन् हो जाता है तब णत्व कार्य होकर पुराण शब्द बनता है।

एक दूसरे रूप में 'पूर्व काले सर्व जरत्पुराण' इस सूत्र से तुट् प्रत्यय का अभाव होने से यह शब्द बनता है। पुराण शब्द का प्रयोग क्योंकि नपुंसकलिंग में होता है, इसलिए यह शब्द शास्त्र के लिए अथवा शास्त्र के विशेषण के लिए प्रयुक्त होता है। इसका एक रूप यह भी है जिसमें, 'पुराणप्रोक्तेषु ब्राह्मण कल्पेषु' सूत्र के निर्देश से निपातनात यह शब्द सिद्ध होता है।[1]

पुराण शब्द जिस प्रकारसे बनता है और जिस रूप में इसका प्रयोग होता है, उससे यह प्रतीति होती है कि यह शब्द जहाँ अपने में पुराकालिक प्रवृत्तियों का समावेश किए हुए है, वहीं दूसरी ओर इसमें नवीन प्रवृत्तियों का भी समाहार दिखाई देता है। वायु पुराण ने 'पुराविद्यते इति पुराणम्' कहकर इसके इसी पुराकालिक प्रवृत्ति वाले भाव को व्यक्त किया है।[2]

१- पु. मी., पृ. १८

२- वा. पु. १।२०३ , म. पु., पृ. २१९

एक स्थान पर यह सन्दर्भ आया है कि पुरा का अर्थ परम्परा होता है। इससे यह संकेत ग्रहण होता है कि जिस साहित्य में परम्परा का निबन्धन हो, वह साहित्य पुराण साहित्य है।[1] एक अन्य पुराण यह संकेत करता है कि जिन ग्रन्थों में यह संकेत किया जाए कि प्रचीनकाल में ऐसा हुआ था, वे ग्रन्थ पुराण संज्ञक है।[2] आचार्य यास्क ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ निरुक्तमें यह संकेत किया है कि पुराण साहित्य में पुरा अर्थात् परम्परा को नवीन रूप प्रदान किया जाता है।एक अन्य आधुनिक विद्वान् यह अभिमत व्यक्त करते हैं, कि पुराण शब्द का अर्थ प्राचीन अथवा पुराकाल में होने वाला हो सकता है।[3] एक विद्वान ने यह लिखा है कि 'इति नः श्रुतम् ' 'इति श्रुतः? इति श्रूयते' पदों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि इनसे वर्णनीय विषय की प्राचीनमा के पौराणिक संकेत मिलते हैं।[4]

इन सभी सन्दर्भों और अभिमतों के आधार पर यह कहना सम्भव हो सकता है कि पुराण वे ग्रन्थ हैं, जिनमें परम्परा का निर्वाह होता है और साथ में जिनमें परम्परा को नवीन रूप देने का प्रयत्न भी किया जाता है। पुराणों की कथावस्तु प्राचीन होती है इसीलिए इन ग्रन्थों की कथावस्तु से प्राचीनता का अवबोध होना स्वाभाविक ही है। इस रूप में अन्त में यही कहना संगत हो सकता है कि ज़िससे पुरातन, पुराना का अबवोध हो तथा रूपात्मक एवं तथ्यात्मक पुरावृत्त संगृहीत हों, वे पुराण हैं।[5]

१- प. पु. ५ ।२ ।५३
२- ब्र. पु. १ ।१ ।१७६
३- वही ३ ।१९ ।१५२
४- हरि.पु. सां. आ. , पृ. ३२०
५- पु. स., पृ. ८

पुराण रचना का उद्देश्य

संस्कृत वाङ्मय में वेद वाङ्मय एक ऐसा वाङ्मय है जिसमें यह देखा जा सकता है कि भारत की साहित्यिक और सांस्कृतिक भावधारा का वहाँ पर क्या स्वरूप था। इस सन्दर्भ में यदि पुराण परम्परा को लेकर वैदिक वाङ्मय देखा जाए तो वहाँ किसी न किसी रूप में पुराणों का संकेत मिलता है। ऋग्वेद में एक स्थान पर पुराण तथा पुरानी शब्द का उल्लेख किया गया है[१]। अथर्ववेद में पुराण और पुराणवित् शब्द उल्लिखित हैं। एक और संदर्भ में यह कहा गया है कि अब मैं सनातन पुराणों का अध्ययन करता हूँ- 'सना पुराणमध्येरात्'। इसी तरह से एक दूसरे स्थान पर अश्विनी कुमारों को सम्बोधित करते हुए यह कहा गया है कि आप दोनों का स्थान पुराण है। आपकी मित्रता से कल्याण होता है।[२] अथर्ववेद में कहा गया है कि व्यास के रूप में उत्पन्न होकर सर्वाश्रय भगवान ने जिन पुराणों को लेख बद्ध किया उनको परमात्मा को अनुकूल करने वाला जानो।[३]

'अथनवमेऽहनि किंचित् पुराणमावक्षीत्'- कहकर यह संकेत किया गया है कि यज्ञ के नवें दिन कुछ पुराणों का पाठ किया जाना चाहिए । एक दूसरा सन्दर्भ भी ऐसा ही संकेत करता है जिसमें यह कहा गया है कि वाक्योवाक्य, इतिहास और पुराण का पाठ प्रतिदिन किया जाना चाहिए।[४]

१- ऋ. ३।६।४९; १०।१३०।६; ९।९९।४

२- वही ३।५८।६

३- यत्र स्कम्भः प्रजनयन् पुराणं व्यवर्तयत्।
एक तदङ्गं स्कम्भत्यपुराणमनु संविदुः।
अ.वे. ११।७।२५

४- श.ब्रा. ११।५।७।९

महाकाव्य महाभारत में एक स्थान पर यह लिखा है कि इतिहास और पुराण के द्वारा वेदों का विस्तार किया जाना चाहिए। इसका कारण यह है कि जो अल्पज्ञ वेद का निहितार्थ भली प्रकार नहीं कर पाते हैं तो इस स्थिति में वेदों के अर्थ का उपवृहंण ठीक से नहीं हो पाता है।[1] एक अन्य ग्रन्थकार व्याकरण दर्शन के प्रसिद्ध भाष्कार महर्षि पातञ्जलि का भी यही कहना है कि वाकोवाक्य, इतिहास, पुराण, वैद्यक आदि शब्द प्रयोग के विषय हैं।[2]

नीतिशास्त्रकार शुक्राचार्य ने यह लिखा है कि सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, वंशानुचरित और मन्वन्तर में पुराण के लक्षण हैं। क्योंकि मनुष्य जीवन में धर्म और उसका तत्त्व अतिगहन है, इसलिए धर्म का तत्त्व जानने के लिए कर्मों का प्रतिपादन करना चाहिए।[3] कर्म प्रतिपादन से सभी को कर्मों का ज्ञान हो जाता है और सभी जन अपने-अपने लिए निर्धारित कर्म करने में प्रवृत्त हो जाते हैं। आचार्य कौटिल्य भी अपने ग्रन्थ कौटिलीय अर्थशास्त्र में पुराण, रामायण, महाभारत, इतिहास तथा आरव्यायिका को इतिहास में ही समाहित करते हैं।[4]

सम्भवतः यही सब देखकर एक पाश्चात्य विद्वान् ने यह टिप्पणी की कि वेदों और पुराणों में आरव्यानों की समरूपता होते हुए भी इनमें अनुवर्ती विकास परम्परा निहित है।[5]

---

१. म.भा. पृ. ४५०

२. पा.म.भा. १।१।१

३. शु.नी. ४।२६४, ३।३८

४. कौ.अ. पृ. १९

५. हि.इ. लिए, पृ.५१८

रचनाकाल

पुराणों के रचनाकाल के सन्दर्भ में इदमित्थं रूप में कुछ भी कह पाना सम्भव नहीं है किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि पुराणों में जो कथानक विविध सन्दर्भों में प्राप्त हैं, उनके बीज वेद साहित्य में प्राप्त हैं। वेद किसी न किसी रूप में पुराणों का नाम लेतें हैं और उनके अवलोकन से यह ज्ञात होता है कि वेद पुराणों से परिचित थे। अथर्ववेद में एक स्थान पर प्राप्त होने वाला 'पुराणवित्' शब्द यह संकेत करता है कि यह वेद पुराणों से परिचित था।[१]

इसी तरह से जब हम परवर्ती संस्कृत साहित्य का अवलोकन करते हैं तब भी हमें यह देखने को मिलता है कि ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् परम्परा में भी पुराणों के कथानक अपने आदिरूप में हैं और पुराण कथाओं के बीज वहाँ पर भी विद्यमान हैं। यह बात आवश्यक कही जा सकती है कि तब पुराणों की प्राप्ति नहीं थी। शतपथ ब्राहमण में पुराण शब्द स्वतन्त्र रूप से इतिहास के साथ सम्मिलित है।[२] इसी तरह से गोपथ ब्राहमण में चारों वेदों के उद्भव के साथ-साथ ब्राहमण, उपनिषद्, इतिहास और पुराण का उल्लेख है।[३]

---

१. पु.स.,पृ. ३४-३५

२. श.ब्रा. १३।४।३।१२-१३, १४।६।१०।६

३. एवमिमे सर्वे वेदा निर्मिताः सकल्पाः सरहस्याः सब्राह्मणाः सोपनिषत्काः ऐतिहासिकाः सान्वाख्याताः सपुराणाः ।। वही पूर्वभाग २।१०

एक इतिहासविद् का यह कथन है कि ब्राह्मण ग्रन्थों के संदर्भ से यह पता चलता है कि उस समय में इतिहास और पुराण की दो भिन्न रचनाधारायें थीं और इन दोनों की वर्णन शैली तथा विषयवस्तु में पर्याप्त रूप में अन्तर था।[१] तैत्तरीय आरण्यक, बृहदारण्यकोपनिषद् में भी यह संकेत किया गया है जिसमें यह कहा गया है कि उसकाल में पुराणों का अस्तित्व था और वे भिन्न-भिन्न रूप में संकलित थे। पुराणों का संकलन तब उसी प्रकार से किया गया था जैसे अन्य विधाओं के ग्रन्थों का संकेत होता था।[२]

यदि पुराण साहित्य की प्राचीनता देखने के लिए हम धर्म सूत्र साहित्य को देखें तो वहाँ भी हम यह देख सकते हैं कि तब भी पुराण साहित्य किसी न किसी रूप में विद्यामान थे। आश्वलायनगृह्य सूत्र में एक स्थान पर यह कहा गया है कि जो भी कोई विधिपूर्वक पुराणों का अध्ययन करता है वह अमरत्व को पाने का अधिकारी बनता है।[३] इसी गृहयसूत्र में एक सन्दर्भ और इस प्रकार का है जिसमें यह कहा गया है कि अग्नि का प्रदीप्त होना तथा पुराण का पाठ होना मंगलवाचक है।[४] गौतमधर्मसूत्र में यह कहा गया है कि पुराण ग्रन्थों को भी न्याय की दृष्टि से साक्ष्य के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए।[५]

---

१. पु. स., पृ. ३५
२. तै. आ. २।९; बृह. २।४।११; छान्दो. ७।१।४
३. आ. गृ. सू. ३।४; ४।६
४. वही ४।६
५. गौ. सू. ११।१९

लौकिक संस्कृत साहित्य में वाल्मीकि रामायण और महाभारत महाकाव्य एक विशिष्ट वैशिष्ट्य प्राप्त हैं। इस दृष्टि से यदि वाल्मीकि रामायण को देखा जाए तो यह दिखाई देता है कि इसमें पुराणों के अस्तित्व के संदर्भ के अनेक संकेत प्राप्त हैं। वाल्मीकि रामायण में एक सन्दर्भ में यह कहा गया है कि सुमन्त न केवल पुराणवेत्ता हैं अपितु वे अनेक पौराणिक कथानकों के ज्ञाता भी थे । इस कथन से जहाँ यह ज्ञात होता है कि तब पौराणिक अस्तित्व में थे, वहीं यह भी ज्ञान होता है कि उस समय तक पुराण भी अस्तित्व में आ चुके थे।[1]

महाभारत महाकाव्य के संदर्भ में तो यही कहा जा सकता है कि इसके रचनाकार वे व्यास हैं, जिन्हें सभी पुराणों के रचनाकार माना जाता है।[2] ऐसा ही एक सन्दर्भ इस प्रकार का है जिसमें यह कथन किया गया है कि पुराणरूपी पूर्णचन्द्र के द्वारा ही श्रुति चन्द्रिका प्रकाशित हुई है।[2]

महाभारत में जनमेजय द्वारा वर्णित नागयज्ञ के आख्यान को वायु पुराण से लिया हुआ माना जाता है। इसलिए एक मत यह दिया जाता है कि वायु पुराण का नागयज्ञ सम्बन्धी आख्यान महाभारत के आख्यान से प्राचीन है।[3]

अन्ततः पुराणों के सन्दर्भ में अन्य जो भी मत दिए गए हैं, उनका यही संकेत है कि पुराण रचना-समय को एक सीमित समय में बाँध पाना कठिन है फिर भी जो मान्यता है उसके अनुसार इनका रचना समय ईसा पूर्व तीसरी-चतुर्थ शताब्दी से लेकर तेरहवीं-चौदहवीं शताब्दी तक हो सकता है।

---

१. वा.रा., पृ. ४८२, ४५८

२. म.भा. आदि पर्व. २।८६

३. द ग्रेट ए. इ., पृ. ४८

लिंग का उद्भव

लिंग का उद्भव कैसे हुआ और लिंग कौन है तथा लिंगी कौन है, इस विषय में लिंग पुराण में एक कथा दी गई है जिसमें यह कहा गया है कि एक बार ऋषियों ने सूत जी से पूछा था कि महर्षे! भगवान शंकर ने लिंग रूप कैसे धारण किया और लिंग कौन है तथा लिंगी कौन है। तब सूत जी ने उनसे इस प्रकार से कहा था कि ब्रह्मा जी ने ऋषियों को बताते हुए यह कहा कि प्रधान का नाम लिंग है और परमेश्वर लिंगी है। एक बार वैमानिक सर्ग में ऋषियों के साथ जनलोक को जाने पर मैं रक्षा के लिए विष्णु जी के पास समुद्र में गया। उस समय सृष्टि का स्थितिकाल पूर्ण हो चुका था। सहस्र चतुर्युगी का अन्त हो चुका था। अनावरण के कारण सभी स्थावर शुष्क हो चुके थे। सूर्य की किरणों से पशु, मनुष्य, पिशाच तथा राक्षसादि जलकर नष्ट हो चुके थे। उस समय सहस्त्र नेत्र, सहस्त्र चरण विश्वात्मा भगवान शंकर जो रजोगुण से समा-विष्ट होने पर ब्रह्मा, तमोगुण से समाविष्ट होने पर रुद्र और सतोगुण से समाविष्ट होने पर विष्णु रूप धारण करते हैं वे घोर अन्धकारमय समुद्र में निश्चिन्त होकर शयन कर रहे थे। सर्वात्मा, महाबाहू, कमलनयन नारायण को इस प्रकार सोता हुआ देखकर मैं उनकी माया से मोहित हो गया और क्रोधावेश में उनसे बोला-तुम कौन हो? इतना ही नहीं, झकझोरकर मैं उनका अपमान करने लगा।[1]

---

१. लिंग. पु., पृ. १५-१६

निद्रामय विष्णु जी ने जैसे ही नेत्र खोले, मुझे देखकर हँसते हुए कहा- वत्स स्वागत है, आओ, कैसे आगमन हुआ। अपने लिए 'वत्स' और तुम शब्दों का प्रयोग सुनकर मायावश मुझे बहुत क्रोध आया और मैं आवेश में बोला-जगत की रचना और संहार करने वाले मुझ अनादि पितामह परमेश्वर को तुम और वत्स कहने वाले तुम कौन हो ?

मेरी बात सुनकर उन्होंने कहा, देखो ! संसार का कर्ता मैं हूं तुम तो मुझ अव्यय शरीर से उत्पन्न हुए हो। मुझे आश्चर्य इस बात का है कि तुम अपने स्रष्टा, जगन्नाथ, अच्युत विष्णु को किस प्रकार भूल गए। फिर थोड़ी देर बाद विष्णु ने कहा, यह दोष तुम्हारा नहीं है। मेरी माया प्रबल है और मोहिनी है। उसके प्रभाव से तुम भी बच नहीं सके हो। किन्तु मेरे इस वचन को सत्य जानो कि मैं ही संसार का कर्त्ता और हर्त्ता हूँ। मैं परब्रह्म और परम तत्त्व हूँ। मैं ही परा ज्योति हूँ। इस संसार में तुम्हें जितने भी रूप देखने में आए हैं, वे सब के सब मेरे हैं। मैंने ही चौबीस अवतार धारण किए हैं और उन सभी अवतारों के मूल में मैं ही था और सदा-सर्वदा मैं ही उनके मूल में रहूँगा।[1]

---

१. लिं. पु., पृ. १६

ऋषियों को इस प्रकार की कथा सुनाते हुए आगे सूत जी ने कहा कि विष्णु के ऐसा कहने पर और ब्रह्मा के इस प्रकार स्वीकार न किए जाने पर दोनों में वाक्‌युद्ध हुआ और फिर दोनों में द्वन्द्व युद्ध होने लगा। इस स्थिति में प्रलय का दृश्य उत्पन्न हो गया। इसी समय हम दोनों के विवाद की शान्ति के लिए तथा हम लोगों को प्रवोधित करने के लिए हमारे मध्य प्रलयकालीन सहस्त्रों अग्नियों के समान प्रज्ज्वलित, आदि–मध्य–अन्त से रहित, क्षय-बुद्धि से विमुक्त अनुपम लिंग प्रकट हो गया।[1]

लिंग परीक्षा

इस प्रकार की स्थितिं होने पर ब्रह्मा जी ने कहा कि मैं भी मोहित हो गया हूँ और मेरी भी स्थिति विचित्र हो गयी। तब विष्णु जी ने यह प्रस्ताव किया कि हम लोग इस लिंग की परीक्षा करते हैं। ब्रह्मा जी भी इसके लिए तैयार हो गए। विष्णु ने कहा कि मैं इसकी गहराई की परीक्षा करता हूँ, और तुम इसकी ऊँचाई की परीक्षा करो। ऐसा निश्चय होते ही विष्णु ने नीले अंजन के सदृश पर्वत जैसा दस योजन लम्बा और चार योजन चौड़ा, मेरू पर्वत के समान ऊँचा, तीखी दाढ़ों वाला, प्रलयकालीन सूर्य के समान धधकता हुआ भयंकर युद्ध करने वाला अजेय वाराहरूप धारण कर लिया।[2]

---

१. एतस्मिन्नन्तरे लिंगमभवच्चावयोः पुरः।
विवादशमनार्थं हि प्रवोधार्थं च भास्करम्।।
ज्वालामालासहस्राढयं कालानलशतोपमम्।
क्षयबुद्धिविनिर्मुक्मादिमध्यान्तवर्जितम्।
अनौपम्यमनिर्दिश्यमव्यक्तं विश्वसम्भवम्।
तस्य ज्वाला सहस्त्रेण मोहितो भगवान् हरिः।।

लिं. पु., पृ. १६

२. लिं. पु. (हि.), पृ. ३६

ब्रह्मा जी ने कहा कि बाद मैं मैंने हंस रूप धारण कर लिया जिससे मेरा एक नाम हंस हुआ। विष्णु जी लिंग का पता करने के लिए एक सहस्त्र वर्ष पर्यन्त त्वरित गति से नीचे की ओर गए किन्तु उन्हें लिंग के मूल का पता नहीं चला। इसी प्रकार से इतनी ही अवधि तक मैं भी ऊपर की ओर उड़ता हुआ गया किन्तु लिंग के छोर का पता नहीं कर सका। मैं जब वापस आया तो थका हुआ था और मेरा अहंकार भी पूरी तरह से टूट चुका था। मैंने वापस आकर देखा कि विष्णु जी भी थककर बैठे हैं और वे भी लिंग का मूल का पता नहीं कर सके हैं। हम दोंनो ने एक दूसरे को देखा और यह अनुमान कर लिया कि हम लिंग के मूल का पता नहीं कर सके हैं। अतएव हमने यह जान लिया कि हम शिव की माया से विमोहित हैं। तब हमने उस लिंग की परिक्रमा कर और उसे प्रणाम किया।[1]

सृष्टिकर्ता के रूप में लिंग

ब्रह्मा जी के द्वारा कहा गया लिंग का माहात्म्य और सृष्टिकर्ता की स्थिति में उसका वर्णन लिंग पुराण में जिस प्रकार किया गया है उसमें यह कहा गया है कि जब ब्रह्मा और विष्णु लिंग का आदि अन्त नहीं जान सके तब तीन स्वरों का ज्ञान हुआ। ये तीन स्वर हैं–ह्रस्व, दीर्घ और प्लुत।

---

१. सत्वरं सर्व यत्नेन तस्यान्तं ज्ञातुमिच्छया।
श्रान्तो दृष्ट्वा तस्यांतमहंकारादधो गतः।।
तथैव भगवान् विष्णुः श्रांत संत्रस्तलोचनः।
सर्वदेवभवस्तूर्णमुत्थितः स महावपुः।।
समागतो मया सार्धं प्रणिपत्य महात्मनाः।
मायया मोहितः शम्भोस्तस्थौ संविग्नमानसः।।
लिं. पु., पृ. १६

उन्होंने कहा कि मात्रा के इसी रूप को दिखाने के लिए ओ और म् के मध्य तीन का अंक लिखा जाता है। इस महानाद को सुनकर वे विस्मित हुए और आश्चर्य करने लगे कि यह स्वर कहाँ से आया। तभी एक दिव्य ऋषि प्रकट हुए और उन्होंने कहा कि ओम् के तीन अक्षर अ, उ, म् ये तीनों वेदों ऋक्, यजु, साम का प्रतिनिधित्व करते हैं। और यह ओम नाम भगवान शंकर का है। उनके अवर्ण से ब्रह्मा जी का, उ वर्ण से विष्णु जी का तथा मूवर्ण से नीललोहित रुद्र जी का आविर्भाव हुआ। अकार सर्जक, उकार मोहक और मकार उन दोनों पर अनुग्रह करने वाला है। मकार बीजी अर्थात् बीज डालने वाला,बीज, योनि, नाद् सभी नाम उसी के हैं और उसी ने स्वेच्छा से अपने को विभिन्न रूपों में विभक्त किया हुआ है।

उन ऋषि ने बताया कि इसलिंग से ही बीजी अकार मूलक बीज हुआ जिसे उस बीजी ने उकार मूलक योनि में फेंका। इस बीज ने चारों ओर बढ़कर स्वर्ण अण्ड का रूप धारण किया। यह दिव्याण्ड अनेक वर्षों तक जल में पड़ा रहा। सहस्त्र वर्षों बाद वह दो भागों में विभक्त हुआ। एक भाग से ब्रह्मा का जन्म हुआ और दूसरे भाग से द्यौ एवं पृथिवी आदि पंचभूतों की उत्पत्ति हुई।[1]

---

१. ततो वर्ष सहस्रान्ते द्विधाकृतमजोद्भवम्।
अण्डमत्सु स्थितं साक्षाध्याख्येनेश्वरेण च।।
तस्याण्डस्य शुभं हैमं कपालं चोर्ध्वसंस्थितम्।
जज्ञे यद्यौस्तदपरं पृथिवी पंच लक्षणा।।

लि. पु., पृ. १६-१७
लि. पु. (हि.), पृ. ३७

शिव पुराणकार ने लिखा है कि अण्ड से उत्पन्न आकार स्वरूप चतुर्मुख ब्रह्मा सृष्टि के कर्ता बनाए गए, विष्णु रक्षक अथवा पालक और रुद्र संहारक नियुक्त किए गए। इन तीनों के मूल में लिंग ही है और उसी से तीनों सृजित हैं। पुराणकार लिखते हैं कि लिंग ही त्रिविध मूर्तियों को धारण करते हैं। इस सिद्धान्त को प्रतिपादित करते हुए स्वयम् लिंग ने शिव स्वरूप में प्रकट होकर कहा कि तुम मेरे अंगों से उत्पन्न हो। ब्रह्मा लिंग के हृदय के बाम भाग से और विष्णु दक्षिण भाग से उत्पन्न हुए हैं।

लिंग पुराण में ब्रह्मा और विष्णु के सम्वाद में यह कहा गया कि महादेवी पार्वती लिंग की वेदी हैं और महेश्वर साक्षात् लिंग हैं। सम्पूर्ण विश्व इसी में लय होता है इसीलिए भगवान शंकर ही लिंग कहे जाते हैं।

इस पुराण में एक स्थान पर यह भी संकेत है जहाँ स्वयम् शिव जी अपने स्वरूप का कथन करते हुए यह कहते हैं कि इस संसार में जितना भी स्त्रीलिंग है वह सभी मेरी देह से उत्पन्न प्रकृति स्वरूपा है। इस विश्व के जितने भी पुरूष रूप हैं वे सभी मेरी ही देह से उत्पन्न हैं। इस रूप में स्त्री और पुरूषों वाली यह सृष्टि मुझसे ही सृजित है और मुझमें ही विलीन होने वाली है।[1]

---

१. तव देहात्समुत्पन्नं देव सर्वमिदं जगत्।
पासि हंसि च भद्रं ते प्रसीदभगवंस्ततः।।
शि. पु. (हि.), पृ. ५९

लिंग का माहात्म्य

लिंग पुराण में भगवान शिव की सर्वत्र व्यापकता और उनका सर्वत्र होना अनेकों रूपों में कहा गया है। भगवान् के सूक्ष्म रूप का स्मरण करते हुए यह कहा गया है कि ऋषि गण ईश तत्त्व को सूक्ष्म कहते हैं किन्तु वह वाणी का विषय न होने से वाच्य नहीं है। अर्थात् शंकर के सूक्ष्म स्वरूप का कथन वाणी से नहीं किया जा सकता है। वह सूक्ष्म रूप ऐसा है जहाँ न वाणी पहुँचती है और आकार न होने से वहाँ मन की स्थिति भी नहीं है,[1] इस रूप में सर्वत्र वही शंकर है और उसकी विभूतियों से उसकी सर्वत्र व्यापकता भी सिद्ध होती है। मुनि गण शिव की विभूतियों का स्मरण करके ही रुद्र सर्वत्र है, ऐसा कहते हैं।[2]

ज्ञानीजन और विद्वान् जन नमस्कार के गौरव से शिव को स्मरण करते हैं और स्वयम् गौरवान्वित होते हैं। सभी कुछ ब्रह्म रूप है और वह ब्रह्म रुद्र है। जो पुरुष हैं, वे महादेव हैं, महेश ही परम शिव हैं। यह विचार कर उनका ही ध्यान और चिन्तन करना चाहिए।[3]

---

१. सूक्ष्मं वदन्ति ऋषयो यन्न वाच्यं द्विजोत्तमाः।
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह।।
लिं. पु., पृ. २८

२. विभूतयश्च रुद्रस्य मत्वा सर्वत्र भावतः।
सर्वं रुद्र इति प्राहुर्मुनयस्तत्त्वदर्शिनः।
पुरुषो वैमहादेवो महेशानः परः शिवः।
एवं विभुनिर्दिष्टो ध्यानं तत्रैव चिन्तनम्।।
वही, पृ. २८

३. नमस्कारेण सततं गौरवात्परमेष्ठिनः।
सर्वं तु खल्वेदं ब्रहम सर्वो वैरुद्र ईश्वरः।।
वही, पृ. २८

लिंग की महिमा गायन में यह कहा गया है कि सम्पूर्ण लोक लिंग रूप ही है। सभी कुछ लिंग में ही प्रतिष्ठित है। इसलिए सभी कुछ छोड़कर लिंग की पूजा ही करनी चाहिए। जो लिंग की स्थापना करते हैं, इसकी उपासना करते हैं, इसकी पूजा करते हैं, वे इस ब्रह्माण्ड का भेदन कर अपरलोक को प्राप्त कर लेते हैं।[१]

लिंग के माहात्म्य का स्वरूप इस प्रकार का है जिसमें यह कहा गया है कि ब्रहमा, विष्णु, हर, रमा, लक्ष्मी, धृति, स्मृति, प्रज्ञा, दुर्गा, शची, रुद्र, वसु, स्कन्द, लोकपाल, नवग्रह, गणपति, पितर, मुनि, कुवेरादि, अश्विनीकुमार, पशु, पक्षी, मृग आदि के साथ ब्रह्मा से लेकर जितना भी स्थावर और जंगम है वह सभी लिंग में प्रतिष्ठित है।[२]

इसलिए सभी का परित्याग करके लिंग की स्थापना करनी चाहिए। यत्नपूर्वक स्थापित और पूजित लिंग कल्याण के प्रदाता हैं।

---

१. सर्वं लिंगमयं लोकं सर्वं लिंगे प्रतिष्ठितम्।
तस्मात् सर्वं परित्यज्य स्थापयेत् पूजयेच्च तत् ।।
लिंगस्थापन् सन्मार्ग निहित स्वायत्तासिना ।
आशु ब्रह्माण्डमुद्भिद्य निर्गच्छेरविशंकया ।।
लिं. पु., पृ. १८८

२. स्वेषु स्वेषु च पक्षेषु प्रधानास्ते यथाद्विजाः ।
ब्रह्मा हरश्च भगवान्विष्णुर्देवी रमाधरा ।।
लक्ष्मी धृतिः स्मृतिः प्रज्ञाधरा दुर्गा शची तथा।
रुद्राश्च वसवः स्कन्दो विशाखः शाख एव च ।।
नैगमेशश्च भगवाल्लोकपाला ग्रहास्तथा ।
सर्वे नन्दि पुरोगाश्च गणा गणपतिः प्रभुः ।।
- - - -
ब्रह्मादिस्थावरान्तं च सर्वं लिंगे प्रतिष्ठितम् ।
लिं. पु., पृ. १८८

पालक तथा संहारक रूप में लिंग

सूत जी ने जब यह पुराण प्रारम्भ किया तो यह कहा कि निराकार-अव्यक्त ईश्वर का व्यक्त रूप प्रकृति का नाम ही लिंग है। भगवान शंकर अलिंग, चिन्ह रहित, निराकार हैं। वे शिव शक्ति का स्वरूप हैं। शिव शक्ति के अन्तर्गत प्रधान पुरुष और प्रकृति दोनों ही परिगणित हैं। अव्यक्त, निराकार, जगदीश्वर 'तुरीय' हैं। वे जन्म-मरणादि की विकृतियों से मुक्त हैं। उनके स्वरूप का एक गुण उनका अलिंग होना भी है। उस अलिंग से स्वतः समुद्भूत जगत् ही उनका लिंग स्वरूप (विग्रह शरीर) है। उस अलिंगी शिव ने अपनी माया से अपने लिंगों को सात-आठ तथा ग्यारह भागों में विभक्त किया है। एक मूर्ति, जो ब्रह्मा रूप है उससे वे विश्व की उत्पत्ति करते हैं, दूसरी मूर्ति विष्णु रूप है, जिससे वे जगत का पालन करते हैं अर्थात् इसी उनके स्वरूप से विश्व की रक्षा होती है। और उनकी जो तीसरा मूर्ति रुद्र रूप है, वह संहारक है। इससे यह संकेत होता हे कि जो मूल रूप से अलिंगी हैं और संसार का प्रकट स्वरूप ही जिनका लिंग रूप है- अपने त्रिगुण स्वरूप से विश्व की उत्पत्ति, पालन और प्रलय का हेतु है, अलिंग, लिंग और लिंग लिंगात्मक स्वरूप मूलतः एक ही है।[1]

---

१. अलिंगो लिंगमूलं तु अव्यक्तं लिंगमुच्यते ।
अलिंगः शिव इत्युक्तो लिंगं शैवमिति स्मृतम् ।।
प्रधानं प्रकृतिश्चेति यदाहुर्लिंगमुत्तमम् ।
गंधवर्णरसैर्हीनं शब्दस्पर्शादिवर्जितम् ।।
सप्तधा चाष्टधा चैव तथैकादशधापुनः ।
लिंगान्यलिंगस्य तथा मायया विततानि तु ।।

\- \- \- \-

एकस्माद् त्रिष्वभूद्विश्वमेकेन परिरक्षितम् ।
एकेनैव हृतं विश्वं व्याप्तं त्वेवं शिवेन तु ।।

लि. पु. , पृ. ३

लिंग पुराण में कहा गया है कि जब ईश की सृष्टि रचना की इच्छा होती है तब सर्वप्रथम महत् तत्त्व का प्रादुर्भाव होता है। महत् तत्त्व से संकल्प, विकल्प की वृत्ति और उससे त्रिगुण मूल अहंकार से तन्मात्राएँ-रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्शादि तथा इनके आधार पर अग्नि, जल, पृथ्वी, आकाश तथा वायु की सृष्टि होती है। शब्दादि विषयों को ग्रहण करने वाली-जो कर्म में प्रवृत्त होने के कारण कर्मेन्द्रियाँ कहीं जाती हैं और ज्ञानात्मिका होने के कारण ज्ञानेन्द्रियाँ कही जाती हैं वे उत्पन्न होती हैं। मन भी यद्यपि एक इन्द्रिय है तथापि यह कर्म और ज्ञान में समान रूप से व्याप्त होने कारण कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय के रूप में कहा जा सकता है। ब्रह्ममादि अण्ड को उत्पन्न करते हैं और बुद-बुद से पितामह ब्रह्मा का अवतार होता है। वही भगवान रुद्र और सर्वान्तर्यामी विष्णु हैं।[1]

---

१. सिसृक्षया चोद्यमानः प्रविश्याव्यक्तमव्ययम् ।
व्यक्तसृष्टिं विकुरुते चात्मानाधिष्ठितो महान् ।।
महतस्तु तथावृत्तिः संकल्पाध्यवसायिका ।
महतस्त्रिगुणस्तस्मादहंकारो रजोधिकः ।।
तेनैव चावृतः सम्यगहंकारस्तमोधिकः ।
महतो भूततन्मात्रंसर्गकृद् वै वभूव च ।।
अहंकाराच्छब्दमात्रं तस्मादाकाशमव्ययम् ।
सशब्दमावृणोत्पश्चादाकाशं शब्दकारणम् ।।
तन्मात्राद्भूतसर्गश्च द्विजास्त्वेवं प्रकीर्तिताः ।।

\- \- \- \-

स एव भगवान् रुद्रो विष्णुर्विश्वगतः प्रभुः ।
तस्मिन्नंडे लिंगे लोका अंतर्विश्वमिदं जगत् ।।

लिं. पु., पृ. ४

सृष्टि के इस क्रम को विस्तार देते हुए यह कहा गया है कि अण्ड अपने से दस गुना जल से, जल दस गुना अग्नि से, अग्नि तेज से, तेज वायु से, वायु अहंकार से, अहंकार महत् से और महत् प्रधान से परिव्रत है। यही उस अण्ड के सात आवरण कहे जाते हैं। इन अण्डों की संख्या कोटि-कोटि है। प्रत्येक अण्ड में, ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं। प्रधान से उत्पन्न ये सभी शिव का सानिध्य प्राप्त करके लय हो जाते हैं। यही सृष्टि का आदि और अन्त है। इसका यह संकेत है कि ब्रह्मादि की उत्पत्ति सृष्टि का आदि है और ब्रह्मादि का लय सृष्टि का अन्त है।[1]

पुराणकार लिखते हैं कि सर्ग और प्रतिसर्ग के करने वाले शंकर ही हैं। उत्पत्ति काल में वे रजोगुण से युक्त हो जाते हैं। उत्पन्न प्रजा के पालन-पोषण में वे सतोगुण में अवस्थित होते हैं। सृष्टि के विध्वंस काल में वे तमोगुण से संयुक्त रहते हैं।[2]

भगवान दिन में सृष्टि करते हैं और रात्रि में प्रलय करते हैं। सभी देवता, प्रजापति और महर्षि दिन में विद्यमान, रात्रि में विलीन तथा रात्रि के अन्त में पुनः प्रकट हो जाते हैं। यही लिंग का पालक और संहारक का रूप है।[3]

---

१. लयश्चैव तथान्योन्यमाद्यंतमिति कीर्तितम ।
सर्गस्य प्रतिसर्गस्य स्थितेः कर्ता महेश्वरः ।।
लिं. पु., पृ. ४

२. सर्गे च रजसायुक्तः सत्वस्था प्रतिपालने ।
प्रतिसर्गे तमोद्रिक्तः य एव त्रिविधा क्रमात् ।।
वही पृ. ४

३. दिवा सृष्टिं विकुरुते रजन्यां प्रलयं विभुः ।
वही पृ. ४

लिंग का विश्व स्वरूप

यहाँ पर यह स्मरणीय है कि लिंग पुराण का नाम यद्यपि भगवान शंकर के एक नाम-रूप लिंग के आधार पर किया गया है तथापि इस पुराण में शिव, शंकर, पशुपति आदि के रूप में ही शिव स्वरूप और शिव तत्त्व का गायन किया गया है। इसी प्रकार से एक स्थान पर इसमें शिव के अन्य नामों की गणना भी की गई है जिनमें शिव के लिंग रूप के अतिरिक्त इनके सर्व, भव, वन्हि, ईशान, भीम, रुद्र, महादेव, उग्र आठ मूर्तियों के रूप में गिना गया है। इसी क्रम में यह कहा गया है कि भगवान शंकर की अष्ट मूर्तियों से यह सम्पूर्ण जड़-चेतन व्याप्त है।[1]

इन आठों मूर्तियों की व्यापकता को इस पुराण में इस रूप में कहा गया है जिसमें यह वर्णन है कि सर्व इस जगत् के विधाता और भर्ता हैं। भव इस संसार के जीवों को जीवन प्रदान करते हैं। बह्नि ब्रह्माण्ड में व्याप्त होकर शीत तम आदि से लोकों की रक्षा करते हैं।ईशान पवन बनकर समस्त भुवनों में व्याप्त रहते हैं। भीम रूप में वे चर और अचरों के मन में उत्पन्नहुई कामनाओं की पूर्ति करते हैं। रुद्र रूप में भगवान शंकर भक्तों को मुक्ति प्रदान करते हैं और सम्पूर्ण संसार के अन्धकार का हरण करते हैं। उनकी सप्तम मूर्ति महादेव हैं। इस रूप में वे सृष्टि में रस और शीतलता का संचार करते हैं तथा उग्र रूप में वे जगत को नियन्त्रित करते हैं और पापियों को दण्ड देते हैं।[2]

---

१. लिं. पु. (हि.), पृ. १३९
२. वही, पृ. १३९-१४०

शिव की व्यापकता और सर्वरूपता का वर्णन करते हुए इस पुराण में यह कहा गया है कि शिव पुरुष हैं और शिवा माया हैं। शिव आकाश और शिवा पृथिवी हैं। शिव दिन और शिवा रात्रि हैं। शिव समुद्र और पार्वती तरंग हैं। शिव वृक्ष और शिवा लता हैं। शिव ब्रह्मा, विष्णु हैं और शिवा सावित्री तथा लक्ष्मी हैं। इस रूप में विश्व में जितने भी पुरुष रूप हैं सब भगवान् शंकर की विभूति हैं तथा जितने स्त्री रूप हैं वे सभी भगवती की विभूति हैं।[1]

भगवान् शंकर के विश्व रूप में यह भी कहा गया है कि शंकर ज्ञाता तथा ज्ञेय हैं, श्रोता और श्रव्य है, दृष्टा और दृश्य हैं, आघ्राता और घ्राण्य हैं। वे उसी प्रकार से हैं जैसे अग्नि से उत्पन्न स्फुलिंग अग्नि में ही व्याप्त रहती है। इस रूप में वे सर्वत्र हैं, सभी में हैं और वे ही सभी कुछ हैं।[2]

---

१. पुरुषं शंकरं प्राहुगौरीं च प्रकृतिंद्विजा: ।
अर्थ: शम्भु: शिवा वाणी दिवसोऽज:शिवानिशा।।
आकाशं शंकरो देव: पृथिवी शंकर प्रिया ।
समुद्रो भगवान रुद्रो वेला शैलेन्द्रकन्यका ।
वृक्ष: शूलायुधो देव: शूलपाणिप्रियालता ।।
ब्रह्माहरोपि सावित्री शंकरार्धशरीरिणी।
विष्णुमहेश्वरो लक्ष्मी भवानी परमेश्वरी ।।
शंकर: पुरुषा: सर्वे स्त्रिय: सर्वा महेश्वरी ।। लि. पु., पृ. १२८.१५९

२. श्राव्यं सर्वमुमारूपं श्रोता देवो महेश्वर: ।
विषयित्वं विभुर्धत्ते विषयात्मकतामुमा ।।
स्प्रष्टव्यं वस्तुजातं तु धत्ते शंकरवल्लभा ।
वही पृ. १५९

जिस प्रकार से सारे शरीर में मनतत्त्व रूप में अवस्थित है, उसी प्रकार से सम्पूर्ण शरीर में शिव स्वरूप अवस्थित है। भगवान शंकर ही सभी प्राणियों के शरीर में श्रोत्र, आस्वाद तथा घ्राण हैं। रूप, रस, गन्ध, शब्द और स्पर्श तथा इनके आधार पृथिवी, जल, तेज, अग्नि, वायु और आकाश शंकर के ही स्वरूप हैं। शिव की पांच मूर्तियां ही इन पांचों तत्त्वों का प्रवर्तन और संचालन करती हैं। पांच ज्ञानेन्द्रियों की पांच कर्मेन्द्रियां हस्त, पाद, वाक्, लिंग तथा गुदा तथा इनके विषय कार्य करना, चलना, बोलना, मूत्र तथा पुरीषोत्सर्गादि भी शिव के ही मूर्तरूप हैं।[1]

शिव क्षर हैं, अक्षर हैं और दोनों से भिन्न तथा अभिन्न हैं। वे क्षर रूप में व्यक्त और अक्षर रूप में अव्यक्त हैं। परन्तु इन दोनों से परे होने के कारण वे पर भी हैं। समष्टि को शिव का अव्यक्त और व्यष्टि को शिव का व्यक्त रूप मानना चाहिए। भगवान शंकर विद्या रूप भी हैं और अविद्या रूप भी। अविद्या रूप इसलिए हैं क्योंकि अविद्या रूप प्रपञ्च भी भगवान शंकर का ही रूप है। विद्या शंकर का उत्तम रूप है और अविद्या मायामय रूप है।[2]

---

१. करोति पाणिरादानं न गत्यादि कदाचन ।
सर्वेषामेव जन्तूनां नियमादेव वेधसः ।।
विहारं कुरुते पादो नोत्सर्गादि कदाचन ।
समस्तदेहिवृन्दानां शिवस्यैव नियोगतः ।।
लिं. पु., पृ. १५८

२. लिं. पु. (हि.), पृ. १४२

शिव के अनुशासन से ही वायु सप्त स्कन्धों में विभाजित होकर लोक यात्रा संपादित करती है। अग्नि देवताओं के लिए हव्य वहन करती है और वही पूर्वजों के निमित्त कव्य भी धारण करती है। अग्नि पाचन क्रिया का काम शंकर की शक्ति और आज्ञा से ही करती है। खाया भोजन पचाने की जो शक्ति प्राणी में होती है और जो अग्नि उदर में रहकर भुक्तान्न का पाचन करती है वह भी शंकर के आदेश से ही करती है। संसार में जो प्राणी जीवन धारण करते हैं और अपने जीवन में जो शक्ति प्रात करके आपत्तियों से पार कर जाते हैं, वह भी शंकर की ही शक्तिका महत्त्व है, क्योंकि शिव की आज्ञा उल्लंघन करने योग्य नहीं है। इसी प्रकार शिव अपनी कृपालुता से देवताओं की रक्षा करते हैं और दैत्यों का संहार करते हैं। सभी प्राणी संसार में अपने पुण्यों के अनुसार जो पुण्य फल पाते हैं, वह सभी शिव की कृपा से ही होता है, क्योंकि उनकी शक्ति और आज्ञा उल्लंघन योग्य नहीं हैं।[१]

---

१. निर्देशाद् देवदेवस्य सप्तस्कंधगतो मरुत् ।
लोकयात्रां वहत्येव भैदैः स्वैरैवाहवादिभिः ।।

\- \- \- \-

हव्यं वहति देवानां कव्यं कव्याशिनामपि ।
पाकं च कुरुते वन्हि शंकरस्यैव शासनात् ।।

\- \- \- \-

अविलंघ्या हि सर्वेषामाज्ञा तस्य गरीयसी ।

\- \- \- \- \-

देवान् पातयत्सुरान्हन्ति त्रैलोक्यमखिलं स्थितः ।
अधार्मिकाणां वै नाशं करोति शिवशासनात् ।।

\- \- \- \-

पुण्यानुरूपं सर्वेषां प्राणिनां संप्रयच्छति ।

लिं. पु., पृ. १५८

लिंग पुराण में लिंग की सर्वातिशयता इस रूप में देखी जा सकती है और उनकी सर्व व्यापकता की अनुभूति इस रूप में की जा सकती है जिसमें यह कहा गया है कि सम्पूर्ण लोक लिंग मय ही हैं। सभी कुछ लिंग में ही प्रतिष्ठित है। इसलिए जो शाश्वत पद की प्राप्ति करना चाहते हैं, वे लिंग की ही उपासना और पूजा करें।[1]

लिंग के इस महत्त्व के प्रतिपादन में ही पुराणकार यह लिखते हैं कि लिंग की उपेक्षा करके जो कोई अन्य देवता की उपासना करता है ऐसा यदि राजा है तो वह अपने देश के सहित रौरव नरक को प्राप्त करता है। इसी प्रकार जो राजा शिव भक्त न होकर किसी दूसरे का भक्त है, वह उसी प्रकार से है जैसे युवती अपने पति का त्याग करके जार को स्वीकार करती है। यदि किसी ने सहस्त्रों पाप किए हैं और सैकड़ों विप्रों का वध भी किया है, तब भी यदि वह भाव पूर्वक शिव का आश्रय लेता है तो वह उन पापों से मुक्त हो जाता है। इसलिए जो श्रेय की कामना करते हैं, वे शिव की ही स्थापना करें शिव की ही उपासना करें, शिव की ही अर्चना करें और शिव का ही चिन्तन करें।[1] शिव और लिंग की अभेद स्थिति ही जानना चाहिए।[2]

---

१. सर्वे लिंगमया लोका: सर्वे लिंगे प्रतिष्ठिता: ।
तस्माद् अभ्यर्चयेद् लिंगं यदीच्छेच्छाश्वतं पदम् ।।
लिं.पु., पृ. १५९

२. शिवलिंगं समुत्सृज्य यजन्ते चान्यदेवता: ।
स नृप: सह देशेन रौरवं नरकं व्रजेत् ।।
शिवभक्तो न यो राजा भक्तऽन्येषु सुरेषु य: ।
स्वपतिंयुवति स्त्यक्त्वा यथा जारेषु राजते ।।
– – – –
पूजनीयौ नमस्कार्यौ चिंतनीयौ च सर्वदा ।। वही पृ. १५९

लिंग और रुद्र

'सर्वं लिंगे प्रतिष्ठिताः' कहकर पुराणकार यह संकेत पहले ही दे चुके हैं कि सभी कुछ लिंग में ही प्रतिष्ठित है। अर्थात् लिंग से भिन्न और उससे बाहर कुछ भी नहीं है किन्तु शिव के द्वारा धारण किए जाने वाले तीन रूप कहे गए हैं, उनमें ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र का नाम है और एक स्थान पर उनकी वन्दना करते हुए यह कहा गया है कि ओंकार रूप शिव के लिए नमस्कार है, सर्वज्ञ रूप शिव के लिए नमस्कार है, रुद्र रूप शिव के लिए नमस्कार है और प्रधान रूप शिव के लिए नमस्कार हैं।[१] एक अन्य स्थान पर शिव की आठ मूर्तियों की चर्चा की गई है जिसमें भव, पशुपति, ईशान, भीम, रुद्र आदि नामों का कथन किया गया है और वहाँ पर यह कहा गया है कि रुद्र भगवान भुक्ति और मुक्ति के प्रदाता हैं।[२]

रुद्र की उत्पत्ति के सम्बन्ध में लिंग पुराण में जो कथा आती है, उसके अनुसार एक बार ब्रह्मा और विष्णु भगवान शिव के समक्ष उपस्थित हुए। भगवान शिव ने लीला भाव से जब उन दोनों से परिचय पूछा तो उन्होंने कहा कि आप सभी कुछ जानते हो फिर भी अज्ञ बन रहे हो। आपने हम दोनों को उत्पन्न किया है। यह सुनकर शिव जी प्रसन्न हुए और उन्होंने कहा कि तुममें से एक सृष्टि की उत्पत्ति करे और दूसरा सृष्टि का पालन करे।

---

१. ओंकाराय नमस्तुभ्यं सर्वज्ञाय नमो नमः।।
   नमः शिवाय रुद्राय प्रधानाय नमो नमः।। लिं. पु., (हि.), पृ. ३७

२. रुद्र इत्युच्यते देवैर्भगवान भुक्तिमुक्तिदः।
   सूर्यात्मकस्य रुद्रस्य भक्तानां भक्तदायिनः।।
   लिं. पु., पृ. १६०

मैं तुम दोनों को अपने हृदय के वामभाग और दक्षिण भाग का अंश बनाता हूँ। ब्रह्मा मेरे बामभाग के अंश हैं और विष्णु दक्षिण भाग के अंश हैं। इतना कहकर और उनको अपना अभीप्सित वर देकर शिव जी अन्तर्ध्यान हो गए। तब ब्रह्मा जी ने सृष्टि की रचना करने की शक्ति के लिए तप करना प्रारम्भ किया। बहुत समय तक तप करने के बाद भी जब ब्रह्मा जी को उसका फल नहीं मिला तो उनके मन में क्रोध और क्षोभ उत्पन्न हुआ जिससे उनके नेत्रों से अश्रु विन्दु निकलने लगे और लम्बे विषैले सर्प बन गए।

अपने द्वारा इस रूप में प्रथम सृष्टि के रूप में ब्रह्मा जी को बड़ा क्षोभ हुआ और वे अपने आपकी निन्दा करने में प्रवृत्त हो गए।[1]

---

१. विभो रुद्र महामाय इच्छया वां कृंत त्वया।
तयोस्तद् वचनं श्रुत्वा अभिनंधाभिमान्य च।।
उवाच भगवान्देवो मधुरं श्लक्ष्णया गिरा।
भो भो हिरण्यगर्भत्वां त्वां च कृष्ण ब्रवीम्यहम्।।
– – – – –
प्रजा स्रष्टुमनश्चक्रे तप उग्रं पितामहः।
तस्यैवं तप्यमानस्य न किंचित् समवर्तत।।
ततो दीर्घेण कालेन दुखात् क्रोधो हयजायत।
क्रोधाविष्टस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुविन्दवः।।
– – – – –
प्रकीर्णकेशः सर्पास्ते प्रादुर्भूता महाविषाः।
सर्पास्तांग्रजान्दृष्ट्वा ब्रह्मात्मानमनिंदयत्।।
लिं. पु., पृ. २२

पुराणकार वर्णन करते हैं कि इस प्रकार के क्रोध और क्षोभ के भाव से ब्रह्मा जी मूर्च्छित हो गए। मूर्च्छा की अवस्था में ब्रह्मा जी ने अपने प्राणों का परित्याग कर दिया। उनकी इस दशा को देखकर उनकी सहानुभूति में करुणक्रन्दन करते हुए एकादश रुद्र उत्पन्न हुए जो एक प्रकार से उनके प्राण ही थे। इसका अभिप्राय यह हुआ कि ब्रह्माजी के प्राण रुद्र थे और रुद्र ही शिव हैं जिनसे ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई। यद्यपि इस कथानक का अवसान यहीं हो गया क्योंकि रुद्रों की उत्पत्ति का वर्णन पुराणकार ने कर दिया किन्तु शिव ने अपने भिन्न-भिन्न रूपों के धारण करने का वर्णन विस्तार से किया और यह बताया कि मैं ही आगे के कल्पों में विविध रूपों में आया और मैं ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शिव, लिंग आदि नामों से ख्यात हूँ। केवल पृथक्-पृथक् भावों से नामों में अन्तर है। ब्रह्मा जी के रोने के कारण ही भगवान् शिव जिन्हें लिंग रूप में भी जाना गया है, रुद्र रूप में उत्पन्न हुए। वस्तुतः इनमें कोई भेद नहीं है।

---

१. मूर्च्छाभिपरितापेन जहौ प्राणान् प्रजापतिः ।
तस्याप्रतिमवीर्यस्य देहात्कारुण्यपूर्वकम् ।
अथैकादश ते रुद्रा रुदतोऽभ्यक्रमंस्तथा ।।
रोदनात्खलु रुद्रत्वं तेषु वै समजायत ।
ये रुद्रास्ते खलु प्राणा ये प्राणास्ते तदात्मकाः ।
प्राणाः प्राणवतां ज्ञेयाः सर्वभूतेष्वस्थिताः ।।
अत्युग्रस्य महत्त्वस्य साधुराचरितस्य च ।।
- - - -
सर्वलोकमयं देवं दृष्ट्वा स्तुत्वा पितामहः ।
लिं. पु., पृ. २२

लिंग और पशुपति

लिंग पुराण का अनुशीलन करने पर और इस पुराण के नामकरण के आधार पर तो यह कहा जा सकता है कि भगवान् शिव के नाम लिंग को आधार बनाकर और इसी रूप को महत्त्व देकर यह पुराण लिखा गया है किन्तु शिव तत्त्व ही मूल में है और इसी के विविध रूप इसमें वर्णित हैं। शिव, रुद्र, लिंग और पशुपति आदि में नामतः ही अन्तर है पर यथार्थ में ये सभी एक हैं। ऐसा इस पुराण में कहा भी गया है।

इस पुराण के एक स्थान पर यह निरूपण है कि जो यह भगवान रुद्र हैं वही ब्रह्मा हैं, वही विष्णु हैं और वही महेश्वर हैं, वही स्कन्द हैं, वे इन्द्र हैं, वे चौदह भुवन हैं, अश्विनी कुमार वही हैं, नक्षत्र गण वही हैं, आकाश वही हैं और दिशा वही हैं। सूर्य, सोम, अष्टग्रह, प्राण, काल, यम, मृत्यु , अमृत परमेश्वर वही हैं। भूत, भविष्य, वर्तमान महेश्वर ही हैं। सम्पूर्ण विश्व और इस विश्व में व्याप्त सत्य भी परमेश्वर हैं। वही आदि हैं वही भूः, भुवः और स्वः हैं। अन्त में वही हैं जो विश्व के शीर्ष में हैं।[1]

---

१. य एष भगवान् रुद्रो ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
स्कन्दश्चापि तथा चेन्द्रो भुवनानि चतुर्दश ।।
अश्विनौ ग्रहताराश्च नक्षत्राणि च खं दिशः ।
भूतानि च तथा सूर्यः सोमश्चाष्टौ ग्रहास्तथा ।।
प्राणः कालोयमो मृत्युरमृतः परमेश्वरः ।
भूतं भव्यं भविष्यञ्च वर्तमानं महेश्वरः ।।
विश्वं कृत्स्नं जगत्सर्वं सत्यं तस्मै नमो नमः ।।
त्वमादौ च तथाभूतो भूर्भुवः स्वस्तथैव च ।
अन्ते त्वं विश्वरूपोऽसि शीर्षं तु जगतः सदा ।।
लिं. पु., पृ. १६३

देवों द्वारा भगवान शंकर की इस प्रार्थना में जो स्वरूप शिव का प्रतिपादित किया गया है, उसमें यह कहा गया है कि जो ओंकार है, वही प्रणवरूप में व्याप्त होकर अधिष्ठित है। वही ब्रह, ईशान और एक रुद्र है। उसका उर्ध्व रूप होने से वह ओंकार रूप में कथनीय है और प्राणों की रक्षा करने के कारण वह प्रणव रूप में है। वह सर्वत्र व्याप्त होने के कारण सर्व व्यापी सनातन है। ब्रह्मा, हरि आदि के रूप में उपलब्ध होने पर भी उसका आदि और अन्त नहीं है। रुद्र अनंत रूप है और जगत् का तारण करने के कारण 'तार' रूप में भी प्रतिष्ठित है। सूक्ष्म रूप होकर वह संसार के सभी प्राणियों में अवस्थित है, इसीलिए नीललोहित भगवान् को सूक्ष्म रूप में कहते हैं। यह भगवान अद्वितीय है और परम परमेश्वर है। भगवान शिव महानों में महान् और सूक्ष्मों में सूक्ष्म है। भगवान शिव की महती गुफा में ही इस संसार के जन्तुओं के प्राण वसते हैं।[1]

---

१. ओंकार स एवाह प्रणवो व्याप्य तिष्ठति ।
अनंतस्तारसूक्ष्मं च शुक्लं वैद्युतमेव च ।।
परंब्रह्म स ईशानो एको रुद्रः स एव च ।
भगवान महेश्वरः साक्षात् महादेवो न संशयः ।
ऊर्ध्वमुन्नामयत्येव सः ओंकार प्रकीर्तितः ।
प्राणानवति यस्तस्मात्प्रणवः परिकीर्तितः ।।
सर्वं व्याप्नोति यतस्तस्मात्सर्वव्यापी सनातनः ।
ब्रह्मा हरिश्च भगवानाद्यन्तं नोपलब्धवान् ।।
— — — —
गुहायां निहितश्चात्मा जंतोरस्य महेश्वरः ।।
लिं. पु., पृ० १६४

लिंग पुराण में भगवान शंकर पशुपति रूप की अर्चना के लिए कई अध्यायों में कई इतिहास-कथानक दिए गए हैं। ऋषियों नेवार्तालाप के क्रम में जब सूत जी से यह जानना चाहा था कि भगवान् शंकर को पशुपति क्यों कहा जाता है और पाशुपति व्रत करके किसने कल्याण प्राप्त किया था तो इसके उत्तर में जो कहा गया, उसका अभिप्राय यह है कि ब्रह्मा जी से लेकर जड़ चेतन संसारी जितने भी जीव हैं वे सभी पशु कहे जाते हैं । और उन सबका स्वामी होने के कारण भगवान शंकर पशुपति कहलाते हैं। भगवान विष्णु अनादिकाल से अपने माया जाल में सभी संसारी जीवों को बाँधते चले आ रहे हैं। अविद्या पाश में बंधेहुए पशुओं को मुक्त करने वाले एक मात्र भगवान शंकर ही हैं। ज्ञानयोग से सेवा किए जाने पर भगवान् शिव ही प्राणियों पर सहज कृपा करते हैं, दस इन्द्रियाँ, अन्तःकरण और तन्मात्राएं आदि सभी मिलाकर चौबीस पाश हैं। इन सभी पाशों से छुटकारा पाने का एक मात्र उपाय शिव की भक्ति है।[१]

---

१. कथं पशुपतिर्देवः शंकरः परमेश्वरः ।
वक्तुमर्हसि चास्माकं परं कौतूहलं हि नः ।।
\- - - -
ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च देवदेवस्य धीमतः ।
पशवः परिकीर्त्यन्ते संसारवशवर्तिनः ।।
तेषांपतित्वाद भगवान् रुद्रः पशुपति स्मृतः ।।
\- - - -
इन्द्रियार्थमयैः पाशैः बद्धा विषयिणः प्रभुः ।
\- - - -
आशु भक्ता भवन्त्येव परमेश्वरसेवया ।।
लिं. पु., पृ. १५६

पुराणकार भक्ति के स्वरूप का निर्धारण करते हुए यह लिखते हैं कि मन, वचन, कर्म और शरीर से भजन-सेवा का नाम ही भक्ति है। भगवान शंकर को सर्वव्यापक मानकर उसके रूप और गुणों का ध्यान करना मानसिक, प्रवण आदि का जाप करना वाचिक, प्राणायामादि का अभ्यास कायिक तथा मन्दिरों का मार्जन-प्रक्षालनादि शारीरिक भक्ति कहलाती हैं।[1]

अविधा, अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश आदि सभी क्लेशों से जीव को भगवान शंकर ही मुक्त करते हैं। अविधा का अर्थ अन्धकार, अस्मिता का अर्थ मोह, राग का अर्थ महामोह, द्वेष का अर्थ अन्धतामिस्त्र तथा अभिनिवेश का अर्थ मिथ्या ज्ञान हैं । भगवान् शंकर की शरण में जाने से इन सबसे सहज में ही मुक्ति मिल जाती है। शिव शब्द का अर्थ ही यह है कि वे अतिशय कल्याण करते हैं। शिव, शंकर, रुद्र, महादेव तथा प्रणव इन्हीं एक के नाम हैं। इनकी भक्ति और प्रपत्ति से जीव को पशुत्व से मुक्ति मिलती है।[2] यही मुक्ति का उपाय है।

---

१. भजनं भक्तिरित्युक्ता वाड्.मन:कायकर्मभि:।

– – – –

रूपोपादानर्चिता च मानसं भजनं विदु:।
वाचिकं भजनं धीरा: प्रणवादिजपं विदु:।।
कायिकं भजनं सद्रि: प्राणायामादि कथ्यते।

लिं. पु., पृ. १६५

२. अविधां अस्मितां रागं द्वेष च द्विपदां वरा:।
वदन्त्यभिनिवेशं च क्लेशान् पाशत्वमागतान्।।
तमो मोहो महामोहस्तामिस्त्र इति पण्डिता:।
प्रणवो वाचकस्तस्य शिवस्य परमात्मन:।
शिवरुद्रादि शब्दानां प्रणवोऽपि पर: स्मृत:।।

वही, पृ. १५७

शिव पुराणकार ने पच्चीस तत्त्वों को अविद्यात्मक पाश कहा है। इन पाशों से भगवान् शंकर ही मुक्त करते हैं, इसलिए वे पशुपति कहे जाते हैं। पचीस तत्त्वों में प्रकृति, महत्, अहंकार, एकादशेन्द्रियाँ, पन्चतन्मात्राएँ और पंचमहाभूत हैं। पुरूष को छोड़कर चौबीस तत्त्वों से पशु जीव बंधा रहता है। इन्द्रियों के द्वारा जो विषय ग्रहीत किए जाते हैं, वही बन्धन कारक हैं। ब्रह्मादि से लेकर छोटे से छोटे सभी जीव इन्हीं विषय-बन्धनों से बँधें हुए हैं। सत्व, रज, तम तीन गुणों से यह बन्धन का सारा कार्य सम्पादित होता है। किन्तु दृढ़ भक्ति योग से और पशुभूत जीवों से उपासना किया जाने वाला शिव ही इसे मुक्त करता है, इसलिए यह पशुपति है।[1]

भगवान् पशुपत व्रत के महत्त्व का कथन इस रूप में है जिसमें यह कहा गया है कि पाशुपत व्रत करने पर पशुभाव नहीं आता । पशुपति और लिंग में अभेद स्वरूप इस रूप में कहा गया है जिसमें यह कहा गया है कि द्वादशलिंगो का व्रत पशु-पाश का विमोचन करता है।[2]

---

१. चतुर्विंशति तत्त्वानिपाशां हि परमेष्ठिः।
तैं पाशैः मोचयत्येकः शिवो जीवैरुपासिता।
निबध्नाति पशूनेकश्चतुर्विंशतिपाशकैः।।

- - -

दशेन्द्रियमयैः पाशैः अन्तःकरण सम्भवैः।
भूततन्मात्रपाशैश्च पशून्मोचयति प्रभुः।
इन्द्रियार्थमयैः पाशैर्बद्धा विषयिणः प्रभुः।
आशु भक्ता भवन्त्येव परमेश्वरसेवया।।

लिं. पु., पृ. १५६

२. मुनिभिश्च महाभागैरनुष्ठितमनुत्तमम्।
व्रतं द्वादशलिंगाख्यं पशुपाशविमोक्षणम्।।

वही, पृ. ९५

लिंग का अघोर रूप

भगवान् शिव के अघोररूप के सम्बन्ध में लिंग पुराण में जो सन्दर्भ आया है उसके अनुसार यह कहा गया है कि सृष्टि के सर्जक ब्रह्मा जी के मन में एक बार जब सृष्टि सर्जित करने की चिन्ता हुई तो उस समय एक विचित्र स्वरूप ने जन्म लिया। विध ााता ने अपने समक्ष एक अद्भुत कृष्ण वर्ण के तेजस्वी बालक को प्रादुर्भूत होते हुए देखा। वह कृष्ण वर्ण का था, वीर्यवान् था, दीप्तमान था और अपने तेज से तेजस्वी दिखाई दे रहा था। उसके सिर में कृष्ण अम्बर था, कृष्ण यज्ञोपवीत धारण किए हुए था और कृष्ण वर्ण का माला भी पहने हुए था। इस प्रकार के कृष्ण वर्ण वाले, कृष्ण वस्त्र वाले उस अघोररूप को उत्पन्न हुआ देखकर देवताओं ने उसकी वन्दना की। तब ब्रह्मा ने उस अघोररूप को देखकर उसे ब्रह्म रूप ही जाना।

---

१. एकार्णवि तदा वृत्ते दिव्ये वर्षसहस्रके।
स्रष्टुकाम: प्रजा ब्रह्मा चिन्तयामास दुखिता:
तस्य चिंतयमानस्य पुत्रकामस्य वै प्रभो:।
कृष्ण: समभद् वर्णो ध्यायत: परमेष्ठिन:।।
अथापश्यन् महातेजा: प्रादुर्भूतं कुमारकम्।
कृष्णवर्णं महावीर्यं दीप्यमानं स्वतेजसा।।
कृष्णाम्बर धरोष्णीषं कृष्णयज्ञोपवीतनम्।
कृष्णेन मौलिना युक्तं कृष्णस्रगनुलेपनम्।।
स तं दृष्टवा महात्मानमघोरं घोरविक्रमम्।
ववन्दे देवदेवेशमद्भुतंकृष्णपिंगलम्।।

\- \- \- \-

अघोरं तु ततो ब्रह्मा ब्रह्मरूपं व्यचिन्तयत्।
तथा वैध्यायमानस्य ब्रह्मण: परमेष्ठिन:।।

लिं. पु., पृ. १४

इस पुराण में जब शिव की पूजा का विधान कहा गया तो यह कहा गया कि जिस प्रकार से लिंग की पूजा की जाती है, वही रूप शिव और अघोर की पूजा का भी होगा। यही नहीं, यह भी कहा है कि शिव और लिंग की अपेक्षा अघोर रूप भगवान् की पूजा विशेष रूप से की जानी चाहिए।[1] अघोर रूप भगवान् शिव सिंह के चर्म को अपना वस्त्र बनाकर धारण करने के कारण अघोर स्वरूप वाले हैं। कपालों की माला धारण करते हैं और विच्छुओं के आभूषण पहनते हैं।[2] इस अघोर रूप भगवान् की पूजा का विस्तृत वर्णन करते हुए इस पुराण में यह कहा गया है कि अघोर रूप भगवान् की यह अर्चना लिंग की अर्चना ही है। यह अवश्य है किजो लिंग की अर्चना करता है, वह किसी प्रकार के पाप का भागीदार नहीं होता। इन सभी संकेतों से यह प्रतीत होता है कि रूप भेद से लिंग और अघोर भेद हो सकता है किन्तु शिव, लिंग, महेश्वर और अघोरादि एक ही हैं।[3]

---

१. देवं च तेन मंत्रेण पूजयेत् प्रणवेन च ।
सर्वस्मादधिका पूजा अघोरेशस्य शूलिन: ।।
सामान्यं यजनं सर्वमग्निकार्यं च सव्रत ।
मंत्रभेद: प्रभोस्तस्य अघोरध्यानमेव च ।।
लिं.पु., पृ. १७६

२. सिंहाजिनाम्बरधरमघोरं परमेश्वरम् ।
– – – –
कपालमालाभरणं सर्ववृश्चिकभूषणम् ।।

३. एवं संक्षेपत: प्रोक्तं अघोरार्चनमुत्तमम् ।
अघोरार्चाविधानं च लिंगे वा स्थंडिलेऽपिवो ।।
वही, पृ. १७६

इन सन्दर्भों से प्रतीत यही होता है कि लिंग अपने स्वरूप के कारण लिंग पद से वाच्य है और अघोर रूप अपने स्वरूप से वाच्य है। यह इस पुराण का संकेत भी है। लिंग अपनी स्वरूपावस्थिति से लिंग कहा ही गया है और अघोर स्वरूप का जो वर्णन किया गया है उसमें शिव की जो वाह्याकृति और उनका स्वरूप है, उसी का कथन किया गया है। इसीलिए अघोर रूप में मस्तक पर चन्द्रमा का कथन, सर्पों का धारण किया जाना, त्रिपुण्ड के रूप में चन्द्रमा और तृतीय नेत्र का वर्णन उनके अद्भुत और अघोर रूप का ही आख्यान करते हैं। किन्तु उपासनाऔर उनके महत्त्व के सम्बन्ध में जो कहा गया हैउसमें बाह्य आकृतियों और प्रकृतियों में भेद होने पर भी उनकी अन्तः स्थिति को एक ही बताया गया है और यह स्पष्ट किया गया है कि भगवान् के अघोर रूप की प्रतिष्ठा भी लिंग की प्रतिष्ठा की ही भाँति है और इनकी पूजा में भी कोई भेद नहीं है।[१]

---

१. सर्वं लिंगमयं लोकं सर्वं लिंगे प्रतिष्ठितम् ।

\- - - -लिं.पु., पृ. १८८

प्रतिष्ठा चैव पूजा च लिंगवन्मुनिसत्तमः ।

\- - - -

अघोरेणांगणयुक्तेन विधिवच्च विशेषतः ।
प्रतिष्ठा लिंगविधिना नान्यथा मुनिपुंगवाः ।।
तथाग्निपूजां वै कुर्याद् यथापूजा तथैव च ।
सहस्त्रं वा तदर्धं वा शतमष्टोतरं तु वा ।।

वही, पृ. १९०

शिव तथा उनकी पंचमूर्तियाँ

लिंग पुराण में शिव के स्वरूप का भी व्याख्यान किया गया और उनकेमहत्त्व का कथन किया है। शिव के सामर्थ्य का कथन इस रूप में है जिस रूप में यह कहा गया है कि शिव ही सभी लोकों के संहारक हैं, वे ही सभी लोकों के रक्षक हैं, वे ही सभी लोकों के निर्माता हैं। इन सभी लोकों के उपादान कारण और निमित्त कारण जो भी कहे गए हैं, वे शिव ही कहे गए हैं। शिव की पाँच मूर्तियाँ हैं जो सभी लोकों के लिए शरणदाता के रूप में हैं। शिव की प्रथम मूर्तिक्षेत्रज्ञ मूर्ति है जो समस्त प्रकृति की भोक्ता और स्वयम् योग्य है। उस पुरुष की द्वितीय मूर्ति स्थान मूर्ति है। वही प्रकृति के रूप में जानी जाती है। शिव की तृतीय महत्त्व पूर्ण मूर्ति अघोर मूर्ति है और चतुर्थ मूर्ति वामदेव नाम की है। वह अहंकार रूप होकर सर्वत्र व्याप्त है। शिव की शंभुरूपा पांचवीं मूर्ति सभी शरीरों में अवस्थित है।

---

१. शिवस्य पंचरूपाणि पञ्चब्रह्माह्वयानि ते ।
कथयामियथातत्त्वं यद्मयोनः सुतोत्तम ।।
सर्वलोकैकसंहर्ता सर्वलौकैकरक्षिता ।।
सर्वलोकैक निर्माता पंचब्रह्मात्मकः शिव ।
निमित्तकारणं चाहुः स शिवः पंचधा स्मृतः ।।

\- \- \- \-

क्षेत्रः प्रथमा मूर्तिः शिवस्य परमेष्ठिनः ।
भोक्ता प्रकृतिवर्गस्य भोग्यस्येशानसंज्ञितः ।।

\- \- \- \-

सद्यो जाताह्वया शंभो पंचमी मूर्तिरुच्यते ।
मनस्तत्त्वात्मकत्वेन स्थिता सर्वशरीरिषु ।। लिं. पु., पृ. १६१

भगवान की इन पाँच मूर्तियों के स्वरूप का और जगत में उनकी व्याप्ति का निर्धारण करते हुए पुराण में यह कहा गया है कि जिस प्रकार सम्पूर्ण शरीर में मन तत्त्व रूप में अवस्थित है उसी प्रकार सारी सृष्टि में भगवान शंकर अपने ईशान भाव से तत्त्व रूप में अवस्थित हैं। भगवान् शंकर ही सभी प्राणियों के शरीर में श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा तथा नासिका रूप में अवस्थित हैं। भगवान् शंकर ही पाँचों इन्द्रियों के विषय श्रवण, स्पर्श, दर्शन, आस्वाद तथा घ्राण हैं। उन्हीं की कृपा से इन्द्रियाँ अपने विषयों में प्रवृत्त हो पाती हैं। रूप, रस, गन्ध, शब्द, स्पर्श तथा इनके आधार अग्नि, जल, पृथिवी, आकाश और वायु शंकर के ही स्वरूप हैं। उनकी पाचों मूर्तियाँ पाँच तत्त्वों में कार्यरत होती हैं और सष्टि का प्रर्वतन तथा संचालन करती हैं। कर्मेन्द्रियाँ और इनके विषय हस्त, पाद, वाक्, लिंग, तथा गुदा तथा कार्य करना, चलना, बोलना, मूत्र त्याग करना, पुरीष का उत्सर्ग करना शंकर के ही स्वरूप हैं।[1]

---

१. विश्वम्भरात्मकं देवं सद्यो जातं जगद् गुरुम्।
चराचरैक भर्तारं परं कविवरा विदुः ।।
पंच ब्रह्मात्मकं सर्वं जगत्स्थावरजंगमम् ।
शिवानन्दं तदित्याहुर्मुनयस्तंत्त्वदर्शिनः ।।
पंचविंशति तत्वात्मा प्रपंचे यः प्रदृश्यते ।
पंचब्रह्मात्मकत्वेन स शिवो नान्यतां गतः ।।
पंचविंशति तत्त्वात्मा पंचब्रह्मात्मकः शिवः ।
श्रेयोरर्थिभिरतो नित्यं चिन्तनीयः प्रयत्नतः ।।
लिं. पु., पृ. १६१

शिव की अष्ट मूर्तियाँ

लिंग पुराण की कथा के तारतम्य में एक स्थान पर गणाधिप नन्दीश्वर नेशिव की अष्ट मूर्तियों का वर्णन किया है। इस वर्णन में यह कहा गया है कि भगवान् शिव की प्रथम मूर्ति सर्व है। इस रूप में वे चराचर जगत् के स्रष्टा और भर्ता हैं। इस रूप में विकेशी उनकी पत्नी और अंगारक पुत्र हैं। उनकी द्वितीय मूर्ति भव है। इस रूप में वे सम्पूर्ण लोकों को जीवन प्रदान करते हैं। इस रूप में उमा उनकी पत्नी और शुक्र उनके पुत्र हैं। शिवकी तृतीय मूर्ति वह्नि है। इस रूप में वे ब्रह्माण्ड में व्याप्त होकर शीत, तमादि से लोकों की रक्षा करते हैं।इस रूप में वे पशुपति कहे जाते हैं। इस रूप में उनकी पत्नी स्वाहा और पुत्र षण्मुख हैं। शिव की चतुर्थ मूर्ति का नाम ईशान है। इस रूप में वे पवन बनकर सभी भुवनों में व्याप्त रहते हैं और सम्पूर्ण सृष्टि को जीवन प्रदान करते हैं। इस रूप में उनकी पत्नी शिवा और पुत्र मनोजव हैं।[१]

---

१. वक्ष्यामि ते महेशस्य महिमानमुमापतेः ।
अष्टमूर्तेर्जगद् व्याप्त स्थितस्य परमेष्ठिनः ।।
चराचराणां भूतानां धाता विश्वम्भरात्मकः ।
शर्व इत्युच्यते देवः सर्वशास्त्रार्थपारगैः ।।
विश्वम्भरात्मनस्तस्य सर्वस्य परमेष्ठिनः ।
विकेशी कथ्यते पत्नी तनयोंगारकः स्मृतः ।।
भव इत्युच्यते देवः भगवान्वेदवादिभिः ।
संजीवनस्य लोकानां भवस्य परमात्मनः ।।
– – – –
ईशानस्य जगत् कर्तुर्देवस्य पवनात्मनः । लिं. पु., पृ. १६०

शिव की अन्य मूर्तियों का वर्णन करते हुए इस पुराण में कहा गया है कि शिव की पंचम मूर्ति व्योम स्वरूपा भीम की है। इस रूप में वे संसार के सभी प्राणियों की सभी प्रकार की कामनाओं की पूर्ति करते हैं। अर्थात् शिव के इस रूप से सभी की कामनाओं की पूर्ति होती है। दसो दिशाएँ उनकी पत्नियाँ हैं और संसार उनका पुत्र है।

भगवान शिव की छठवीं मूर्ति सूर्य स्वरूपा रुद्र है। इस रूप में वे भक्तों को मुक्ति और भुक्ति प्रदान करते हैं, सम्पूर्ण संसार के अन्धकार का भी इसी रूप से हरण करते हैं। उनके इस रूप में सुवर्चला उनकी पत्नी और शनैश्चर उनका पुत्र है। शिव की सप्तम् मूर्ति महादेव है। इस रूप में वे संसार में रस और शीतलता का संचार करते हैं। इस स्वरूप में उनकी पत्नी रोहिणी और पुत्र बुधहैं।

शिव जी की अष्टम् मूर्ति उग्र है। इसरूप में वे सम्पूर्ण संसार को नियन्त्रित करते हैं तथा पापियों को दण्ड देते हैं। उनके इस रूप में दीक्षा उनकी पत्नी और सन्तान उनका पुत्र है।[1]

---

१. व्योमात्मा भगवान् देवो भीम इत्युच्यते बुधैः ।
महामाहिम्नो देवस्य भीमस्य गगनात्मनः ।

– – – –

रुद्र इत्युच्यते दैवेर्भगवान् मुक्तिभुक्तिदः ।
सूर्यात्मकस्य रुद्रस्य भक्तानां भयदायिनः ।।

– – – –

सोमात्मको बुधैर्देवो महादेव इति स्मृतः ।
सोमात्मकस्य देवस्य महादेवस्य सूरिभिः ।।

– – – –

मूर्तिरुग्रस्य सा ज्ञेया परमात्मबुभुत्सुभिः ।
लिं. पु., पृ. १६०-१६१

महेश -महिमा

भगवान् शंकर के अनेक नामों में से एक उनका नाम महेश भी है और इसकी महिमा भी इस पुराण में विस्तार से गाई गई है। महेश की महिमा का आख्यान करते हुए यह कहा गया है कि इनका स्वरूप ऐसा है जिसमें न प्रकृति का बन्धन है, न बुद्धि का बन्धन है, न अहंकार का बन्धन है और न ही मन का बन्धन है। महेश में न तो चित्त का बन्धन है। इन्द्रियों में श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, घ्राणादि का बन्धन भी नहीं है। पाद्, पाणि, वाक्, उपस्थादि किसी अन्य इन्द्रिय का बन्धन भी महेश में नहीं है। वे तो नित्य, शुद्ध, बुद्ध और सत्स्वभावी हैं। मुनियों ने भी उनके स्वाभाव को नित्य, शुद्ध, बुद्ध ही कहा है।[1]

---

१. नास्य प्रकृतिबंधोऽभूद् बुद्धिबंधो न कश्चन ।
न चाहंकारबन्धश्च मनो बन्धश्च नोऽभवत् ।।
चित्रबन्धो न तस्याभूच्छोत्रबंधो न चाभवत् ।
नत्वचां चक्षुषां वापि बंधो जज्ञे कदाचन् ।।
\- - - -
जिह्वाबंधो न तस्याभूद्घ्राणबंधो न कश्चन् ।
पाद बंधः पाणिबंधो वाग्बंधश्चैव सुव्रत् ।।
उपस्थेन्द्रियबंधश्च भूततन्मात्रबंधनम् ।
नित्यशुद्धस्वभावेन नित्यबुद्धो निसर्गतः ।।
\- - - -
नित्य मुक्त इति प्रोक्तो मुनिभिस्तत्त्ववेदिभिः ।।
लिं. पु., पृ. १५८

शिव तत्त्व दर्शन

शिव तत्त्व का वर्णन जब इस पुराण में किया गया तो यह कहा गया कि शिव सद्रूप हैं, शिव असद् रूप हैं। शिव सत् पति हैं और शिव असत् पति हैं। व्यक्त जो असत् है और जो अव्यक्त है, वह भी शिव रूप ही है। शिव से भिन्न कुछ भी नहीं है। सत् और असत् से भिन्न और इन दोनों का पति होने से शिव सदसत्पति कहे गए हैं। वे क्षर रूप भी हैं और अक्षर रूप भी हैं। वे क्षर से परे हैं और अक्षर से भी परे हैं। इसलिए शिव अक्षर भी हैं। और शिव क्षर-अक्षर से भिन्न भी हैं, किन्हीं-किन्हीं तत्त्व चिन्तकों ने शिव को महेश्वर कहा है। इसमें से जो अक्षर है, वह अव्यक्त है और जो क्षर है वह व्यक्त कहा जाता है। किन्तु वे दोनों रूप शिव के ही हैं और शिव से भिन्न कुछ भी नहीं है।[1]

---

१. शिवमाहात्म्यमेकाग्र: श्रृणु वक्ष्यामि ते मुने ।
बहुभिर्बहुधा शब्दै: कीर्तितं मुनिसत्तमै: ।।
सदसद्रूपमित्याहु: सदसत्पतिरित्यपि ।
तंशिवं मुनय केचित् प्रवदन्ति च सूरय: ।।
भूतभाव विकारेण द्वितीयेन स उच्यते ।
व्यक्तं तेन विहीनत्वाद् अव्यक्तमसदित्यपि ।।
उभे ते शिवरूपे ते शिवादन्यं न विद्यते ।
तयो: पतित्वाच्च शिव: सदसत्पतिरुच्यते ।।
क्षराक्षरात्मकं प्राहु: क्षराक्षरपरं तथा ।
शिवं महेश्वरं च केचिन्मुनयस्तत्त्व चित्तका: ।।
- - - -
रूपते शंकरस्यैव तस्मान्न पर उच्यते ।।
लिं. पु., पृ. १६१-१६२

पुराणकार लिखते हैं कि इन दोनों से परे शिव के शान्त रूप को विद्वान् क्षर और अक्षर से परे जानते हैं। परमार्थ में इनको ही महादेव और महेश्वर कहा जाता है। जो भी संसार में संमष्टि है, प्रादुर्भूत व्यष्टि है, वह शिव के स्मरण से छूट जाती है। समष्टि और व्यष्टि में समष्टि ही ऐसी है, जो व्यष्टि की कारणभूता है। कुछ आचार्य वे हैं, जो शिव को परम कारण मानते हैं और शिव को ही परब्रह्म के रूप में जानते हैं। संसार में संसार के जिस स्वरूप को कहा गया है, उसमें कारण-कार्यभाव की अविच्छिन्न परम्परा है। इस परम्परा में मूल कारण के रूप में शिव ही हैं क्योंकि शिव से भिन्न कुछ भी नहीं है और शिव से व्यक्तिरिक्त कोई भी कुछ उत्पन्न नहीं कर सकता है। इसलिए शिव ही परम कारण है।[1]

---

१. तयो: पर: शिव: शान्त: क्षराक्षरपरो बुधै: ।
उच्यते परमार्थेन महादेवो महेश्वर: ।।
समस्तव्यक्तरूपं तु तत: स्मृत्वा समुच्यते ।
समष्टिव्यष्टिरूपं तु समष्टिव्यष्टिकारणम् ।।
वदन्ति केचिदाचार्या: शिवं परम कारणम् ।
समष्टिं विदुरव्यक्तं व्यष्टिं व्यक्तं मुनीश्वरा: ।।
रूपे ते गदिते शंभोर्नास्त्यद्वस्तुसंभवम् ।
तयो: कारणभावेन शिवो हि परमेश्वर: ।।
लिं. पु., पृ. १६२
अन्यच्छिवभिन्नं वस्तु संभवं जगत्कारणं नास्ति न विद्यत इत्यर्थ: ।
शि. तो., पृ. १६२

पुराणकार लिखते हैं कि इस सृष्टि में जो भी है, उसके परम कारण शिव ही हैं। शिव से पृथक् कोई भी नहीं है, कुछ भी नहीं है। अन्य कारण के अभाव होने के कारण शिव ही एक मात्र इस जगत् के परम कारण हैं। योग शास्त्र में क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ की चर्चा की गई है। किसी अन्य ने क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ शिव को ही कहा है। परमात्मा परम ज्योति रूप हैं और वही परमेश्वर हैं । प्रकृति, महत् अहंकार, पंचतन्मात्राएं, पंचमहाभूत और एकोदशेन्द्रियाँ सभी क्षेत्र कहे गए हैं। जोक्षेत्रज्ञ है, वह अन सबका भोक्ता है और वही सांख्यादि दर्शन में पुरुष के रूप में कथित है। क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ ये दोनों रूप उसी स्वयम्भुव परमात्मा के ही हैं क्योंकि शिव से भिन्न अन्य कुछ भी नहीं है- ऐसा विद्वान कहते हैं। ब्रह्मरूप शिव ही हैं।[१]

---

१. समष्टिं विदुरव्यक्तं व्यष्टिं व्यक्तं मुनीश्वराः ।
रूपेते गदिते शंभोनस्त्यिन्यद्वस्तुसंभवम् ।।
तयोः कारणभावेन शिवो हि परमेश्वरः ।
उच्यते योगशास्त्रज्ञैः समष्टिव्यष्टिकारणम् ।।
क्षेत्रक्षेत्रज्ञरूपी च शिवः कैश्चिदुदाहृतः ।
परमात्मा परं ज्योतिर्भगवान् परमेश्वरः ।।
चतुर्विंशति तत्त्वानि क्षेत्र शब्देन सूरयः ।
प्राहुः क्षेत्रज्ञशब्देन भोक्तारं पुरुषं तथा ।।
क्षेत्रक्षेत्रविदावेते रूपे तस्य स्वयंभुवः ।
- - - -
न किंचिच्च शिवादन्यदिति प्राहुर्मनीषिणः ।
अपरब्रह्मरूपं तं परं ब्रह्मात्मकं शिवम् ।।
लिं. पु., पृ. १६२

शिव के माहात्म्य का केवल इतना ही स्वरूप इस पुराण में नहीं कहा गया है अपितु यह कहा गया है कि शास्त्रज्ञों ने ब्रह्म और परमब्रह्म की चर्चा भी की है। इन दोनों के रूप में जो अनुभव होता है अथवा जो अनुभव किया जा सकता है वह अन्य और कुछ नहीं है अपितु यह स्वयम्भुव शिव ही है। किन्हीं-किन्हीं विद्वानों ने विद्या और अविद्यारूप दो प्रकार के तत्त्वों का भी निर्देश किया है। इन दोनों रूपों में भी शंकर ही हैं क्योंकि उनसे अतिरिक्त और उनसे भिन्न कोई नहीं है। जो सम्पूर्ण प्रपंच जाल है, वह स्वयंभुव शिव का ही स्वरूप है । इस सृष्टि में जो भ्रान्ति अभ्रान्ति रूपता है,वह भी शिव रूपता ही है। अनेक रूपों में जो जगत् में अर्थ दिखाई देता है और उसमें जो विज्ञान दृष्टि है, वही भ्रान्ति रूपता है। किन्तु शिव विकल्प रहित तत्त्व हैं, इसलिए वे ही शाश्वत और सत्य हैं ।[1]

---

१. अपरब्रह्मरूपं तं परं ब्रह्म चिदात्मकम् ।
ब्रह्मणी ते महेशस्य शिवस्यास्य स्वयंभुवः ।।
\- - - -
विद्याविद्यास्वरूपी च शंकरः कैश्चिदुच्यते ।
धाताविधाता लोकानामादिदेवो महेश्वरः ।।
\- - - -
प्रपंचजातुमखिलं ते स्वरूपे स्वयंभुवः ।
भ्रान्तिविद्यापरं चेति शिवरूपमनुत्तमम् ।।
\- - - -
अर्थेषु बहुरूपेषु विज्ञानं भ्रान्तिरुच्यते ।
\- - - -
विकल्परहितं तत्त्वं परमित्यभिधीयते ।।
लिं. पु., पृ. १६२

शिव के स्वरूप का कथन जिस प्रकार अनेक तरह से कहा गया है, उसी तरह से शिव के अनेक नामों का कथन भी किया गया है। मुनीश्वरों ने शिव को क्षेत्रज्ञ, प्रकृति,व्यक्त, काल, आत्मा कहा है। किन्हीं आचार्यों ने यह कहा है कि शिव रागार्णव से पार ले जाने वाले हैं। वे क्षेत्रज्ञ हैं, पुरुष हैं, प्रधान हैं, प्रकृति हैं। जो समस्त विकार जात हैं, वे सभी शिव स्वरूप हैं। प्रधान, व्यक्त, काल और परिणाम का एक ही हेतु है। ये चारों रूप ईश्वर के ही हैं। इनसे पृथक् कोई नहीं हैं। कुछ अन्य आचार्य शिव के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए यह कहते हैं कि हिरण्य गर्भ, प्रधान,पुरुष सभी एक हैं। ये सभी शिव स्वरूप ही हैं। इनका अन्य कोई रूप नहीं है। हिरण्यगर्भ कर्ता है, वही भोक्ता है, वही पुरुष है, वही समस्त विकार जात व्यक्त और प्रधान तथा कारण भी है।[1]

---

१. क्षेत्रज्ञः प्रकृतिर्व्यक्तं कालात्मेति मुनीश्वरैः ।
उच्यते कैश्चिदाचार्यैः रागमार्णवपारगैः ।।
क्षेत्रज्ञं पुरुषं प्राहुः प्रधानं प्रकृतिं बुधाः ।
विकारजातं निःशेषं प्रकृतेर्व्यक्तमित्यपि ।।
प्रधानव्यक्तयोः कालः परिणामैककारणम् ।
तच्चतुष्टयमीशस्य रूपाणां हि चतुष्टयम् ।।
हिरण्यगर्भं पुरुषं प्रधानं व्यक्तरूपिणम् ।
कथयन्ति शिवं केचिदाचार्याः परमेश्वरम् ।।
लिं. पु., पृ. १६२

शिव – शिवा में अभेदरूपता

शिव और लिंग में अभेदरूपता की सिद्धि करने के बाद शिव के अभेद स्वरूप का कथन भी लिंग पुराण में किया गया है। वहाँ पर कहा गया है कि जो शिव हैं, वही शिवा है। केवल कथन मात्र में भेद है और व्यावहारिक रूप से इन दोनों में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। शिव और शिवा के इसी अभेद रूप का कथन करते हुए यह कहा गया है कि शिव परमात्मा रूप से कथित हैं तो शिवा भी वही हैं। शिव को विद्वान् परमेश्वर कहते हैं तो माया गौरी रूप में हैं। पुरुष शिव हैं, प्रकृति शिवा हैं। शिव अर्थ हैं तो शिवा वाणी है। शिव दिवस हैं और शिवा रात्रि रूपा हैं। शंकर आकाश स्वरूप हैं और शिवा पृथिवी स्वरूपा हैं। भगवान् शिव समुद्र हैं और उस समुद्र को सीमायित करने वाली शिवा बेला हैं। शूलपाणि शिव वृक्ष हैं तो उन वृक्षों का आश्रय लेने वाली शिवा लता रूप हैं।[१]

---

१. परमात्मा शिवः प्रोक्ता शिवा सा च परिकीर्तिता।
शिवमेवेश्वरं प्राहुमायां गौरी विदुषर्बुधः ।।
पुरूषं शंकरं प्राहुः गौरी च प्रकृतिं द्विजाः।
अर्थः शंभुः शिवा वाणी दिवसोऽजः शिवा निशाः।।
आकाशं शंकरो देवः पृथिवी शंकरप्रिया ।
समुद्रो भगवान् रुद्रो वेला शैलेन्द्रकन्यका ।
वृक्षः शूलायुधो देवः शूलपाणिप्रियालता ।
लिं., पु., पृ. १५८

इसी प्रकार से यह कहा गया है कि ब्रह्मा, विष्णु और हर रूप में शिव हैं जबकि वे सावित्री, लक्ष्मी और महेश्वरी भवानी रूप में वे अर्धशरीरी हैं। वज्रपाणि अर्थात् इन्द्र रूप में भगवान शिव हैं और शची रूप में शैलेन्द्र कन्या हैं। अग्नि रूप शिव हैं और स्वाहा रूप शिवा हैं। इसी प्रकार से यह पुराण अन्य रूपों में भी शिव को देखता हैं और उनकी शक्तियों को शिवा के रूप में कहता है। जैसे सृष्टि के आदि रूप मनु भगवान शिव हैं और शतरूपा स्वरूप शिवा हैं। मरीचि भगवान रुद्र हैं और उनकी पत्नी संभूति शिवा हैं। अत्रि रूप में भगवान् शिव स्वयम् हैं और अनुसूया रूप में शिवा हैं। अन्त में यहाँ तक कह दिया गया है कि संसार के सभी पुरुष शंकर रूप हैं और जितनी भी स्त्रियाँ हैं वे सभी शिवा रूप हैं।[1]

---

१. ब्रह्मा हरोपि सावित्री शंकरार्धशरीरिणी।
विष्णु महिश्वरो लक्ष्मीर्भवानी परमेश्वरी।।
वज्रपाणिर्महादेव: शची शैलेन्द्रकन्यका।
जातवेद: स्वयम् रुद्र: स्वाहा शर्वार्धकायिनी।।

— — — —

शंकर: पुरूषा: सर्वे स्त्रिय: सर्वा महेश्वरी।
पुंलिंगशब्दवाच्या ये ते च रुद्रा: प्रकीर्तिता:।
स्त्रीलिंगशब्दवाच्या या: सर्वा गौर्या विभूतय:।।
सर्वे स्त्रीपुरूषा: प्रोक्तास्तयोरेव विभूतय:।
पदार्थशक्तयस्तयो गौरीति विदुर्बुधा:।।

लिं. पु., पृ. १५९

शिव और लिंग का भेदाभेद

लिंग पुराण में जो भी वर्णन किया गया है और जिस रूप में भी शिव तत्त्वका माहात्म्य कहा गया है उसमें कोई न कोई कथा अवश्य जुड़ी हुई है। लिंग और शिव के स्वरूप में क्या साम्य है और क्या वैषम्य है, इसे देखने के लिए भी एक कथा का आश्रय लेना उचित होगा। एक बार ब्रह्मा जी ने ऋषियों को श्वेत मुनि की कथा सुनायी थी जिसमें यह कहा गया था कि पर्वत की गुफा में अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले श्वेत मुनि ने अपना सारा जीवन भगवान शंकर की पूजा में लगा दिया था। वे निरन्तर शिव स्तोत्रों का पाठ करते थे। एक बार जब वे शिवपूजन कर रहे थे तो यमराज उनको लेने आया और उन्होनें यह विचार किया कि शंकर की उपासना करते हुए काल मेरा क्या कर सकता है। मैं तो उस काल के काल का शरणागत हूँ। श्वेत ने यही उस काल से भी कहा। यह सुनकर काल ने कहा कि ऋषि! मैं काल हूँ। मैं जिस पर हाथ डालता हूँ उसे ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि कोई भी नहीं बचा सकता। इसलिए आप मेरे साथ चलने के लिए तैयार हो जावें क्योंकि आप का समय पूरा हो गया हैं।[1]

---

१. श्वेतो नाम मुनिः श्रीमान् गतायुर्गिरिगह्वरे।
सक्तोह्यभ्यर्च्ययद्भक्त्या तुष्टाव च महेश्वरम्।।

\- - - - -

ततः कालो महातेजाः कालप्राप्तं द्विजोत्तम्।
नेतुं संचिन्त्य विप्रेन्द्राः सानिध्यमकरोन्मुनेः।।

\- - - - -

किं करिष्यति मे मृत्युर्मृत्योर्मृत्युरहं यतः।
तं दृष्टवा सस्मितं प्राह श्वेतं लोकभयंकरः।।

\- - - - -

यस्माद् गतायुस्त्वं तस्मान्मुने नेतुमिहोद्यतः।। लिं. पु., पृ. ३०

काल की यह बात सुनकर भय से भयभीत मुनि रोने लगे और कहने लगे कि हे शिव, हे रुद्र! मेरी रक्षा करो। वे काल से बोले, प्रभो! क्या आपका भी कोई स्वामी है अथवा नहीं है? यदि है तो वह कौन है। मैं तो यह जानता हूँ और यही मेरा विश्वास है कि आपके भी नियन्ता भगवान् शंकर हैं और वे ही इस लिंग में विराजमान हैं। वे ऐसे समर्थ हैं कि उनकी इच्छा के बिना उनके भक्त को कोई भी ले नहीं जा सकता। इसलिए काल तुम यहाँ से चले जाओ।

महर्षि व्यास यह लिखते हैं कि इसके बाद काल को क्रोध आ गया और उसने अपने मृत्यु पाश से श्वेत मुनि को बाँधते हुए कहा कि अब तुम अपने शिव को बुलाओ। देखो, वे कैसे तुम्हें बचाते हैं। इस लिंग में जो शिव हैं, वे तो जड़ हैं। ब्रह्मा जी ने कहा कि काल के इन वचनों को सुनकर शिव प्रकट हुए और काल की ओर जैसे ही वे लपके, काल भाग गया और श्वेत मुनि ने शिव की प्रार्थना की।[1]

---

१. त्वया किं काल नो नाथश्चास्ति चेद्धि वृषभध्वजः।
लिंगेऽस्मिन् शंकरो रुद्रः सर्वदेवभवोद्भवः।।

\- - - - -

मया बद्धोऽसि विप्रर्षे श्वेतं नेतुं यमालयम्।
अथ वै देवदेवेन तव रुद्रेण किं कृतम्।।

\- - - - -

क्व शर्वश्च भक्तिस्तव क्व पूजा पूजया फलम्।
क्व चाहं क्व च मे भीतिः श्वेत बद्धोसि वैमया।।

\- - - - -

ततः सदाशिवः स्वयं द्विजं निहंतुमागतम्।

\- - - - -

भुक्तिदं मुक्तिदं चैव सर्वेषामपि शंकरम्।। लिं. पु., पृ. ३१

लिंग का वर्णन करते समय और शिव के माहात्म्य का कथन करते समय लगभग एक जैसे भाव इस पुराण में व्यक्त किए गए हैं । जैसे कि महेश्वर अथवा शिव के माहात्म्य को विस्तार देते हुए कहा गया है कि सर्ग, प्रति सर्ग के कर्ता महेश्वर हैं और वह उसी में अवस्थित हैं। जब वह सर्ग में प्रवृत्त होता है तो वह रजोगुण में होता है, जब वह सत्वगुण युक्त होता है तो सृष्टि के प्रतिपालन में व्यस्त होता है। जब वह तम में अनुरक्त होता है तो वह प्रति सर्ग में प्रवृत्त होता है। वह समस्त प्राणियों को आदिकार्ता है, प्रतिपालक है और संहारक है। वह महेश्वर, अधिपति और शिव है।[1] इसका अभिप्राय यही है कि सृष्टि के मूल में वही है और इस सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय में भी वही हेतु है। वही शिव है, महेश है, लिंग है और महादेव है।

---

१. सर्गस्य प्रतिसर्गस्य स्थितेः कर्ता महेश्वरः ।
सर्गे च रजसा युक्तः सत्वस्थः प्रतिपालने ।
प्रतिसर्गे तमोद्रिक्तः स एव त्रिविधः क्रमात् ।
आदिकर्ता च भूतानां संहर्ता प्रतिपालकः ।
तस्मान् महेश्वरो देवो ब्रह्मणोधिपतिः शिवः ।।

_ _ _ _

दिवा सृष्टिं विकुरुते रजन्यां प्रलयं विभुः ।
औपचारिकमस्यैतदहोरात्रं न विद्यते ।।
दिवा विकृतयः सर्वे विकारा विश्वदेवताः ।
प्रजानां पतयः सर्वे तिष्ठन्त्यन्ये महर्षयः ।।
रात्रौ सर्वे प्रलीयन्ते निशांते सम्भवन्ति च ।
अहस्तुतस्य वैकल्यो रात्रिस्तादृग् विधास्मृता ।। लिं. पु.,पृ.४

एक स्थान पर भगवान शिव और भगवान् लिंग की एकता का स्वरूप इसप्रकार वर्णित किया गया है कि जो आनन्द रूप लिंग है वही अक्षर स्वरूप शिव हैंवह निष्कल है, सर्वत्र गम्य है, योगियों के हृदय में सन्निविष्ट है।[1]

इसकी महिमा का स्वरूप ऐसा है जिसमें द्यौ इसकी मूर्धा, आकाशनाभि, सोम और सूर्य अग्निऔर नेत्र, दिशायें, श्रोत्र, चरण पाताल और समुद्र अम्बर हैं। सभी देवता उसकी भुजाऐं हैं और नक्षत्र भूषण हैं। प्रकृति पत्नी है और पुरुष को लिंग कहा गया है। इन्द्र तथा उपेन्द्र उसकी भुजायें हैं। वैश्य उसके उरु, शूद्र पैर हैं। वह पुरुष ज्ञानगम्य है।[2]

---

१. परानंदात्मकं लिंग विशुद्धं शिवमक्षरम् ।
निष्कलं सर्वगं ज्ञेयं योगिनां हृदि संस्थितम् ।।
लिं. पु., पृ. ८९

२. द्यौर्मूर्धा तु विभोस्तस्य खं नाभिः परमेष्ठिनः ।
सोमसूर्याग्नयो नेत्रं दिशः श्रोत्रं महात्मनः ।।
चरणौ चैव पातालं समुद्रस्तस्य वराम्बरं ।।
देवास्तस्यं भुजाः सर्वे नक्षत्राणि च भूषणम् ।
प्रकृतिस्तस्य पत्नी च पुरुषो लिंगमुच्यते ।।
\- \- \- \-
वक्राद् वै ब्राह्मणाः सर्वे ब्रह्मा च भगवान् प्रभुः ।
इन्द्रोपेंद्रौ भुजाभ्यां तु क्षत्रियाश्च महात्मनः ।
वैश्याश्चोरुप्रदेशस्तु शूद्राः पादात् पिनाकिनः ।।
पुष्कारावर्तकाद्यास्तु केशास्तस्य प्रकीर्तिताः ।
वाययो घ्राणजातस्य गतिः श्रौत्रं स्मृतिस्तथा ।।
वही, पृ. ८९

लिंग पुराण में लिंग और शिव की एकात्मता के साथ-साथ जहाँ शिव को सृष्टि का मूल और सर्वत्र व्यापक माना गया है, वही लिंग के भी दो स्वरूपों को व्यक्त किया गया है। कहा गया है कि लिंग के दो भेद हैं। एक इसका वाह्य रूप है और दूसरा इसका आन्तरिक रूप है। वाह्य रूप स्थूल है और आन्तरिक स्वरूप सूक्ष्म है। जो कर्म में रत हैं और यज्ञादि के द्वारा अपने कल्याण की कामना में लगे रहते हैं, वे लिंग के स्थूल रूप की उपासना करते हैं। जो आध्यात्मिक लिंग का स्वरूप है, और जो स्थूलेन्द्रियों से प्रत्यक्ष नहीं होता है, वह ज्ञानियों के द्वारा धारण करने योग्य है। तत्त्ववादी उसके अर्थ का विचार करते हैं और यह निरूपित करते हैं कि उसका स्थूल रूप में कोई अर्थ नहीं है।[1] ऐसा लिंग निष्कल, सर्वत्र व्याप्त, शिव स्वरूप है।[2]

---

१. लिंगं तु द्विविधं प्राहुः वाह्यमाभ्यान्तरं द्विजाः ।
वाह्यं स्थूलं मुनिश्रेष्ठाः सूक्ष्ममाभ्यन्तरं द्विजाः ।।
कर्मयज्ञरताः स्थूलाः स्थूललिंगार्चने रताः ।
असतां भावनार्थाय नान्यथा स्थूलविग्रहः ।।
आध्यात्मिकं च यल्लिगं प्रत्यक्षं यत् नो भवेत् ।
असौ मूढो वहिः सर्वं कल्पयित्वैव नान्यथा ।।
यथा स्थूलमयुक्तानां मृत्काष्ठाद्यैः प्रकल्पितम् ।
अर्थो विचारतो नास्तीत्यन्ये तत्वार्थवेदिनः ।
- लिं. पु., पृ. ९०

२. निष्कलः सकलश्चेति सर्वं शिवमयं ततः ।
वही, पृ. ९०

यद्यपि शिव और लिंग में कोई स्पष्ट और विशेष भेद नहीं है तथापि इन दोनों को पृथक्-पृथक् रूप में स्मरण किया गया है। शिव पुराण में तो शिव की महिमा का कथन है, लिंग पुराण में भी शिव के वैशिष्ट्य का कथन किया गया है। एक स्थान पर शिव की महिमा का आख्यान करते हुए यह कहा गया है कि वह जीवन की बहुत बड़ी हानि है, वह बहुत बड़ा छिद्र है और वह बहुत बड़ा मोह है, जब भगवान् शिव का चिन्तन नहीं किया गया। धन की प्राप्ति अथवा आत्म संतुष्टि के लिए जो भी इच्छा हो, यदि कोई उसे चाहता है तो वह शिव की संतुष्टि से प्राप्त कर सकता है। जो बहुत बड़े भोग की आकांक्षा करते हैं अथवा जो राज्यादि की कामना करते हैं, वे शिव को संतुष्ट करके यह प्राप्त कर सकते हैं। यदि कोई हत्या कर देता है किसी का भेदन करता है, किसी को जला देता है अथवा सम्पूर्ण जगत को भस्मसात भी कर देता है, तब भी वह पाप का भागीदार नहीं बनता यदि वह शिव की उपासना करता है।[1]

---

१. सा हानिस्तन्महाच्छिद्रं स मोहः सा च मूकता ।
यत्क्षणं वा मुहूर्तं वा शिवमेके न चिन्तयेत् ।।

\- - - - -

धनं वा तुष्टिपर्यन्तं शिवपूजाविधेः फलम् ।
ये वाञ्छन्ति महाभोगान् राज्यं च त्रिदशालये ।।

\- - - - -

हत्वा भित्वा च भूतानि दग्ध्वा सर्वमिदं जगत् ।
यजेदेकं विरूपाक्षं न पापैः सः प्रलिप्यते ।।

लिं. पु., पृ. ८८

शिव और लिंग के अभेद के कथन में लिंग पुराण के वे सन्दर्भ दिए जा सकते हैं जिनमें यह कहा गया है कि जिस प्रकार से शिव की अर्चना से सब कुछप्राप्त किया जा सकता है, उसी प्रकार से लिंग की उपासना से भी व्यक्ति अपने मनोभिलाषों की पूर्ति कर सकता है। लिंगपूजा के इस तत्त्व को और लिंग के वैशिष्ट्य को भी उन्हीं शब्दों मेंकहा गया है कि जो जीवन में महाभोग और राज्यादि की कामना करते हैं, वे लिंग की पूजा करके यह प्राप्त कर सकते हैं। शिव का स्वरूप और शिव का लिंग इस रूप में अभिन्न कहा गया है कि शैलीय लिंग मेरा ही स्वरूप है और यह सभी देवताओं के लिए नमस्कार योग्य है।[1]

इसी प्रकार से एक अन्य स्थान पर लिंग और शिव के अभिन्नत्व को सिद्ध करते हुए यह कहा गया है कि परम आनन्द का स्वरूप लिंग विशुद्ध रूप से शिव स्वरूप ही है, वही अक्षर रूप भी है। वह निष्कल, सर्वत्र गमन करने वाला और योगियों के हृदय में स्थित रहने वाला है। और इस रूप में शिव तथा लिंग में किसी प्रकार का भेद नहीं है। जो शिव है, वही लिंग है और जो लिंग है, वही शिव है।[2]

---

१. ये वांछन्ति महाभोगान् राज्यं च त्रिदशालये ।
तेर्चयन्तु सदाकालं लिंगमूर्तिं महेश्वरम् ।।
लिं. पु., पृ. ८८

२. परानन्दात्मकं लिंगं विशुद्धं शिवमक्षरम् ।
निष्कलं सर्वगं ज्ञेयं योगिनां हृदि संस्मितम् ।।
वही, पृ. ८९

त्र्यम्बक की अवधारणा

लिंग पुराण में शिव के त्रियंबक स्वरूप की भी अवधारणा को स्पष्ट किया गया है। वहाँ पर यह कहा गया है कि यह अकार, उकार, मकार-तीनों का वाचक स्वरूप है। इसी प्रकार से त्र्यम्बक सोम, सूर्य, अग्नि की त्रिपुटी का भी वाचक है।[1] क्योंकि अम्बक शब्द का शाब्दिक पर्याय पिता है।[2] इसलिए त्रियम्बक का अर्थ करते हुए भगवान् शिव को इनका पिता कहा जा सकता है। इसी प्रकार से अम्बा, उमा, महादेव के 'अम्बक' होने से भी ये त्रियम्बक हैं।[3] त्रियम्बक की पूजा पद्धति में जो मन्त्र हैं, उसकी व्याख्या में यह पुराण यह कह सकता है कि जैसे पुष्प की गन्ध सुगन्धित होती है उसी तरह त्रियम्बक सुगन्धित हैं।[4] इसी प्रकार से पंच महाभूत, अहंकार, बुद्धि, प्रकृति के पुष्टि बीज होने के कारण ये पुष्टि वर्धन है। मृत्युके बंधन से मुक्त करने वाले और पके हुए फल के समान उसकी गाँठ से छुड़ाने वाले हैं।[5]

---

१. अकारोकारमकाराणां मात्राणामपि वाचकः ।

– – – –

तथा सोमस्य सूर्यस्य वह्वेरग्नित्रयस्य च ।। लिं. पु., पृ. १९३

२. सं. श. कौ., पृ. १२१

३. अम्बा उमा महादेवो ह्यंबकस्तु त्रियंबकः । लिं. पु., पृ. १९३

४. सुपुष्पितस्य वृक्षस्य यथा गन्धः सुशोभनः ।
वातिदूरात् तथा तस्य गंध शंभोर्महात्मनः ।। वही, पृ. १९३

५. पुष्टिर्बीजस्य तस्यैव तस्माद् वै पुष्टिवर्धनः ।

– – – –

तथैव कालः सम्प्राप्तो मनुना तेन यत्नतः । वही, पृ. १९३

भगवान् त्रियंबक को भी पुराणकार लिंग के रूप में ही मानते हैं और इसीलिए त्रियंबक के स्वरूप का विवरण प्रस्तुत करने के बाद वे लिखते हैं कि त्र्यम्बक के मन्त्र की विधि जानकर शिव लिंग की अर्चना करें। इनकी सामर्थ्य ऐसी है जिससे जीव बन्धन मुक्त हो जाता है। त्रियंबक के समान कोई देवता नहीं है। यह देवता प्रसन्नता देने वाला, शीलवान और सुव्रती है। इसलिए सब कुछ छोड़कर त्रियंबक की उपासना करनी चाहिए।[१]

भगवान् शिव के त्रियंबक स्वरूप की पूजा करने के लिए यह कहा गया है कि त्रियंबक की पूजा त्रियंबक मन्त्र के द्वारा की जानी चाहिए। हजार कमलों के द्वारा, नील कमलों से और पायस, घृत तथा ओदनादि से त्रियंबक पूजा करें। जो विधि पूर्वक त्रियंबक के मन्त्र का जाप करता है और विधि पूर्वक त्रियंबक की अर्चना करता है वह सात जन्मों तक के किए हुए पापों से मुक्त हो जाता है। त्रियंबक सदृश मन्त्र लोक और वेद में कहीं देखा नहीं गया है इसलिए नित्य प्रति इस देवता की पूजा करनी चाहिए।[२]

---

१. एवं मन्त्रविधिं ज्ञात्वा शिवलिंगं समर्थयेत् ।
   तस्य पाशक्षयेऽतीव योगिनो मृत्युनिग्रहः ।।
   त्रियंबकसमो नास्ति देवो वा घ्रणयान्चितः ।
   प्रसादशीलः प्रीतश्च तथा मन्त्रोपि सुव्रताः ।।
   तस्मात् सर्वं परित्यज्य त्रियंबकममुमापतिम् ।
   त्रियंबकेण मन्त्रेण पूजयेत्सुसमाहितः ।। लिं. पु., पृ. १९४

२. त्रियंबक मन्त्रेण देवदेवं त्रियंबकम् ।
   पूजयेद् वाणलिंगे वा स्वयम्भूतोपि वा पुनः ।
   – – – – –
   नानेन सदृशो मन्त्रो लोके वेदे च सुव्रताः ।
   तस्मात् त्रियंबकं देवं तेन नित्यं प्रयूजयेत् ।। वही, पृ. १९३

लिंग का दार्शनिक स्वरूप

लिंग पुराण में भगवान् शंकर के विविध नामों और रूपों की महिमा का विस्तार से वर्णन किया गया है। इसके अनुसन्धानात्मक अध्ययन से यह प्रतीत होता है कि इसमें रुद्र, शिव, ईश्वर, महेश्वर, त्रियंबक और लिंग आदि के रूप तथा नाम में कोई बड़ा भेद नहीं है। जो भी भेद बाहरी रूप से दिखाई भी देता है, वह केवल कथा मात्र के लिए है और ईश्वर के किसी रूप में भक्त की आस्था हो जाए, इसके लिए है।

इस पुराण में इसीलिए एक साथ सभी नामों को जहाँ जैसी इच्छा पुराणकार की हुई, वहाँ उस रूप में कह दिया गया है। फिर भी हम यह देख सकते हैं कि शिव, रुद्र, लिंग, महेश्वर, त्रियंबक का जो रूप में सर्वत्र व्यापक रूप में कहा गया है, वह एक ऐसे विशिष्ट तत्त्व के रूप में कहा गया है जो जगत् का सर्जक है, जगत् में व्याप्त है और इस जगत् में वही एक ऐसा है जो सर्वोपरि है। इस रूप में पुराणकार जो कहते हैं उसके अनुसार वे सत् रूप भी हैं। और असत् रूप भी हैं। वे सदसद् से भिन्न हैं। वे व्यक्त भी हैं, अव्यक्त भी हैं और व्यक्ताव्यक्त से भिन्न भी हैं। वे जगत् के कर्ता, भर्ता और हर्ता होने के कारण व्यक्त हैं। जगत् के सभी पदार्थों में व्यापक होने के कारण अदृश्यता से अव्यक्त भी हैं तथा दोनों रूप में होने के कारण व्यक्ताव्यक्त रूप भी हैं।[1]

---

१. लिं. पु.(हि.), पृ. १४१-१४२

शिव के सन्दर्भ में एक आचार्य का यह भी मत है कि वे क्षर हैं और अक्षर भी हैं। वे क्षर और अक्षर रूप से परे भी हैं। वे व्यक्त होने से क्षर हैं और अव्यक्त होने से अक्षर हैं। किन्तु व्यक्ताव्यक्त उपराम होने से वे क्षराक्षर अतीत हैं। वे व्यष्टि और समष्टि के आदि कारण हैं। व्यक्ति उनका व्यक्तरूप है जबकि समष्टि उनका अव्यक्त रूप है। इन्हीं दोनों रूपों से उन्हें व्यक्ताव्यक्त और व्यष्टि तथा समष्टि रूप कहा जाता है । इसी प्रकार से मनीषी उन्हें क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ के रूप में भी व्याख्यात करते हैं। क्षेत्र के अन्तर्गत जगत् के चौबीस तत्त्व हैं और क्षेत्रज्ञ भोक्ता रूप शिव हैं। वे ही भोग्य रूप में पदार्थ हैं और वही भोक्ता के रूप में शिव हैं। वे अनादि निधन अर्थात् जन्म-मृत्यु से परे और मुक्त स्वभावी हैं। वे पंचभूत, पंचेन्द्रिय रूप, अन्तःकरण रूप तथा पंच विषय स्वरूप हैं। वे विद्यात्मक रूप भी हैं और वे ही अविद्यात्मक रूप भी हैं। विद्वानों की दृष्टि से अविद्या रूप प्रपंच भी शिव ही हैं। विद्या भगवान का उत्तम स्वरूप है और अविद्या उनका मायात्मक स्वरूप है। एक ही तत्त्व की जो पृथक्-पृथक् रूप में भ्रान्ति प्रतीति है वही अविद्या है और इनके अन्दर अनुस्यूत जो तात्विक तत्त्व है इसका अवबोध विद्या है।[१]

---

१. लिं. पु., (हि.), पृ. १४२

मुनीश्वरों ने भगवान् शंकर के जिन रूपों का कथन किया है उनमें किसी में यह कहा है कि वे स्वयं ज्योति, स्वयंवेघ, शिव, शम्भु, महेश्वरादि हैं। वे प्राज्ञ, तैजस और विश्वरूप से सुषुप्ति, स्वप्न और जाग्रत अवस्थाओं से परे हैं। वे जगत की सृष्टि, स्थिति और संहृति के लिए ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र का रूप धारण करते हैं। वे कर्ता भी हैं, क्रिया भी हैं, करण भी हैं और कार्य भी हैं। जिस तरह से समुद्र में भिन्न भिन्न प्रकार की लहरें उत्पन्न होती हैं और उसी में समा जाती हैं उसी तरह से इसी रूप में शिव में ही सृष्टि उत्पन्न होती है, धारण होती है और विलीन हो जाती है। जिस तरह से समुद्र में उठी हुई लहरें और इसका जल भिन्न नहीं है, उसी तरह से शिव में उत्पन्न सृष्टि, स्थिति और लय भी शिव से भिन्न नहीं है। सभी कुछ जो भी है, वह सभी शिव रूप ही है।

माया, विद्या, क्रिया शक्ति और ज्ञान शक्ति उसी प्रकार शंकर से प्रकट होते हैं जिस प्रकार से सूर्य से विविध प्रकार की रश्मियाँ प्रकट होती हैं। इसीलिए विविध आचार्य और विद्वान यह कहते हैं कि शिव ही ध्येय हैं, शिव ही गेय हैं और वे ही परमोद्देश्य हैं। उनसे भिन्न न कोई गेय है, उनसे इतर न कोई ध्येय है और उनसे इतर कोई उद्देश्य भी नहीं है। यही कारण है कि सभी उनका भजन, स्मरण, अर्चन और पूजन करने का विधान करते हैं और सभी उनका वन्दन करते है।[1]

---

१. लिं. पु. (हि.), पृ. १४३

लिंग पुराण में यह चर्चा की गई है जिसमें यह कहा गया है कि भगवान् शिव ने स्वयम् ही यह कहा है कि मैं पुरातन पुरुष हूँ, तुम्हारी सत्ता से पूर्व मैं था, इस समय भी मैं हूँ और तुम्हारे लोप हो जाने के बाद मैं रहूँगा। मेरे अतिरिक्त न कुछ है, न कुछ था और न कुछ रहेगा। मैं ही नित्य, अनित्य, अनघ, ब्रह्मा, दिशा, विदिशा, प्रकृति, पुरुष, त्रिष्टुप, जगती, अनुष्टुप आदि हूँ। मैं ही सत्य, सर्वग, शान्ति, अग्नि, गौरव, गुरु, गौ तथा गह्वर हूँ। मैं ही सभी तत्त्वों में ज्येष्ठ और जलों में वरिष्ठ हूँ। मैं ही चतुर्वेद, इतिहास, पुराण, कल्प तथा कल्पना हूँ। मैं क्षर, अक्षर, शान्ति, अशान्ति और क्षमा हूँ। सभी गुह्यों में मैं ही गुह्य हूँ। मैं ही वरेण्य, अज, पुष्कर, अन्तर्वाह्य व्याप्त ज्योति, अन्धकार, प्रकाश, ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, बुद्धि, अहंकार, तन्मात्रा, इन्द्रिय आदि हूँ।[1]

---

१. नित्योऽनित्योऽहमनघो ब्रह्माहं ब्रह्मणस्पतिः।
दिशश्च विदिशश्चाहं प्रकृतिश्च पुमानहम्।।

गौरहं गौह्वरश्चाहं नित्यं गहनगोचरः।
ज्येष्ठोऽहं सर्वतत्त्वानां वरिष्ठोऽ हमपां पतिः।।

ऋग्वेदोहं यजुर्वेदः सामवेदोऽहमात्मभूः।
अथर्वणोहं मन्त्रोहं तथा चांगिरसां वरः।।

अक्षरं च क्षरं चाहं क्षान्तिः शान्तिरहं क्षमा।
गुह्योहं सर्ववेदेषु वरेण्योहमजोऽप्यहम्।।
पुष्करं च पवित्रं च मध्यं चाहं ततः परम्।
वहिश्चाहं ततः चान्तः पुरस्तादहमव्ययः।।

लिं. पु., पृ. १६३

भगवान् शिव की विश्वमयता का स्वरूप वर्णन करते हुए इस पुराण में यह उपमा दी गई है कि जिस प्रकार स्वर्ण रेखा से सभी आभूषण बनते हैं और सभी नष्ट होने पर उसी में विलीन हो जाते हैं उसी प्रकार शिव तत्त्व ही सर्वत्र हैं। पूरा संसार उसी से बनता है और जब सृष्टि का प्रलय होता है तो पूरा संसार उसी में विलीन हो जाता है। शिव से अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। यह पुराण कहता है कि जिस प्रकार मृत्तिका और कुम्भ में अभेद है उसी तरह से शिव और संसार द्रव्यों में अभेद है किन्तु जिस प्रकार मृत्तिका से कुम्भ उत्पन्न होता है, उसी तरह से शिव से यह जगत बनता है। जैसे मृत्तिका के बिना कुम्भ की स्थिति नहीं है, उसी तरह शिव के बिना जगत की स्थिति नहीं है।

सूर्य किरणों का जनक है किन्तु सूर्य और किरणों में किसी प्रकार का भेद नहीं किया जा सकता है। जो सूर्य है, वही किरण हैं, जो किरण है, वही सूर्य है। इन दोनों में जो भी भेद प्रकट रूप में दिखता है, वह केवल वाह्य रूप में है। अन्तस् में सूर्य और किरण में कोई भेद नहीं है। यही शिव स्वरूप और जगत के पदार्थों में ऐक्य तथा अन्तर है।[1]

---

१. तानि तस्माद्धन्मानि सुवर्णकटकादिवत् ।
सदा शिवेश्वराद्यानि तत्त्वानि शिवतत्त्वतः ।।
जातानि न तदन्यानि मृद् द्रव्यं कुंभभेदवत् ।
माया विद्या क्रियाशाक्तिर्ज्ञानशक्तिः क्रियामयी ।।
जाता शिवान्न सन्देहः किरणा इव सूर्यतः ।
सर्वात्मकं शिवं देवं सर्वाश्रयविधायिनम् ।।
लिं. पु., पृ. १६२-१६३

शिव को सर्वत्र व्यापक रूप में कहकर उन्हें ही महेश, महेश्वर, लिंगादि के साथ ओंकार स्वरूप भी कहा गया है। इस संसार में अकार, मकार और उकार को ही शिव रूप में व्याख्यात किया गया है। यही परब्रह्म है, यही ईश्वर और ईशान है, यही सर्वत्र व्याप्त होकर प्रतिष्ठित है। यही सूक्ष्म रूप में होकर सभी शरीरों में निवास करता है। इसीलिए भगवान् नीललोहित को सूक्ष्म कहा जाता है। यह प्राणों की रक्षा करता है, इसलिए प्रणव रूप है।[1] सर्व व्यापक होने से सनातन है। वृहत् होने से ब्रह्म है और इसी कारण इसकी संज्ञा परब्रह्म भी कही गई है। यह अद्वितीय, तुरीय परमेश्वर है।[2]

इस रूप में शिव, महेश, परमेश्वर, महेश्वर, लिंगादि जिन रूपों में भी भगवान् शिव को कहा गया है वे सभी रूप परस्पर अभेद रूप हैं और वे ही एक मात्र जगत के सत् चित् रूप हैं।

---

१. शिरः मूर्धस्थानापन्नअकारः उत्तरतः उत्तरभागस्तथा पादौ पादस्थानापन्नौ मकारः दक्षिणतः साक्षान्यमध्यभागः उकार उत्तरतः उत्तरभागसंश्लिष्टः सः पूर्वोक्तो वै ओंकारः। शि. तो., पृ १६४

२. प्राणानवति यस्तस्मात्प्रणवः परिकीर्तितः ।
सर्वं व्याप्नोति यस्तस्मात्सर्वव्यापी सनातनः ।।
वृहत्वाद् बृंहणत्वाच्च बृहते च परात्परे ।
तस्माद् ब्रंहति यस्माद्धि परं ब्रह्मेति कीर्तितम् ।।
लिं. पु., पृ. १६४

चतुर्थ अध्याय

(शैव दर्शन तथा सिद्धान्त)

चतुर्थ अध्याय

(शैव दर्शन तथा सिद्धान्त)

दर्शन, दार्शनिक दृष्टि का प्रारम्भ, वेद और व्यापक तत्त्व, देवों में एकत्व, वेद और शिव, वेद और रुद्र, पशुप, शिव का औपनिषदिक स्वरूप, शैव दर्शन का स्वरूप, शैव सिद्धान्त, शैव सम्प्रदाय, पाशुपत मत और पशुपति, कापालिक, वीर अथवा लिंगायत मत, काश्मीरी शैव दर्शन, काश्मीरीय शैव दर्शन के सिद्धान्त, समीक्षा।

चतुर्थ अध्याय

(शैव दर्शन तथा सिद्धान्त)

दर्शन

संस्कृत व्याकरण के अनुसार दृश्‌धातु से ल्युट् प्रत्यय लगाकर दर्शन शब्द का निर्माण किया जाता है। इसका अर्थ होता है- देखना अथवा जानना। संस्कृत के एक शब्द कोष में आंख, पर्यवेक्षण, समझ और धर्म सम्बन्धी ज्ञान भी दर्शन के अर्थ के रूप में ग्रहण किए गए हैं। दर्शन का एक अर्थ यह भी किया गया है जिसमें वह शास्त्र आता है जो आत्मा, अनात्मा, जीव-ब्रह्म, प्रकृति-पुरुष, जगत्, धर्म, मोक्ष, मानव जीवन के उद्‌देश्य जैसे विषयों पर विवेचन करता है। इसके लिए वहां पर छह आस्तिक और छह नास्तिक दर्शनों को गिनाया गया है। वे हैं- सांख्ययोग, न्याय वैशेषिक, पूर्व मीमांसा तथा उत्तर मीमांसा (वेदान्त)। ये आस्तिक दर्शन कहे जाते हैं। नास्तिक दर्शनों में चार्वाक, जैन, माध्यमिक, योगाचार्य, सौत्रान्तिक और वैभषिक हैं।[1]

इस विवेचन से यदि देखा जाये तो शैव दर्शन कहीं पर भी परिगणित नहीं है। इसलिये हमें दर्शन की परिभाषा में केवल देखना मात्र ही ना समझकर सत्य दर्शन अथवा सत् तत्त्व के अन्वेषण से समझना चाहिए। दर्शन शब्द से यदि सामान्य दर्शन समझा जाएगा तो फिर संसार की अनित्यता में सत् तत्त्व के आत्मवादी दर्शनों के प्रयत्न की निरर्थकता सिद्ध होगी। दर्शन देखना तो है ही किन्तु यथार्थ में सत् देखना ही दर्शन का यथार्थ रूप है।

---

१. सं० श० कौ०, पृ० ५२३-५२४

दार्शनिक दृष्टि का प्रारम्भ

भारतीय विचार परम्परा के आदि ग्रन्थवेद हैं। इस धारणा में अब किसी प्रकार का भ्रम नहीं है क्योंकि वेदों से पूर्व का कुछ भी लिखित साहित्य हमें प्राप्त नहीं है। इसलिए जब भी हम वैचारिक अथवा व्यवहारिक स्तर पर जानना चाहते हैं तो हमें वेदों की ओर देखना पड़ता है। वेदों से जो भी दृष्टि मिलती है, वह हमारे लिए आदिकालिक और प्रामाणिक भी होती है। दर्शन का प्रारम्भ कब से हुआ और इसके प्रारम्भ करने की कौन सी स्थितियां थीं, इस विषय में इदमित्थं रूप से तो कुछ भी नहीं कहा जा सकता है किन्तु वैदिक कालीन चिन्तक प्रकृति के परिवर्तनों के बीच अपने को असहाय और अकेला पाकर यह अवश्य सोचता था कि वह कौन है, कहां से आया है, यहां रहकर क्या करना है और उसे जाना कहां है ? यह मृत्यु क्या है, क्या ग्रह स्थिर है, क्या कोई ऐसा देवता है जो एक हो और सभी में अनुस्यूत हो ?

ऐसी सभी जिज्ञासाएँ और जानने की इच्छाओं ने ही सम्भवतः दार्शनिक दृष्टि का आदिकालिक रूप धारण किया। वेदों और वेदोत्तर साहित्य में जो संदर्भ मिलते हैं। उनमें जो विचार व्यक्त किये गए हैं । उनका संकेत भी कुछ इसी प्रकार का है। जिनमें यही जानने का प्रयत्न है कि यह पुरुष क्या है, यह जगत कैसा है और इसमें पहले सत् था अथवा असत् ?

दर्शन की इस प्रारम्भिक वृत्ति के फलस्वरूप हुए विवेचन को जब हम देखते हैं तो यह पाते हैं कि प्रारम्भ में मनुष्य का जीवन नितान्त रूप से प्रकृति पर आधारित रहा होगा। उसे प्रतिक्षण परिवर्तित होने वाले प्रकृति के स्वभाव से अपने आपको नियंत्रित करना होता होगा। कभी प्रकृति के उपादान समुद्र, नदियों, पर्वत, जंगल, अग्नि, सूर्य, उषस आदि उसे अपनी ओर आकर्षित करते होंगे और वह इनकी सुन्दरता देखकर विभोर हो उठता होगा। कभी वह इन प्रकृति के उपादानों के भीषण और विनाशकारी उपादानों से त्रस्त होता होगा और तब अपने मंगल की कामना से वह किसी ऐसे तत्त्व की जिज्ञासा करता होगा जिससे उसे संरक्षण मिले। ऋग्वेद के देव सूक्त कुछ इसी प्रकार का संकेत करते हैं क्योंकि इनमें जिन देवताओं की प्रार्थना की गई है, वे सभी प्रत्यक्ष देवता हैं और वे सभी के सभी लगभग प्रकृति के अंग हैं। इसलिए वह कभी इनके मोहक रूप को देखकर इनकी स्तुति करता था और कभी इनके विकराल रूप को देखकर यह चाहता था कि वे इसकी रक्षा करें। इसलिए एक विद्वान ने यह कहा है कि इन्द्र, अग्नि, उषस् आदि देवता प्रकृति की शक्ति के मूर्तमान स्वरूप हैं और इन्हें प्राकृतिक शक्तियों का मूर्तीकरण ही मानना चाहिए।[१]

---

१. प्र०मा०सा० १ (विष्ट), पृ० ५७

दृष्टि के सद् अन्वेषण के इस समय में तब सबसे पहले वैदिक ऋषियों को यह भी जिज्ञासा हुई कि ये सभी देवता क्या भिन्न-भिन्न रूप में दिखाई दिये जाने पर वैसे ही शक्ति सम्पन्न हैं जैसे दिखाई देते हैं अथवा इनमें भी कोई सर्वोच्च शक्ति वाला है। धीरे-धीरे वे सभी में किसी एक को सर्वोच्च मानने की प्रवृत्ति की ओर बढ़े और कभी कहा कि अग्नि ही इस सृष्टि का आदि तत्त्व है अथवा समर्य वह ग्रह है जो सभी से अधिक प्रभावी है ।[१]

एक स्थान पर वेद का ऋषि वायु की प्रार्थना करता हुआ कहता है कि यह सभी देवताओं की आत्मा है और सभी भुवनों में प्रविष्ट है। इसकी ध्वनि सुनाई देती है किन्तु आकार दृष्टिगोचर नहीं होता।[२]

शक्ति सम्पन्न और सभी में अनुस्यूत देवता को देखने के साथ-साथ इनके अस्तित्त्व में होने और न होने का भाव भी एक स्थान पर इस रूप में दिखाई दिया है जहां इन्द्र के स्तवन में यह कहा गया कि क्या इन्द्र है ? यदि इन्द्रदेवता है तो हमारी स्तुतियाँ उसे समर्पित हैं।[३] इसी तरह से जब प्रजापति की स्तुति की गई तो यह संदेहास्पद भाव व्यक्त किया गया जिसमें कहा गया कि हम किस देवता की स्तुति करें और किसे हव्य प्रदान करें।[४]

---

१. सं० सा० इ० (मैक्डा०), पृ० ५९
२. ऋक्० ८ । १०० । ३
३. कृ० य० तै० सं० २ । १ । ५ । ३२
४. ऋक् १० । १२ ।१-२

यह दृष्टि बाद में इस सृष्टि के स्वरूप का विश्लेषण भी करने लगी और यह जानने की जिज्ञासा करने जगी कि सृष्टि का आदि स्वरूप क्या है, यह सत् है अथवा असत् ? तभी यह कहा गया कि देवताओं के पूर्व इस सृष्टि में असत् से सत् उत्पन्न हुआ। – देवानां पूर्वे युगे ऽसतः सदजायत।

उपनिषद् इस सम्बन्ध में, अर्थात् इस दृष्टि से सत् अथवा असत् को देखने का सार्थक प्रयत्न करती हैं। वहाँ पर मृत क्या है और अमृत क्या है– इस प्रकार के प्रश्न उत्पन्न होते हैं और व्यवस्थित ढ़ग से उनके उत्तर दिए जाते हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य जब गृहस्थ धर्म का परित्याग करके विरक्त होना चाहते हैं तो वे अपनी सम्पत्ति का दाय भाग अपनी दो पत्नियों को देना चाहते हैं। जब उनकी पत्नी मैत्रयी यह पूछती हैं कि क्या मैं इस धन–धान्य से अमर हो सकूंगी, तब याज्ञवल्क्य उसके प्रश्न का उत्तर देते हुए कहते हैं कि संसार के सभी पदार्थों का सम्बन्ध भला अमृतत्त्व से कैसे हो सकता हैं ? संसार के सभी पदार्थ तो क्षणिक और विनाशी हैं। इसके लिये वे जल और नमक का उदाहरण देते हैं और कहते हैं कि जिस प्रकार जल से उत्पन्न नमक उसी से उत्पन्न होता है और उसी जल में डाले जाने से उसी में विलीन हो जाता है, उसी तरह संसार में उत्पन्न पदार्थ इसी संसार में उत्पन्न होकर इसी में विलीन होजाते हैं।[1] यही सत्य है।

---

१. ई० द्वा० उ० ,पृ० ३२८–३२९

दार्शनिक पृष्ठ भूमि की इसी परम्पराओं में बाद में सत्, असत् जड़, चेतन, क्षर, अक्षरादिका विवेचन हुआ और तब यह कहा गया कि जो अल्प है, वह मर्त्य है। जो अनल्प है, वह भूमा है, वह अमृत है। यहां पर जो देखता है, सुनता है, जो मानता है, वह सभी अल्प है। मर्त्य है। समस्त दृश्यमान पदार्थ मर्त्य हैं।[1]

इसी प्रकार से एक अन्य उपनिषद् में यह कहा गया कि सम्भूति से ही मृत्यु और नश्वरता से बचाव होता है। सम्भूति ही मृत्यु से बचाती है।[2] जो सम्भूति प्राप्त करता है वह मृत्यु से बचता है। इसी क्रम में यह भी कहा गया है कि ब्रह्मज्ञानी यदि सत्य जान लेता है तो वह विनष्टि से बच जाता है। यदि वह सत्य के ज्ञान से वंचित रहता है तो सत्य का साक्षात्कार नहीं कर पाता। इसलिए धीर पुरुष चराचर में से मृत्यु से पार जाकर अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है।[3]

संसार के संदर्भ में भी यही विचार उपनिषदों के हैं। एक स्थान पर यह वर्णन है कि मल, मूत्र ,अस्थि और मज्जा से युक्त इस शरीर का क्या भरोसा ? यह शरीर उतना ही क्षणिक है जितना क्षणिक संसार है। यहां अर्थात् इस सृष्टि में ऐसा कौन देवता है जो इस मृत्यु का शिकार न हुआ हो। परलोक भी तो सुखाकर नहीं हैक्यों कि उससे क्षीण होकर भी तो मृत्यु लोक में आना है। तब भला इस सृष्टि में कौन शरणदाता है ? अर्थात् कोई नहीं क्योंकि मृत्यु सत्य है।

---

१. छान्दो० , ८। ३। १

२. ई० (उ० स०), पृ० ३९

३. वही , पृ० ३४

४. मै० १। २- ४

जैसा कि हम प्रारम्भ में देख चुके है कि वैदिक ऋषियों के मन में सत और असत् जानने की जिज्ञासा हुई तब वे क्रमशः असत् और विनाशी से सत और अविनाशी के ओर बढ़ते गए। इस प्रकार के अनेक उदाहरण में वहाँ पर देखाने को मिलते भी है।

देव स्तुतियों के क्रम में वेद में एक स्थान पर यह कहा गया कि देवता सम्भवतः प्रारम्भ में अमर नहीं थे। बाद में उन्होंने अमरत्व प्राप्त किया–येनदेवासो अमृततत्वभानशः।[१] इसी तरह से एक अन्य स्थान पर यह कहा गया है कि देवताओं ने अपने पार्थिव शरीर का परित्याग किया और तुमने मुक्ति के द्वार पर चढ़े।[२] इसी भाँति यह भी एक विचार है कि दिवस में उत्पन्न होने के कारण देवों का देवत्व है।[३]

देवताओं की अनेक कोटियों का संकेत भी ऋग्वेद में प्राप्त होता है। इस संकेत में कुछ देवताओं को महान्, कुछ देवताओं को अर्भक, कुछ देवताओं को बृद्ध और कुछ देवताओं को युवा कहा गया है।[४]

जिस प्रकार से देवताओं के विविध भेदों का संकेत है उसी तरह से उनकी संख्या को लेकर भी तरह-तरह के संकेत हैं। कहीं पर देवों की संख्या तेतीस है तो कहीं पर तीन हजार तीन सौ उन्तालीस है।[५]

---

१. ऋक्, पृ० १६४९
२. अर्थव (१) , पृ० १४४
३. श० ब्रा० ११ । १ । ६१७
४. नमो महद्भ्यो नमो अर्भकेभ्यः नमो युवेभ्यो नमो आशिनेभ्यः। ऋक्, पृ०६९
५. ऋक्, पृ० १२१२ तथा १२७७

वेद देव स्तुति में यह निश्चय करने में प्रारम्भ में द्विविधाग्रस्त रहे कि इनमें से कौन सर्व शक्ति सम्पन्न और कौन श्रेष्ठतम देवता है। प्रायः इन्द्र के स्तवन में इस देवता को सृष्टि का आदि कर्ता और असुरों का संहारक बताया गया।[1]

इन्द्र की महिमा में यह और कहा गया है कि वह इस पृथिवी और स्वर्ग को रथ चक्र के समान स्थिर रखते हैं। विस्तृत अन्तरिक्ष भी उनके बल से डरता है।[2] इन्द्र ही ऐसे देवता हैं जो धन के स्वामी हैं और वे नदियों के माध्यम से अन्न की वृद्धि करते हैं। वे तम नाशक सूर्य को आकाश में प्रतिष्ठित रखते हैं। वे उपासकों को गो, अश्व, अन्न, हिरण्य, आदि प्रदान करते हैं।[3]

इसी प्रकार से जब वेद में सूर्य का स्तवन किया जाता है तो यह कहा जाता है कि वह अत्यन्त तेजस्वी दीप्तिवान् ग्रह है। वे मैत्रावरुण के नेत्र तथा कर्म के प्रेरक देवता हैं।[4] सूर्य का महत्त्व इस रूप में है कि वे इस जगत् की आत्मा हैं। वे जब उदित होते हैं तो सभी को ढक लेते हैं तथा स्थावर और जंगम को प्राण देते हैं।[5] इस रूप में जो सूर्य का स्तवन किया गया, वह पूर्व के ग्रह के प्रभाव से बढ़कर दृष्टिगोचर होता है और सूर्य को अधिक महत्वपूर्ण देवता के रूप में कहता है।

---

१. ऋक्, पृ० १६४९- ५०
२. साम , पृ० ११७ -१२६
३. अथर्व, पृ० ९४३, ९४८
४. ऋक् (४), पृ० १०६०
५. मित्रं देवानामुद्गादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्ने ।
आयाद्यावापृथिवी अन्तक्षि सूर्य आत्मा जगतस्युषश्च ।। ऋक्, (१), पृ० २२४

सूर्य की महिमा को केवल इसी रूप में नहीं कहा गया है अपितु यह तक कहा गया है कि तत् चित् सुखात्मक संसार का कारण भूत ईश्वर सृष्टि के आरम्भ में हिरण्यगर्भ सविता के रूप में प्रकट हुआ। जो पूर्व दिशा में उदित होने वाला तेजवान् सूर्य है, वही सत् और असत् के स्थान को प्रकट करने वाला है। वे परब्रह्म सूर्य प्रथम रूप से उत्पन्न हुए और आकाश के कारण रूप तथा पृथिवी के सत्य रूप द्यावापृथिवी में वे ही विनश्यता को स्थापित करते हैं।[१]

वैदिक ऋषि जब अग्नि की स्तुति देव रूप में करते हैं तो यह लिखते हैं कि हे अग्नि ! तुम मनुष्यों में कर्म की रक्षा करने वाले हो, इसलिए तुम यज्ञों में स्तुति करने के योग्य हो। तुम युद्ध में शत्रुओं को पराजित करने वाले तथा यज्ञों में बढ़ने वाले हो।[२]

अग्नि के स्तवन में एक तथ्य विशेष रूप से दिखाई देता है जिसमें यह कहा गया है कि अग्नि अमरत्व प्राप्त है। यह कभी भीं मरता नहीं है। यह सुन्दर तेज वाला , मरणधर्म से रहित मनुष्यों के द्वारा इसलिए स्तुति करने योग्य है जिससे मनुष्य भी अमरत्व को प्राप्त कर सके।[३]

अग्नि की व्यापकता भी वेद में बड़ विस्तार से कही गई है। यह कहा गया है कि वह वन में है, औषधियों में है, अन्तरिक्ष में है। वह इतनी सामर्थ्यवान् है कि हमें अन्य देवताओं के क्रोध से बचाती है।[४]

---

१. अथर्व , पृ० १२९
२. ऋक् (४) , पृ० ११५३
३. यदग्ने मर्त्यस्त्वं स्यामहं मित्रमहो अमर्त्यः । ऋक् (४) , ११७७
४. यजु०, पृ० १८४

देव स्तुतियों में जब वरुण की प्रार्थना की जाती है तो यह कहा जाता है कि तुमने अपने बल से जल का भाग प्रशस्त किया है और सूर्य को आकाश में भेजा है। वरुण के साथ इन्द्र को मिलाकर की गई स्तुति में यह भी कह दिया है कि तुम आवाहन के योग्य हो और तुमने सभी प्राणियों की रचना की है।[1]

वरुण की प्रार्थना जब इन्द्र से पृथक् करके की गई तब कहा गया कि वरुण ने ही सूर्य को अन्तरिक्ष में मार्ग दिया और इन्होंने ही नदियों को जल दिया। वरुण ही ऐसे देवता हैं जो संसार में आत्म रूप वायु को और प्राण रूप जल को संसार में सभी के लिए प्रेषित करते हैं। वरुण ने ही सूर्य को स्वर्ण के झूले के समान तेज से रचा है। वरुण ने ही सूर्य के समान समुद्रकी रचना की है। वे मृग के समान तेज धावक और जल की रचना करने वाले और दुःख से पार जाने वाले सभी के स्वामी हैं।[2]

वरुण की प्रार्थना में यह कहा गया है कि वे सदा सभी पर दया करें। जो समुद्र में रहकर भी प्यासे हैं। वरुण कृपा पूर्वक उन्हें सुखी करें, जिससे अज्ञानवश जो कर्म हुए हैं, वरुण उन्हें क्षमा करें।[3]

---

१. इन्द्रावरुणा यूयमध्वराय नो विशेजनाय महि शर्म यच्छतम् ।
इन्द्रावरुणा यद्धिमानि चक्रधुर्विषया जातानि भुवनस्य यज्मना।।
ऋक् (४), पृ० १०८२

२. ऋक् (४), पृ० १०८८-८९

३. वही, पृ० १०९१

इस रूप में यम की प्रार्थना मृत्यु के देवता के रूप में की गई है। यम की प्रार्थना करते हुए कहा गया है कि जो श्रेष्ठ कर्म करते हैं वे यम का सुख-सम्पन्न लोक प्राप्त करते हैं। और जो उनके लोक जाते हैं उनका मार्ग सरल करते हैं। यम के मार्ग को कोई भी ढक नहीं सका है। हमारे सभी पूर्वज उसी लोक में जाते हैं। जो पितर उस लोक को जाते हैं वे अपने कर्म से उन्हें प्राप्त करते हैं।[1]

यम के एक दूसरे स्तवन में उन्हें यज्ञ में प्रस्तुत किए जाने वाले चरु के प्रापक के रूप में कहा गया है और यह चाहा गया है कि वे हमारा दीर्घ जीवन करें। हम उन्हें हवि देकर सन्तुष्ट करें।[2]

हवि देते समय यह प्रार्थना की जाती है कि पितरों के अधिपति यम! स्वधा तथा नमस्कार से युक्त हवि तुमको प्राप्त होवे।[3]

वायु देवता इस रूप में वन्दनीय हैं क्यों कि वह अन्तरिक्ष में प्रवाहित होता है और सम्पूर्ण अन्तरिक्ष को पवित्र भी करता है। एक स्थान पर वायु को धन देने वाले देवता के रूप में कहा गया है और यह वर्णन है कि वायु को आकाश और पृथ्वी ने धन के लिए प्रकट किया है। वायु उज्जवल वर्ण वाले हैं और उपासक श्रेष्ठ अपत्य प्राप्ति के लिए यज्ञ रूप कर्मों को करते हैं।[4] इस रूप में वायु यज्ञ के देवता, धन प्रदान करने वाले, अपत्यों के प्रदाता हैं। वे सोम पायी हैं। वेदों में वायु की महिमा सभी को पवित्र करने वाले के रूप में भी हैं।

---

१. ऋक् (४), पृ० १५५५-५६
२. अथर्व., पृ० ८३७
३. वही पृ० ८४०
४. यजु०, पृ० २७१

देवों में एकत्व

यद्यपि यह कहना सम्भव नहीं है कि वेदों में किसी एक सर्वोच्च सत्ता की स्थापना सम्भव हुई है किन्तु वहाँ पर ऐसी प्रवृत्ति अवश्य देखने को मिलती है जिसमें अनेक देवों की भिन्न स्तुतियां करते हुए भी ऋषि किसी एक सत्ता में सर्वोच्चता देखना चाहते हैं। जैसे कि वे जब इन्द्र का स्तवन करते हैं तो कहते हैं कि इन्द्र सभी जगह तद्-तद् रूपों में व्याप्त हैं यह वही इन्द्र हैं, जिनके रथ में हजारों अश्वयोजित हैं।[1] इसी तरह से ऋग्वेद की समाप्ति पर एक स्थान पर यह संकेत है कि जब से सत् और ऋज अस्तित्व में आया तब उस धाता ने सूर्य, चन्द्र, स्वर्ग, लोक, पृथ्वी, अन्तरिक्ष की रचना की।[2] एक दूसरा सन्दर्भ यह है जिसमें विश्वेदेवा की स्तुति करते हुए यह प्रतिपादित है कि सभी देवताओं का पराक्रम एक सा है।[3]

इन सभी सन्दर्भों में यद्यपि प्रार्थना पृथक्-पृथक् देवताओं की है और उनके सन्दर्भ में विचार भी भिन्न- भिन्न प्रकार के दिए गए हैं किन्तु इन सबके बीच भी एक सामान्य और सर्वोच्च सत्ता के स्थापन का प्रयास अवश्य दिखाई देता है।

---

१. रूपं रूपं प्रतिरूपो वभूव तदस्य रूपं प्रतिपक्षणाय।
इन्द्रो मायाभिः प्रतिरूप ईयते युक्ता हयस्य हरयः शतादश।।
ऋक् (२), पृ० ९२७

२. ऋतं च सत्यं चाभीधात्तपसोऽध्यजायत ।
- - - -
सूर्याचन्द्रमसोधाता यथापूर्वमकल्पयत् ।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः ।।
ऋक् (४), पृ० १८९८

३. प्ररण्याानि रण्यवायो भरन्ते महद्देवानाम सुरत्वेमेकम् ।।
ऋक् (२), पृ० ५५१

यजुर्वेद के पुरुषसूक्त में पुरुष रूप सर्वेश्वर का ऐसा वर्णन किया गया है कि बह पुरुष सहस्त्रों शिरवाला है, सहस्त्रों चरण वाला है, सहस्त्रों नेत्र वाला है, सहस्त्रों पैरों वाला है और सम्पूर्ण पंचभूतों को व्याप्त करके दश अंगुलि के प्रमाण अवस्थित है। यह वर्तमान विश्व, व्यतीत हुआ विश्व और भविष्यत् कालीन विश्व सब परम पुरुष रूप ईश्वर ही है। विश्व को जो अन्नमय फल प्राप्त होता है उस अमृतत्व का स्वामी परम पुरुष रूप ईश्वर ही है।[१] इस रूप में यह देखा जा सकता है कि सम्पूर्ण विश्व में पुरुष की ही सत्ता विद्यामान है और वही पुरुष सभी रूपों में दृश्य है।

ईश्वर की इस एक रूपता का स्पष्ट संकेत तब और देखने को मिलता है जब यह कहा जाता है, कि अग्नि वही है, आदित्य वही है, वायु वही है, चन्द्र भाव वही है, और शुक्र भी वही है। जल में व्याप्त प्रजापति भी वही हैं। वह देव सभी दिशाओं में व्याप्त हैं।[२] इस प्रकार से यह अवश्य सम्भव नहीं हुआ कि वहां किसी एक शक्ति की स्थापना कर उसका स्वरूप वर्णित किया जाता है किन्तु किसी सर्वोच्च शक्ति के स्थापन का प्रयत्न अवश्य था।

---

१. सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्।
सभूमिं सर्वतः स्पृत्वात्यतिष्ठत् दशांगुलम् ।।
पुरुष एवेदं सर्वं यदभूतं यच्चभव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनाति रोहति ।। यजु०, पृ० ४८३

२. तदेवाग्निस्तदादित्यतद्वायुस्तदु चन्द्रमा ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ता आपः स प्रजापतिः ।।
– – – –
एषो देवः प्रदिशो नु सर्वाः । वही, पृ० ४८८

इसके अतिरिक्त और भी ऐसे उदाहरण हैं जिनमें किसी एक देवता की प्रर्थना करते हुए भी या तो उसी में सर्वोच्चता का आख्यान किया गया अथवा उससे आगे कोई अन्य सत्ता संकेतित की गई। जैसे कि इन्द्र की स्तुति में 'अभयं ज्योति' के माध्यम से ऐसी किसी ज्योति की कामना है जो अभय प्रदान करती है।[१] इसी तरह से अग्नि के स्तवन में 'परम व्योमन' शब्द में परम शब्द का अभिप्राय किसी ऐसी शक्ति से है जो अव्यक्त और सर्वोच्च सत्ता होवे।[२] विष्णु की जब प्रार्थना की जाती है तो ऋषियों के द्वारा यह कामना की जाती है कि हम विष्णु के परम पद का साक्षात्कार करें। इसलिए इन परम पदों के प्राप्ति के संकेतों से यह अनुभव होता है कि परम पद का प्रयोग सामान्य के लिए नहीं, अपितु किसी विशेष सत्ता के लिए ही किया गया है।

ये सभी संकेत यद्यपि भिन्न-भिन्न हैं और सभी में भिन्न-भिन्न देवों की स्तुति है जिसमें जिस देव की स्तुति की गई है, उसे ही सर्वोच्च माना गया है किन्तु यह प्रवृत्ति किसी एक देवता की स्तुति से ही सीमित नहीं हुई अपितु निरन्तर बढ़ती रही। और इसी आधार पर यह कहना सम्भव हो सकता है कि वैदिक ऋषि सभी देवताओं और उनकी शक्तियों के बीच भी किसी एक विशिष्ट सत्ता का अन्वेषण कर उसका कथन करना चाहते थे।

---

१. ऋक् (१), पृ० ४१४
२. वही, पृ० २८५

वेद और शिव

यह अनेकशः संकेत किया जा चुका है कि हमें यदि किसी भी भारतीय विचार-परम्परा का उत्स जानना होगा तो आवश्यक होगा कि हम वेदों की ओर देखें और जो प्रारम्भिक संकेत दिए गये हैं, उनसे अर्वाचीन परम्परा मिलान करें। तभी यह सम्भव होगा कि हम बाद की परम्परा में विकसित किसी भी विचारधारा के यथार्थ रूप को जान सकेंगे और यथातथ्य विवेचन कर यकेंगे।

हम वेदों में जब शिव के स्वरूप का ज्ञान करने का प्रयत्न करते हैं तो हमें अधिक मात्रा में यह दिखाई देता है कि वहां पर रुद्र शब्द का प्रयोग ही अधिक मात्रा में किया गया है और यदि कहीं शिव शब्द का उल्लेख आया भी है तो वह भी रुद्र शब्द के पर्याय के रूप में ही आया है। यजुर्वेद के एक संदर्भ में शिव की प्रार्थना में शम्भु, मयोभय, शंकर, मयस्कर, शिवादि नाम दिये गये हैं।[१] और ये सभी निश्चित रूप से उस रुद्रकी ही प्रार्थना में कहे गये हैं, जिसका नाम अनेक बार वेदों में आया है। वहां पर शिव को धनुष धारण करने वाला और मृगचर्म धारण करके हमारी रक्षा के लिए आने वाला देवता कहा गया है। शिवकी शक्तियां उनकी औषधियां हैं जिसका अभिप्रायः यह भी होता है कि वे औषधियों के देवता हैं और औषधिपति कहे जाते हैं।[२] इस रूप में जो भी कुछ कहा गया है उसका अभिप्रायः यही है कि जो शिव हैं, वहीं रुद्र हैं। इसलिये यह कहना भी संगत है कि शिव का सवरूप और सिद्धान्त उपनिषद्काल की देन है। पूर्व में इसके संकेत अत्यल्प थे।[४]

---

१. यजु. , पृ० २६७

२. वही, पृ० २७०

३. वही, पृ० २६९

४. बौ० वे० क० द० , पृ० २२

वेद और रुद्र

तैत्तरीय संहिता के एक उद्धरण में रुद्र शब्द का तो अर्थ दिया गया मिलता है, उसके अनुरूप स्वयम् रोने वाला अथवा सभी को रुलाने वाला रुद्र है।[1] रुद्रके इसी अर्थ को विस्तार देते हुये अन्य सन्दर्भ में यह कहा गयाहै कि वह ऐसा है जो अन्त में सभी को रुलाता है। जो जीव संसार रूपी दुःख में निमग्न हैं, उन्हें उस दुख से मुक्त करता है। वह शब्द रूपी उपनिषद् के द्वारा व्यक्त किया जाने वाला है और जो उसकी उपासना करते हैं उन्हें वह आत्म विद्या का प्रकाश देता है। वही ऐसा देव है जो रोता और रुलाता है।[2]

रुद्र को कपर्दी कहकर उसे जटाजूट वाला बताया गया है और यह कहा गया है कि वे नील ग्रीव हैं। कभी-कभी यह भी रुद्र के लिए कथन है कि वे शित कण्ठ भी हैं।[3] यद्यपि उनके नीले कण्ठ के कारण बाद में उनका नाम नील कण्ठ हो गया है।

रुद्रके लिए अर्थववेद में, जो अपेक्षाकृत परवर्ती वेद हैं और जिसमें बहुत कम मात्रा में नवीन ऋचाओं का संकलन है, कहा गया है कि वे जहां निवास करते हैं, वहां सभी प्राणी अपनी अन्तिम गति लिये पहुंचते हैं। यही कारण हैं कि जो पिशाच श्मशान में रहते हैं और जिनका सम्बन्ध श्मशान से है, रुद्र उनके देवता हैं।[4] रुद्र निर्भयता देते हैं, तेजस्वी हैं और तेज आयुध धारण करने वाले हैं।[5]

---

१. तै० सं० १/५/१/१
२. ऋक् १/११४/१ पर सायण भाष्य
३. यजु०, पृ० २६३
४. अथर्व, पृ० ७९५
५. यजु० , पृ० २६६

पशुप

पशून् पातीति पशुपः- इस अर्थ के अनुसार जो पशुओं की रक्षा करता है, वह पशुप है। यद्यपि पशु का अर्थ केवल चतुष्पद प्राणी ही नहीं है, तथापि भगवान् शिव इस अर्थ में पशुप हैं क्योंकि उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे हम सभी के पशुओं की रक्षा करें। वे हमारी आयु नष्ट न करें और न वे हमारे अश्व वंश तथा गो वंश पर प्रहार करें।[1]

एक स्थान पर रुद्र की प्रार्थना करते हुए यह कहा गया है कि रुद्रन हमारा वध करें। और न वे हमारे पशुओं की हिंसा करें। हम प्रार्थना करते हैं कि उनके अस्त्र जो पशुओं और मनुष्यों को मारने वाले हैं, हमसे दूर ही रहें।[2]

अन्य स्थानों पर वेदों में पशुप के लिए ऐसे ही संकेत हैं। उन संकेतों में कही पर यह कहा गया है कि हे पशुपति ! तुम्हें चार बार, आठ बार, दस बार हम नमस्कार करते हैं। तुम हमारे सभी प्रकार के गो वंश की रक्षा करो।[3]

रुद्र की अन्यत्र की गई प्रार्थना में उन्हें अनेक नामों से भी संकेतित किया गया है। इन नामों में भव, शर्व, ईशान आदि नाम कहे गये हैं। वहां पर इन नामों का स्मरण करते हुये यह कहा गया है कि वे कभी भी पुरुषों और पशुओं की हिंसा नहीं करते हैं।[4]

---

१. यजु. , पृ० २५९
२. ऋक् (१), पृ० ९९-१००
३. अथर्व (२), पृ० ५८
४. वही, पृ० ५९

शिव का औपनिषदिक स्वरूप

उपनिषद् साहित्य का अपना एक लक्ष्य है, और वह है उनके द्वारा जीव, जगत् और आत्मा का अन्वेषण कर उनकी प्रतिष्ठा करना । फिर भी उपनिषदों में जिस परम देवता के सम्बन्ध में सर्वाधिक सन्दर्भ प्राप्त हैं, वह शिव ही है।

इस रूप में यदि वहां देखा जाए तो शिव को ब्रह्मरूप में अथवा आत्म रूप में सूक्ष्माति सूक्ष्म स्वरूप में स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। श्वेताश्वतरोपानिषद् में एक स्थान पर रुद्र का स्मरण करते हुए कहा गया है कि रुद्र एक ही है अतः ब्रह्मबेत्ता पुरुष स्वयम् ही किसी दूसरी वस्तु की अपेक्षा नहीं करते हैं। वह रुद्र अपनी शक्तियों से इन लोकों पर शासन करता है। वह सम्पूर्ण प्राणियों के भीतर विद्यमान है और प्रलयकाल में सभी कों अपने भीतर समेट लेता है[१]।

यह उपनिषद् जिस परमात्मा की व्यापकता और सर्वमयता का आख्यान करती है, उसके लिए कहती है कि वह शिवस्वरूप है। उसके सभी ओर मस्तक, मुख और ग्रीवा हैं। वे सम्पूर्ण भूतों के हृदय में स्थित हैं। वे सर्वगत हैं अर्थात् सभी जगह जाने वाले हैं तथा सभी का कल्याण करने वाले हैं। इस रूप में वे सर्वत्र होते हुए सभी में विद्यमान हैं और सर्वव्यापक भी हैं[२]।

---

१. एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य इमाल्लोकनीशत ईशनीभिः।
प्रत्यड्.जनास्तिष्ठति संचुकोपान्तकाले संसृज्यविश्वा भुवनानि गोपा ?
ई.द्वा.,उ.पृ.४३९-४४०

२. सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतग्रहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवास्तस्मात्सर्वगतः शिवः।। वही, पृ. ४४१

इसी उपनिषद् में रुद्र और शिव के सम्बन्ध में विस्तार से कहा गया है। वह ब्रह्मादि देवताओं का अधिपति है। उसी में सभी चर-अचर आश्रित हैं। उसे हम शिवस्वरूप जानकर और उससे शान्ति की कामना करके हम उसकी उपासना करे[1]।

एक दूसरे स्थान पर यह कहा गया है कि हे रुद्र? तुम अजन्मा हो। अतएव संसार भय से भयभीत मुझ जैसा कोई पुरुष जो आपकी शरण में आता है, उसकी तू सर्वदा रक्षाकर। हे रुद्र? तू क्रुद्ध होकर हमारे पुत्र, पौत्र, आयु, गौ, अश्वों आदि को नाश नहीं करना, तुम हमारे सेवकों का वध भी नहीं करना। हम हविष्यान्न से तुम्हारा आवाहन करते हैं[2]।

इन सन्दर्भों के अतिरिक्त भी शिव और रुद्र के सन्दर्भ हैं जिनमें उनके नाम की महिमा का आख्यान किया गया है और विशेष महिमा के कारण ही उन्हें महेश्वर कहा गया है[3]।

इस रूप में हम यह देख सकते हैं कि शिव और रुद्र को जहाँ ईश्वर के प्रत्यक्ष रूपों में कहा गया है, वही उन्हें सर्वव्यापक और सूक्ष्म कहने के कारण ब्रह्म रूप भी कहा गया। ऐसा देखकर हम यह कह सकते हैं कि शिव का यही रूप आगे दार्शनिक शिव तत्व का आधार बना।

---

१. सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारअनकेरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति।। ई.द्वा.उ.,पृ. ४४६
२. अजात इत्मेवं कश्चिद्भीरुः प्रपद्यते।
रुद्र यत्ते दक्षिणं मुखं तेन पाहि नित्यम्।।
मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मानो गोषु....... । वही, पृ. ४४७
३. अथर्व शिरष्, पृ. ३८९

शेव दर्शन का स्वरूप

भारतीय परम्परा में धर्म एवं दर्शन की दो चिन्तनधाराऐं सतत् रूप से प्रवहमान रही हैं, ये दोनों ही धाराएँ कभी भिन्न होकर चलीं तो कभी समानान्तर रूप से भी चलती रही हैं। कभी-कभी इनमें इतना अधिकं एकाकार हो जाता रहा है कि इन दोनों के बीच विभाजक रेखा खींचना कठिन काम हुआ है। इसका सन्दर्भ यह है कि इस देश की जिस जनता ने धर्म के मर्म को जाना, वही इस देश की दार्शनिक परम्परा को भीठीक से समझ सकी। यही कारण हैकि जिस विचार-परम्परा को हम धार्मिक कहते हैं, वह दार्शनिक भी होती है और जो विचार-परम्परा दार्शनिक होती है, वह कही न कहीं धर्म से भी जुड़ी हुई होती है। यथार्थ में तो यह कहा जा सकता है कि भारतीय चिन्तन की यह विलक्षणता है कि यहां धर्म की व्याख्या के प्रयास में दर्शन की व्याख्या स्वयं ही हो जाती है।

अनेक दार्शनिकों और विद्वानों का यह पक्ष है कि धर्म और दर्शन में कौन पहले प्रवर्तित हुआ और कौन बाद में प्रवर्तित हुआ-इस विषय में विचार नहीं करना चाहिए क्योंकि इन दोनों में विभाजक रेखा खींचना कठिन कार्य है। फिर भी,यह मान्य हो सकता है कि पहले धर्म की अवधारणा का प्रत्यार्वतन हुआ और बाद में उसी से दर्शन की अवधारणाएँ विकसित हुई। शैवदर्शन के सम्बन्ध में हम इसी स्थिति को आगे देख सकेंगे।

---

१. एन.एस.एस.पी., पृ.११

शिव तत्व और शैव दर्शन के सम्बन्ध में जो विवेचन विद्वानों द्वारा किया गया है, उसके अनुसार यह कहा गया है कि इस दर्शन के मूल में तन्त्र एवं आगम शास्त्र हैं भारतीय परम्परा में श्रुति, स्मृति, पुराण और तन्त्र के रूप में शास्त्रों को चार भागों में देखा जाता है। इनमें से वैदिक दर्शनों के लिए श्रुति और स्मृतियाँ परम प्रामाणित हैं जबकि शैवदर्शन के लिए तन्त्र एवं आगम ही प्रामाणिक हैं। जिस प्रकार से वेदों को परम्परानुसार अपौरुषेय कहा जाता है और यह कहा जाता है कि इनका प्रादुर्भाव स्वयम् हुआ है और इनकी रचना में किसी पुरुष विशेष का प्रयास नहीं है, उसी तरह से तन्त्रागम को भी अपौरुषेय मानने की ही परम्परा है। यही कारण है कि जिन तन्त्रों और आगमों ने शैवदर्शन को वैचारिक पृष्ठभूमि दी,वे ही काल,रचयिता और स्थान के सन्दर्भ में या तो अज्ञात हैं अथवा अनुमान पर आधारित हैं।

शैवदर्शन पर अपना एक प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रस्तुत करते हुए एक विद्वान् ने यह लिखा है कि विश्व की सृष्टि में सक्रिय तत्व देवी ही है, जबकि शिव इस कार्य में प्रायः दृष्टा मात्र ही हैं। इन्हीं सिद्धान्तों के अनुसार वेदोत्तरकाल में शैवमत के दार्शनिक पक्ष का विचार होता रहा और अन्त में आगम ग्रन्थों की रचना हुई। इन ग्रन्थों में शैवमत के दार्शनिक पक्ष का स्वरूप निर्धारित कर दिया गया और ये ग्रन्थ शैवमत के प्रथम सैद्धान्तिक ग्रन्थ बनें[१]।

---

१. शै.म., पृ० १६७

आगम ग्रन्थों के रचनाकाल के विषय में अनेक प्रकार के मत-मतान्तर है और यह कहना नितान्तरूप से असम्भव है कि इनका रचनाकाल क्या हो सकता है ? इतना अवश्य कहा गया है कि इन आगम ग्रन्थों में सिद्धान्तों का जो प्रतिपादन किया गया है, उसके मूल बीज उपनिषदों में पाए जाते हैं। एक विद्वान यह मत देते हैं कि इन ग्रन्थों के रचना का आदि समय चाहे जो रहा हो किन्तु इनका अस्तित्व पुराणों के समय में था क्योंकि ब्रहमवैर्वत पुराण में इनका स्पष्ट उल्लेख किया गया है। इससे कुछ समय पहले दक्षिण में शैव सन्त 'तिरूमूलर' हुए है और इनका समय पाचवीं शताब्दी निर्धारित किया गया है जिससे आगम ग्रन्थों की रचना सीमा उनके पूर्व की मानी जा सकती है।

डॉ. यदुवंशी ने अपनी पुस्तक शैवमत में ही आगम ग्रन्थों की समय सीमा की विवेचना करते हुए दक्षिण के उन्हीं सन्त 'तिरूमूलर' के कथनों को ही प्रमाण बनाया है और लिखा है कि उनका कहना यह था कि वेद और आगम दोनों ही श्रुति हैं। ये दोनों ही सत्य है क्योंकि ईश्वर की वाणी हैं। उनका यह तर्क महत्वपूर्ण था कि आगम और वेद एक-दूसरे के पूरक हैं। इनके सिद्धान्त में परस्पर कोई भेद नहीं है और न ही इन दोनों प्रकार के ग्रन्थों में कोई विरोध ही है। उन्होनें इन दोनों प्रकार के ग्रन्थों के ऐक्य के लिए यहाँ तक कहा था कि वेद यदि गौ है तो आगम ग्रन्थ उनका दुग्ध हैं।[२] इस रूप में हम यह कह सकते हैं कि शैवमत आगमाधारित होते हुए भी वेद मत ही है और इसका वैदिक मत से विरोध नहीं है।

---

१. शै० म., पृ० १६७

२. वही, पृ० १६७

इस समय तन्त्र ग्रन्थों का अभाव सा है और वे अधिक मात्रा में प्राप्त नहीं है। फिर, इन दोनों प्रकार के ग्रन्थों आगमों और तन्त्रों में शैवदर्शन के सिद्धान्तों की न्यूनता है। इनमें शैवदर्शन के सिद्धान्तों की अपेक्षा शैव उपासनाकी सूक्ष्मताओं का अधिक विवेचन किया गया है। फिर भी अधिकतम आगम ग्रन्थों में विद्यापाद नामक स्वतन्त्र भाग रचित है जिसमें दार्शनिक विचारों का विश्लेषण और प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार के विश्लेषण और विचारों में साम्य और वैषभ्य दोनों ही दिखाई देते हैं। इतने पर भी इन सब के विचार का केन्द्र विन्दु एक ही है और वह है शिव और शक्ति के ऐश्वर्य स्थापन विन्दु।[1] इसमें ये लगभग एकमत हैं।

शैव सम्प्रदायों के विकास के सम्बन्ध में संक्षेप में इतना ही संकेत कर देना यहाँ समीचीन होगा कि वैदिक ग्रन्थों में रुद्र और शिव का जो संकेत है, वह उपनिषदों तक आते-आते कुछ-कुछ दार्शनिक रूप इसीलिए लेने लगा था क्योंकि शिव को ही तब सृष्टि का सर्जक, पालक, संहारक कहने के साथ-साथ उन्हें अनादि, अरूप और अज कहने का संकेत भी किया गया था। बाद में यही संकेत शिव शिवा के ऐक्य के रूप में विकसित हुआ और शिव तत्व की अद्वय स्वरूपा व स्थिति की स्थापना हुई तथा शैव दर्शन के रूप में विकसित हुआ।[2]

---

१. बौ० वे० क० द०, पृ० ५

२. वै० शै० धा० म०, पृ० १३२-१३५

शैव सिद्धान्त

विविध आगम ग्रन्थों में शिव के जिस स्वरूप का निरूपण किया गया है और जिस रूप उस निरूपण को दार्शनिक स्वरूप प्रदान किया गया है उसके अनुसार शिव ही सर्वश्रेष्ठ सत्य है। वे अनादि है अकारण हैं और स्वतः सम्पूर्ण हैं। वे सर्वज्ञ हैं और सर्वकर्ता है। वे अपनी शक्ति से अपने साधनों के द्वारा सृष्टि के निर्माण का कार्य करते हैं। उनकी जो शक्ति है वह उनसे अभिन्न है और उनके समीपवर्तिनी है। शिव की इसी शक्ति को उमा के साथ तादात्म्य कहा गया है। अपनी शक्ति के द्वारा शिव समस्त विश्व में इस प्रकार व्याप्त हैं कि वे शक्ति से भिन्न प्रतीत नहीं होते। किन्तु शिव का तादात्म्य विश्व से इसलिए नहीं किया जा सकता क्योंकि वे विश्व से परे हैं और इसका अस्तित्व शिव के अन्दर ही है।

आत्मवादी दर्शनों की ही भाँति यह कहा जा सकता है कि यह विश्व और इसमें रहने वाले प्राणी उनके शरीर हैं जिनकी आत्मा शिव हैं। शैव सिद्धान्त के अनुसार जीवात्मा असंख्य और शाश्वत है। वे सभी परम शिव के ही अंश हैं किन्तु उनसे सर्वथा अभिन्न नहीं है। जीवात्मा और शिव रूप परमात्मा के परस्पर सम्बन्ध को हम इस प्रकार से निर्दिष्ट कर सकते हैं जिनमें उनका भेदाभेद सम्बन्ध स्थिर होता है। आगम ग्रन्थों में शैव-दर्शन की जो मान्यतायें निरूपित हैं उसमें यह कहा गया है कि आत्मा का कर्म बन्धन पाप है और परम शिव की दया तथा अनुग्रह से इस बन्धन से मुक्ति मिलती है। जब यह बन्धन हट जाता है तब जीव शिव समान होकर उन्हीं का सानिध्य प्राप्त कर लेता है।

---

१. शै० म०, पृ० १६८-१६९

शैव दर्शन के सामान्य दार्शनिक भावों के साथ ही यदि हम कश्मीरी शैव दर्शन का अवलोकन करेंगे तो हमें किसी न किसी रूप में मत भिन्नता दिखाई देगी। जैसे कि कश्मीर दर्शन में शिवा को परम पुरुष अथवा पुरुष की अभिव्यक्ति मात्र माना गया है। शिवा का निवास परम शिव में ही है। इस रूप में शिवा को परम शिव की सृजन-शक्ति कह सकते हैं। इस शक्ति के इस दर्शन में पांच मूल रूप कहे गये हैं। ये हैं- चित् शक्ति अर्थात् परम शिव की आत्मानुभूति की शक्ति, आनन्द शक्ति अर्थात् परम शिव की परमानन्द शक्ति, इच्छा शक्ति अर्थात् परम शिव की वह शक्ति, जिसके द्वारा वह अपने आपको सृष्टि का निर्माण करने के हेतु एक परम इच्छा से युक्त पाते हैं। ज्ञान शक्ति वह शक्ति है जिसके द्वारा परम शिव सर्वज्ञा का सामर्थ्य पाते हैं। और क्रिया शक्ति वह शक्ति है जिसके द्वारा वे अनेक रूप विश्व को व्यक्त करते हैं। शक्ति जब अपना यह सामर्थ्य व्यक्त करती है तब सृष्टि का प्रारम्भ होता है। जीवात्मा सार रूप में परम शिव की अभिव्यक्ति मात्र है और माया द्वारा सीमित है। माया का अर्थ है परम शिव के तिरोभूत हो जाने की शक्ति। भौतिक विश्व की सृष्टि से ठीक पहले परम शिव इस अवस्था को प्राप्त होते हैं। इस अवस्था में परम शिव का जो विश्व से वास्तविक सम्बन्ध है, उसका तिरोभाव हो जाता है और परम शिव अपने आपको काल, नियति, राग, विद्या, कल्प पंचविधा बन्धन में सीमित कर लेते हैं। इसी के साथ जीवात्माओं के रूप में परम शिव अनेक विध हो जाते हैं।[१]

---

१. शै० म०, पृ० १७२-१७३

शैव सम्प्रदाय

शैव सम्प्रदायों का इतिहास और इनके विकास का स्वरूप बड़ा विस्तृत और उलझा हुआ है। वेद काल में जिस रुद्र और शिव के स्वरूप की कल्पना की गई थी, परवर्ती काल में वही एक दार्शनिक विचारधारा के रूप में विकसित हुई और फिर उसने अलग-अलग विचारों के अनुसार अनेक सम्प्रदायों का स्वरूप ग्रहणकर लिया। इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न विद्वानों ने अपने-अपने शोध-आकलनों के अनुसार इन सम्प्रदायों तथा इनकी विचारधाराओं का उल्लेख किया है। कहा जाता है कि प्रथम बार एक शिला लेख में सन् ११२८ ई० में 'श्रावण बेल गोल' नामक शिला लेख में कहा गया है कि जैन सन्त विमल चन्द्र ने शैवों, पाशुपतों, कापालिकों और काम्पिलों को और बौद्धों को परास्त किया था।[1] एक अन्य सन्दर्भ में भी इसी शिलालेख में ऐसा ही उद्धरण है जिसमें यह कहा गया है कि शैवों तथा अन्य सम्प्रदायों को जैनों ने परास्त किया था।[2]

एक अन्य सन्दर्भ इस प्रकार का है जो पतञ्जलि कृत महाभाष्य से सम्बन्धित है, इसमें एक स्थान पर शिव-भागवतों का उल्लेख हुआ है जिससे शिव का तात्पर्य शैव सम्प्रदाय से और भागवत का तात्पर्य वैष्णव सम्प्रदायों से होता है।[3] इसी प्रकार से महाभारत महाकाव्य में एक स्थान पर पाशुपत शैवों का उल्लेख किया गया है जिसे उस समय धर्म-पंचाग में एक माना गया है।

---

१. ए० क० (२) पृ० न० ५४

२. वही, पृ० न० १०५

३. म० भा० अ० ४

४. म० भा० शा० प० ३५९ / ६४

महाभारत के एक अन्य प्रसंग में यह कहा गया है कि स्वयं भगवान् शिव ने पाशुपत सिद्धान्त को प्रकट किया है, जो किसी न किसी अंश में वर्णाश्रम धर्म के अनुकूल है।[1]

पुराणों में भिन्न-भिन्न सन्दर्भों में जो इस सम्प्रदाय के सन्दर्भ में कहा गया है उसके अनुरूप किसी लकुलिन् अथवा नकुलिन् ने लोगों को माहेश्वर अथवा पाशुपत योग सिखाया था। इस लकुलिन् को भगवान् शिव का अवतार और कृष्ण का समकालीन माना जाता है।[2]

बाद के समय में सातवीं शताब्दी में चीनी यात्री ह्वेन सांग ने भारत के अनेक स्थानों की यात्रा की थी और पाशुपत सम्प्रदाय का उल्लेख किया है।[3] इनके अनुसार इस सम्प्रदाय के कुछ अनुयायी भगवान् शिव के मन्दिरों में उपासना करते थे, कुछ मन्दिरों में निवास करते थे और कुछ भ्रमण पर रहते थे। पाशुपत साम्प्रदाय के अनुयायी अपने शरीर पर भस्म धारण करते थे और कुछ जटाएँ रखाकर जटाधारी बन जाते थे। कुछ पाशुपत सम्प्रदाय के अनुयायी ऐसे भी थे, जो वस्त्र धारण नहीं करते थें और वस्त्रहीन की अवस्था में ही भ्रमण किया करते थे।[4]

ह्वेन सांग ने कापालिक आचार्यों का भी उल्लेख अपने भ्रमण में किया है। वे ऐसे साम्प्रदायिक थे, जो अपने शिरो पर अस्थियों की मालाएँ मुकुट रूप में धारण किए रहते थे।[5] और कुछ ऐसे थे, जो अपने गले में मुण्ड माला धारण किए रहते हैं।[6]

---

१. म० भा० शा० २८५।१२४

२. वा० पु० २३।२१७-२१, लिं० पु० २७ २४।१२४-३२

३. TR. (ट.) भा०२, पृ० २५६, २४९

४. वही, पृ० ४५

५. वही, भाग-१, पृ० ५५

६. वही, पृ० ७६

इसी प्रकार से हम एक-दो सन्दर्भ देकर यह देख सकते हैं कि शैव सम्प्रदाय धीरे-धीरे दक्षिण भारत और उत्तर भारत में विस्तार पा रहा था। आचार्य भवभूति ने, जो आठवीं शताब्दी के नाटककार हैं अपने नाट्यग्रन्थ मालती माधव में कापालिक सम्प्रदाय का चित्रण किया है।[1] वे जहाँ उपासना करते थे, वे मन्दिर प्रायः श्मशान भूमि में अवस्थित होते थे। यह भी अनुमान है कि इनके यहाँ नर बलि देने की परम्परा थी, जिससे साधारण जन दूर ही रहते थे।

महाभारत के नारायणी पर्व में जिन मतों का उल्लेख किया गया है उनमें पाशुपत मत का भी उल्लेख किया गया है। वहाँ पर यह सन्दर्भ है कि शिव श्री कण्ठ ने, ज़ो उमा के पति हैं, भूतों के स्वामी हैं, पाशुपत मत का प्रतिष्ठापन किया था।[2]

सर्वदर्शन संग्रहकार ने माहेश्वर सम्प्रदाय का उल्लेख किया है और इसी तारतम्य में डॉ. ऋषि में इसके अनेक भेद लिखें हैं। वे इन भेदों में पाशुपत, शैव, कालामुख और कापालिक नाम के चार भेद लिखते हैं।[3]

एक सन्दर्भ में सभी पक्षों को समेट कर शैव दर्शन की अवधारणाओं को आधार बनाकर इस प्रकार का मत प्रस्तुत किया गया है जिसमें इस सम्प्रदाय के विकास को दिखाया गया है और आठ प्रमुख शाखाओं में बताया गया है। वहाँ पर पाशुपत द्वैतवाद, सिद्धान्त शैव

---

१. भा० भा०, पृ० ५ वाँ आडि·
२. म० भा० शा० ३४९ ।५०
३. स० द० सं०,पृ २९७

द्वैतवाद, लकुलीश पाशुपत द्वैताद्वैतवाद, विशिष्ट द्वैत शैवमत, विशेषाद्वैत अथवा वीर शैवमत, नन्दिकेश्वर शैवमत, रसेश्वर शैवमत और अद्वैतवादी काश्मीरी शैवमत का उल्लेख किया गया है।[1]

आचार्य दास गुप्त शैव दर्शन को तीन मतों में विभाजित मानते हैं और उन मतों को तीन प्रदेशों से सम्बद्ध बताते हैं। उनकी दृष्टि से आगम शैव तमिल प्रदेश से पाशुपत गुजरात से और प्रत्यमिज्ञा दर्शन भारत के उत्तरीय भाग से सम्बद्ध रहा है। वे यह लिखते हैं कि यह एक ऐसा दर्शन है जिसका प्रभाव क्षेत्र बहुत विस्तृत है और प्राचीन काल से भारत में व्याप्त रहा है।[2]

एक विद्वान का यह मत है कि शैव मत तथा शैव दर्शन उत्तरी भारत तथा दक्षिणी भारत दोनों ही क्षेत्रों में समान रूप से प्रभावशाली रहा है। यद्यपि इन दोनों क्षेत्रों के सम्प्रदायों में यत्किंचित मत भिन्नता भी रही है तथापि इन दोनों क्षेत्रों के शैवमतावलम्बियों ने आगमों को प्रमाण माना है। दक्षिणी शैवमत द्वैतवादी शैवमत है जबकि उत्तर भारत में प्रचलित शैवमत, जिसे कश्मीरी शैवमत भी कह देते है, अद्वैतवादी अथवा समन्वयवादी दर्शन रहा है। काश्मीर के विचारकों ने साहित्य, धर्म, दर्शन आदि अनेक क्षेत्रों में अपूर्व योगदान करके यहां की विचारधारा को विकसित किया है और उत्तर भारत की संस्कृति को पुष्ट किया है।[3]

---

१. भा० ३, पृ० ६, १०, २२६
२. L. H. S. S., P. 18, 106
३. बौ० वे० क० द०, पृ० ८

पाशुपत मत और पशुपति

पाशुपति दर्शन की मूल अवधारणा पांच पदार्थों पर आधारित है। ये पांच हैं- कार्य, कारण, योग, विधि और दुःखान्त।[1]

इसमें से कार्य वह है जो स्वतन्त्र नहीं है। यह विद्या, अविद्या और पशु के भेद से तीन प्रकार का है। जो समस्त वस्तुओं की सृष्टि करते हैं और सभी का संहार करने की क्षमता रखते हैं, वे कारण स्वरूप भगवान् शिव हैं। यद्यपि वे एक हैं किन्तु गुण और कर्मों के भेद से वे अनेक रूप वाले हो जाते हैं। चित्त के द्वारा ईश्वर के साथ जीव का सम्बन्ध जोड़ने वाले साधन को योग कहते हैं। यह व्यापार अथवा क्रिया विधि है। जो धर्म सिद्ध कराती है। इसके प्रधान और गौड दो प्रकार के भेद हैं। और दुःखान्त भी दो प्रकार का है। एक अनात्म दुःखान्त और दूसरा सात्म दुःखान्त।

इसमें जो अनात्मक दुःख है उसमें सभी प्रकार के दुःखों का पूर्ण रूप से क्षय हो जाता है। जबकि सात्मक दुःखान्त में ज्ञान और कर्म की शक्ति से युक्त ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। इसमें विशिष्ट रूप से दर्शनीय यह है कि अन्य दर्शनकारों के मत में दुःख क्षय ही मोक्ष है जब कि इस दर्शन में परम शक्तियों की प्राप्ति को भी मुक्ति के साथ जोड़ा गया है। इस मत में कार्य-कारण सिद्धान्त में भी कार्य सत् है। वह असत् नहीं है।[2]

---

१. स० द० सं० , पृ०
२. वै० शै० म०, पृ० १३९-१४२

सर्व दर्शन संग्रह में पशु शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए यह कहा गया है कि पशुत्व जिसमें हो, वह पशु है। अर्थात् जो पुनर्जन्मादि गुणों से आबद्ध होवे, वह पशु है।[1] एक दूसरी व्याख्या में कहा गया है कि पशु शब्द से कार्य का प्रतिपादन होता है। क्योंकि वह परतन्त्र होता है।[2] इस दृष्टि से सभी परतन्त्र पदार्थ पशु कहे जाते हैं। यह पशु दो प्रकार का होता है। एक साञ्जन और दूसरा निरञ्जन। साञ्जन का अर्थ है- शरीर और इन्द्रियों से युक्त। निरञ्जन का अर्थ है- इन्द्रियों और शरीर से रहित। जिसका शरीर और इन्द्रियों से सम्बन्ध हो, वह साञ्जन है।[3] जिसका सम्बन्ध शरीर और इन्द्रियों का न हो, वह निरञ्जन है। जिस सम्बन्ध के द्वारा एक सम्बन्धी के धर्म दूसरे सम्बन्धी में समझे या कहे जाऐं, उस विशेष सम्बन्ध को अञ्जनक कहते हैं। जीव में शरीर और इन्द्रिय के सम्बन्ध से स्थूलत्व काणत्वादि धर्मों का वर्णन होता है, अतः वह साञ्जन है। निरञ्जन उस सम्बन्ध से रहित होता है।

इस अर्थ में जिस प्रकार गाय, बैल आदि हमारे लिए पशु हैं उसी प्रकार से महेश्वर के लिये प्राणिमात्र पशु हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि सभी प्राणियों ज्ञान का अभाव है, पशु की तरह आचरण करता है।[4]

---

१. पशुत्व सम्बन्धी पशुः। स०द० सं०, पृ० ३०९।
२. पशुशब्देन कार्यस्य। परतन्त्रवचनत्वात्तस्य। वही पृ० ३०३।
३. सोऽपि द्विविधः-साञ्जनो निरञ्जनश्चेति।
तत्रसाञ्जनः शरीरेन्द्रि सम्बन्धी। निरञ्जनस्तु तद्रहितः। वही पृ० ३०९
४. वही पृ० २९९

शैव दर्शन नामक एक सम्प्रदाय की चर्चा सर्वदर्शन संग्रहकार ने और की है तथा इसके विषय में यह कहा गया है कि यह दक्षिण में ही प्रतिष्ठित है। इसका विपुल साहित्य तमिल भाषा में है जिसके अनेक पुष्ट प्रमाण हैं।[1] इस दर्शन में पशु, पाश और पति के विषय में विचार करते हुये यह कहा गया है कि इनका क्रम पति, पशु और पाश के क्रम से होना चाहिये।[2]

इस दर्शन में पति पदार्थ से शिव का अभिमत है और इसमें विद्येश्वर आदि भी सम्मिलित हैं किन्तु विद्येश्वरादि को स्वतन्त्रता नहीं है क्योंकि ये कारण के अधीन हैं।[3]

पशु तीन प्रकार का कहा गया है- विज्ञानाकल, प्रलयाकल और सकल। इनमें से पहला केवल मल से युक्त रहता है। प्रलयाकल में प्रलय के द्वारा कलादि का विनाश होता है। इसमें मल के साथ कर्म रहता है। सकल पशु वह है जिसमें मल, माया और कर्म तीनों के बन्धन रहते हैं।[4]

पाश पदार्थ के विषय में यह कहा गया है कि ये चार प्रकार के हैं- मल, कर्म, माया और रोधशक्ति। इनमें से कुछ विद्वान् पाँच प्रकार के पाश भी गिनाते हैं।[5]

इस प्रकार से पशु चार प्रकार के पाशों से आबद्ध रहता है और वह पति के अधीन होने पर तन्त्र है। पशुपति ही परम स्वतन्त्र है।

---

१. स० द० स०, पृ० ३२१ ।

२. वही० पृ० ३२२

३. तत्र पति पदार्थः शिवोऽभिमतः । मुक्तात्मनां विद्येश्वरादीनां च यद्यपि शिवत्वमस्ति, तथापि परमेश्वरपारतन्त्र्यात् स्वातन्त्र्यं नास्ति। वही, पृ० ३२३।

४. वही पृ० ३३५।

५. वही पृ० ३३९।

कापालिक

आठवीं शताब्दी के नाटककार भवभूति ने अपने एक नाटक मालती माधव में इस सम्प्रदाय का संकेत किया है।[1] उन्होंने जो संकेत किया है उसके अनुसार इस सम्प्रदाय में दीक्षित मन्दिरों में उपासना करते थे और इनके मन्दिर श्मशान भूमि में होते थे। इनकी परम्परा में नरवलि दी जाती थी और इनका यह कार्य गर्हित होता था। जिससे सामान्य जन इनसे दूर ही रहा करते थे। इस सम्प्रदाय के लोग यह मानते थे कि उनमें ऐसी लोकोत्तर शक्तियाँ हैं, जिन्हें इन्होंने अपने बल से प्राप्त किया है। इस सम्प्रदाय की एक विशेष परम्परा यह भी थी कि इसमें स्त्रियाँ भी सम्मिलित हो सकती थीं। वे पुरुषों के सदृश ही अपनी वेश-भूषा धारण करती थीं और वर्ण-भेद से ऊपर होती थीं।

सन् ११२८ ईस्वीय के श्रावण बेलगोल शिलालेख में सन्त अकलंक के नाम से बौद्धों के प्रति उनके द्वेष का संकेत है, इसी में एक स्थान पर यह कहा गया है कि जैन सन्त विमलचन्द्र ने शैवों, पाशुपतों, कापालिकों और बौद्धों को पराजित किया था।[2] इनका उल्लेख एक स्थान पर और किया गया है।[3]

कापालिक आचार्यों के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि ये कण्ठिका, रुचक, कुण्डल, शिखामणि, भस्म और यज्ञोपवीत धारण करते थे, जिससे इन्हें यह विश्वास था कि जन्म-मरण से मुक्तहो जावेंगे।[4] इसी तरह से इनका विश्वास था कि नरकपाल में भोजन करने, शरीर पर भस्म धारण करने,भस्म खाने, लगुडधारण करने, सुरापात्र रखने, सुरापात्र में भैरव की पूजा करने से लौकिक-अलौकिक इच्छाओं की पूर्ति होती है।[5]

---

१. मा० मा०, पृ० ३३

२. ए० क० (२), न० ५४

३. वही , (३) न० १०५

४. वै० शै० धा० म०, पृ० १४५

५. वही, पृ० १४५

पति शब्द से कारण का बोध होता है। क्यों कि ईश्वर शासन करने वाला पति है, इसलिये वह संसार का एक मात्र कारण है। कहा यह गया है कि जिस प्रकार पशु अपने स्वामी के आधीन होते हैं, उसी प्रकार 'पशु' अपने पति ईश्वर के आधीन हैं। चिदात्मक अथवा अचिदात्मक सभी पदार्थ पशु हैं जिनका कारण स्वतन्त्र परमेश्वर है। परतन्त्र सदास्वतन्त्र के आधीन रहता है।[1]

सर्व दर्शन संग्रहकार ने अपना यह मत व्यक्त किया है कि जो कुछ भी अस्वतन्त्र है, वह सब कार्य कहा जाता है। वह तीन प्रकार का है- विद्या, कला और पशुरूप।

जो जीव जडवर्ग है, वह अपने-अपने गुणों के साथ कभी स्वतन्त्र नहीं हैं। गुण अपने-अपने आश्रयों के अधीन हैं। जीवों में भी एक दूसरे की पराधीनता देखी जाती है। जैसे कि स्त्री पति के अधीन होती है, सेवक अपने स्वामी के अधीन होता है, प्रजा राजा के अधीन होती है। किन्तु परमेश्वर के अधीन सभी हैं। पाशुपत दर्शन में जीवों को पशु कहा गया है इसलिए जो पशुओं का स्वामी है, वह पशुपति है।[2]

सभी वस्तुओं की सृष्टि, संहार और अनुग्रह करने वाले तत्त्व को कारण (ईश्वर) कहते हैं। यह तत्त्व यद्यपि एक तथापि गुण और कर्म के भेदों की अपेक्षा से इसके अनेक भेद भी कहे गये हैं।[3] इस रूप में जो संसार पशुत्व है उसका सर्वतोभावेन नियन्त्रक पशुपति है।

---

१. स० द० सं०, पृ० ३०४

२. अस्वतन्त्रं सर्वं कार्यम्। तत्त्रिविधम्-विद्या कला पशुश्चेति। वही० पृ० ३०७

३. वही, पृ० ३१०

वीर अथवा लिंगायतमत

लिंगायत अथवा वीर सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव कब हुआ और कहां हुआ-इसका निश्चय अभी तक नहीं हो सका है। इतना अवश्य कहा गया है कि लिंगायत मत बहुत अधिक प्राचीन नहीं है क्योंकि इसका उल्लेख प्राचीन ग्रन्थों में नहीं हुआ है। एक प्रसिद्ध विद्वान ने यह मत व्यक्त किया है कि इस दर्शन में स्थल, अंग और लिंग जैसे शब्दों के प्रयोग किए जाने के कारण इसकी अर्वाचीनता सिद्ध है।[१]

बासव पुराण नामक एक पुराण का सन्दर्भ अनेक इतिहासविद् इस सन्दर्भ में देते हैं कि इस पुराण में जो कथा दी गई है उसके अनुसार बसव को इस सम्प्रदाय का संस्थापक कहा गया है किन्तु यह सिद्धान्त स्वीकृत नहीं है। इनके सम्बन्ध में केवल इतना कहा जा सकता है कि ये इस सम्प्रदाय के कट्टर समर्थक थे।[२]

वसव पुराण में जो कथा इस सम्प्रदाय के उद्भव के सम्बन्ध में दी गई है इसके अनुसार यह कहा जाता है कि नारद जी शिव के समीप गए तथा इनसे बोलें कि पृथ्वी पर विष्णु के भक्त, यज्ञ और धर्म के अनुयायी हैं तथा जैन, बौद्ध आदि भी हैं किन्तु आपके अनुयायी नहीं हैं। इस पर शिव ने कहा कि मैं अपने धर्म के समुन्नति तथा वीर शैवों के प्रयोजन की सिद्धि के निमित्त पृथ्वी पर अवतार लूँगा। सम्भवतः तभी से इस सम्प्रदाय का प्रचलन हुआ हो, किन्तु यह मत भी बहुतायत से मान्य नहीं है।

---

१. शै. म., पृ. १५९, वही. पर भण्डारकर का मत दृष्टव्य
२. वै. शै. धा. म., पृ. १५०

वीर शैवमत में दीक्षा विधान का वर्णन किया गया है। जब कोई व्यक्ति गुरु से दीक्षा लेता है तो जल से भरे हुए चार कलश चार दिशाओं में और एक कलश मध्य में रखता है। मध्य में रखा गया कलश गुरु का होता है। चारअन्य कलश चार आचार्यों के नाम के होते हैं जो रेवण सिद्ध, मरुल सिद्ध, एकोराम एवं पण्डिताराध्य के सम्प्रदायों के होते हैं। ये सभी मठों से सम्बद्ध होते हैं। यह सूची वीर शैवाचार प्रदीपिका में भी दी गई है।[1] इन पाँच आचार्यों में कम से कम तीन आचार्य वसव से पूर्व के आचार्य हैं जो यह संकेत करते हैं कि वसव इस सम्प्रदाय के आदि संस्थापक आचार्य नहीं हैं।

इस सम्प्रदाय के सिद्धान्त के अनुसार ब्रह्म शिवतत्त्व है जो स्थलकहलाता है। महत् आदि परब्रह्म या शिवतत्त्व में स्थित हैं तथा उसी में लीन हो जाते हैं। इसमें प्रकृति तथा पुरुष से समुद्भूत विश्व सर्वप्रथम स्थित होता है। और सबके अन्त में लय हो जाता है। अतएव इसे स्थल कहते हैं। अपनी शक्ति में क्षोभ उत्पन्न होने पर वह स्थल दो भागों में विभक्त हो जाता है। एक का नाम है-लिंग स्थल और दूसरे का नाम है- अंग स्थल। लिंग स्थल शिव यारुद्र हैं तथा यह पूज्यनीय और उपास्य है। अंग स्थल पूजक या उपासक जीवात्मा है। इसी तरह से शक्ति अपनी इच्छा से दो भागों में विभक्त होती है। एक भाग शिव पर आश्रित है वह कला कहलाती है और दूसरा भाग जीवात्मा पर आश्रित होती है जो भक्ति कही जाती है।[2]

---

१. वै. शै. धा. म., पृष्ठ १५२, वी. शै. प्र., पृ. ३३-३७
२. वही, पृ. १५३

लिंग साक्षात् शिव है। लिंग स्थल के तीन भेद हैं - भाव लिंग, प्राणलिंग तथा इष्ट लिंग। भावलिंग कलाओं से रहित है तथा श्रद्धा द्वारा देखा जा सकता है। यह देशकाल से अपरिछिन्न है सूक्ष्म है तथा परम से भी पर है। प्राणलिंग मनोग्राहय है तथा सकल एवं निष्कल भेद से दो प्रकार का है। इष्ट लिंग भी सकल और निष्कल है किन्तु चक्षुग्राहय है। वह इष्ट इसलिए कहा जाता है क्योंकि वह समस्त इष्ट पदार्थों को प्रदान करता है।

प्राण लिंग परमात्मा का चित् है तथा इष्ट लिंग आनन्द है। भाव लिंग परम तत्त्व है, प्राण लिंग सूक्ष्म रूप है तथा इष्ट लिंग स्थूल रूप है। तीनों लिंग आत्मा, चैतन्य एवं स्थूल रूप हैं। ये तीनों लिंग क्रमशः प्रयोग, मन्त्र एवं क्रिया से विशिष्ट होकर कला, नाद और विन्दु का रूप धारण करते हैं।[1]

वीर शैवों में इनका जो दीक्षासंस्कार होता है, उसमें ये ओम् नमः शिवाय मन्त्र का प्रयोग करते हैं और यज्ञोपवीत के स्थान पर लिंग धारण करते हैं। दीक्षा के अवसर पर गुरु अपने बाएँ हाथ में एक लिंग दर्शन कराता है। इसके पश्चात् गुरु शिष्य को यह आदेश प्रदान करता है कि शिष्य इस लिंग को कौशेय वस्त्र में बाँध कर गले में धारण करें और इसे अपनी आत्मा जैसा मानें।[2]

---

१. वै. शै. धा. म., पृ. १५४
२. वही, पृ० १५८

लिङ्‌यत संप्रदाय के विषय में यह कहा जाता है कि इसका उदय सम्भवतः ब्राह्मणवाद की शक्ति के प्रति ईर्ष्या तथा विरोध की भावना से हुआ इसलिये यह कहा जाता है कि जो उत्साही और अकुलीन ब्राह्मण थे, उन्होंने न केवल इस सम्प्रदाय को बढ़ाया अपितु इसके विस्तार एवं परिष्कार में भी महत्वपूर्ण योगदान किया। यह अवश्य हो सकता है कि ऐसा करने में और इसका नेतृत्व करने में ब्राह्मण ही अग्रगण्य रहे हों। यद्यपि प्राचीन शैव परम्परा में बहुत कुछ सुधार इस सम्प्रदाय ने नहीं किया और अपना एक अलग सम्प्रदाय ही बना लिया इस प्रकार के विचार देते हुए यह कहा गया है कि सभी के सभी लिंगायत सम्प्रदाय के मानने वाले न तो नीची जाति के थे और न ही वे सभी शूद्र थे। उनमें अवश्य ही तत्कालीन समाज की श्रेष्ठ जातियां सम्मिलित थीं। लिंगायत सम्प्रदाय के दो प्रमुख वर्गों का यह दावा है कि वे लिंगि ब्राह्मण अर्थात् लिंग धारण करने वाले ब्राह्मण हैं। इनमें जो जंग हैं, वे अपनी उत्पत्ति उन पांच आचार्यों से मानते हैं जिनकी पूजा धार्मिक अवसरों पर की जाती है। इनके दूसरे वर्ग पंचमों के विषय में यह कहा जाता है कि ये वैश्य परम्परा के थे। वे व्यापार और खेती में प्रवृत्त थे। क्योंकि वैश्य भी द्विजाति हैं, इसलिये इन्हें भी लिंगि-ब्राह्मण वर्ग में माना जाता है।

इस दर्शन का यह सिद्धान्त है कि मूल सत्ता अपनी आन्तरिक शक्ति के सामर्थ्य से द्विधा विभाजित हो जाती है। इसका यह द्विधा रूप ईश्वर और जीवात्मा के स्वरूप में देखने को मिलते हैं। ईश्वर के छह स्वरूप होते हैं जिनमें प्रथम होता है अनन्त सत्ता का स्वरूप जो सभी प्रकार से पूरी तरह से स्वतन्त्र होता है। दूसरा स्वरूप वह होता है जिसकी हम सृष्टि करते हुए कल्पना करते हैं। इसका तीसरा स्वरूप वह होता है जिसकी कल्पना भौतिक जगत् से भिन्न रूप में की जाती है। इसका चतुर्थ स्वरूप वह है जो शरीर रूप है किन्तु यह अप्राकृतिक अथवा दिव्य है। पांचवां स्वरूप वह है जिसमें मानव जाति का उपदेश होता है। छठवें स्वरूप में वह तब तक जीवात्मा के समस्त कर्मों का उपदेश करता है जब तक जीवात्मा मुक्त नहीं हो जाता। इसी रूप में शिव को समुद्धर्ता के रूप में माना जाता है।

जीवात्माओं की विशेषता उसकी भक्ति है। इस स्थिति में जीवात्मा की प्रवृत्ति ईश्वराभिमुखी होती है जिसकी तीन अवस्थायें कही गई हैं। इसी के अनुरूप अंगस्थल के भी तीन विभाग हैं। इसका एक विभाग योगांक कहलाता है, द्वितीय विभाग भोगांक कहलाता है और तृतीय विभाग त्यागांक कहलाता है।

योगांक के द्वारा व्यक्ति शिव -सानिध्य का आनन्द प्राप्त करता है जबकि भोगांक के द्वारा व्यक्ति शिव के साथ भोग करता है। त्यागांक की स्थिति में यह जो क्षण भंगुरता अथवा जगत् की नश्वरता है उसका परित्याग करता है। शिव दर्शन के शास्त्रों में यह प्रतिपादन किया गया है कि योगांक का सम्बन्ध उस आस्था से है जिसमें सभी कुछ कारण में लय हो जाता है तथा सुषुप्ति की अवस्था प्राप्त हो जाती है।[१]

---

१. वै. शै. धा. म., पृ. १५५

भोगांक का सम्बन्ध सूक्ष्म शरीर से बताया गया है। त्यागांक का सम्बन्ध स्थूल शरीर एवं जाग्रत स्थिति से है, योगांक के ऐक्य तथा शरण नामक दो भेद किए गए हैं। इनमें से सम्पूर्ण संसार के मिथ्या स्वरूप का बोध हो जाने पर शिव के आनन्द स्वरूप में सम्मिलित हो जाना ऐक्य है। इस ऐक्य के स्वरूप को समरसा भक्ति कहा जाता है और इसमें से यह माना जाता है कि ईश्वर और आत्मा आनन्दानुभूति की अवस्था में एक हो जाते हैं। दूसरी अवस्था यह कही गई है जिसमें पुरुष अपने अन्दर तथा बहर सर्वत्र लिंग का दर्शन करता है। यह पुरुष के लिए स्वयं की आनन्द की अवस्था होती है। इस अवस्था को शरणभक्ति की अवस्था कहते हैं। इस अवस्था को दो प्रकार का बताया गया है। एक प्राणलिंगी और दूसरा प्रसादी। पहली अवस्था में भक्त के द्वारा सभी प्रकार की आसक्तियों का परित्याग कर देना, अहंकार का परित्याग कर देना, और शिव तथा लिंग में सम्पूर्ण मन लगा देना सम्मिलित है। भक्ति की द्वितीय अनुभूति तब होती है जब व्यक्ति महेश्वर अथवा लिंग के लिए संसार के समस्त पदार्थ का त्याग कर देता है। तब उसे प्रसाद प्राप्त हो जाता है।

इसी प्रकार से त्यागांक के भी दो भेद होते है। इसका भाग महेश्वर भाग है। जिसमें ईश्वर की सत्ता में दृढ़ विश्वास होता है। इस स्थिति में वह व्रतों, नियमों और नैतिक वाद का आचरण करता है। यर्थाथ रूप में तो भक्त वह है जो संसार के उन सभी पदार्थों से अपने को दूर रखने का प्रयत्न करता है, जो पदार्थ उसे जीवन में किसी न किसी प्रकार से अपनी ओर आकर्षित करते हैं। वह संसार से विरक्त होकर भक्ति में लीन हो जाता है।[१]

---

१. दृष्टव्य- अ. सू.

लिंगायतों का सर्वोकृष्ट वर्ग उन लोगों का है, जो स्वयम् को लिंगि ब्राह्मण कहते हैं और अन्य जो है वे उनका अनुकरण करते हैं। इनको ब्राह्मण के रूप में जाना है और मुख्य रूप से इनके दो वर्ग हैं। एक वर्ग आचार्य कहा जाता है और दूसरा वर्ग पंचम कहलाता है। मूल रूप से आचार्यों में भी पाँच आचार्यों का परिचय मिलता है। इन्हीं पाँच आचार्यों से सम्पूर्ण आचार्य वर्ग की उत्पत्ति हुई- ऐसा माना जाता है। इन पाँचों आचार्यों के पाँच गोत्रों का नाम भी प्रचलित है। इनमें वीर, नन्दी, वृषभी, भृंगी और स्कन्द गोत्र गिने जाते हैं। ये सभी मूल रूप से शिव के ही समान श्रेष्ठ हैं। पंचम वर्ग को किसी न किसी एक आचार्य के साथ जोड़ा जाता है। गुरु का गोत्र ही उसका गोत्र होता है और सगोत्र में विवाह का निषेध होता है। अर्थात् कोई एक गोत्र का अपने ही गोत्र में विवाह नहीं कर सकता है।

एक अन्य जो विवरण प्राप्त है उसके अनुसार लिंगायतों को चार भागों में बाँटा जाता है, ये चार भाग हैं- जंगम, शीलमन्त्र, वणिक् तथा पंचमशाली। इनमें से शीलमन्त्र तथा वणिक् श्रेणियाँ सम्बद्ध व्यवसाय की जीवन पद्धतियों पर जीते हैं। इसलिए व्यवसाय से सम्बद्ध इनकी दो ही जातियाँ हैं। अचार्य श्रेणी के लोग जंगम कहे जाते हैं। इनमें जो विरक्त होते हैं वे सन्यास का जीवन जीते हैं। ये मठ भी बनाते हैं और मठों में रहकर वहाँ पूजा-उपासना करते हैं। आचार्यों में ही एक वर्ग ऐसा भी हैं जो पौरोहित्य कर्म करता है और सभी प्रकार के संस्कार संपादित कराता है। ये विवाह करके विधिवत गृहस्थ जीवन व्ययीत करते हैं। यदि सम्प्रदाय के मत में किसी प्रकार का भ्रम होता है तो मठ में उसका निर्णय किया जाता है और वह सभी को मान्य होता हैं। लिंगायत मांस-मदिरा का सेवन नहीं करते और विधवाओं को पुनर्विवाह की अनुमति देते हैं।[१]

---

१. वै. शै. धा. म., पृ. १५७-१५८

काश्मीरी शैव दर्शन

धर्म और दर्शन के रूप में भारतीय आध्यात्मिक चिंतन की दो धाराएँ समान रूप से बहती हैं। ये दोनों धाराएँ कभी साथ-साथ प्रवाहित होती हैं तो कभी-कभी भिन्नता दिखाई देती है। इनका ऐक्य कभी-कभी तो इतना एकाकार स्वरूप वाला हो जाता है कि इन दोनों के बीच विभाजक रेखा असम्भव होती है। जिस चिन्तन अथवा रचना को धर्म-चिन्तन कहा जाता है, वह दार्शनिक भी होती है और जिसे दार्शनिक कहा जाता है, वह धार्मिक भी होती है। यह भारतीय चिन्तन की विलक्षणता है कि यहाँ धर्म की व्याख्या में दर्शन स्वयं ही व्याख्यात हो जाता है और दर्शन की आत्मा में धर्म अनुस्यूत होता है।

कश्मीर प्रारम्भ से ही धर्म और उपासना का स्थल रहा है। यहाँ के जन-समाज में प्रारम्भ से ही अनेक देवी-देवताओं की पूजा की परम्परा रही है। एक विद्वान् ने ऐतिहासिक तथ्यों पर यह मत दिया है कि यहाँ तीसरी और चौथी शताब्दी में नाग पूजा का प्रचलन प्रमुखता से था। प्रथम शताब्दीं से सातवीं शताब्दीं तक अन्य मतों की अपेक्षा यहाँ बौद्ध धर्म अधिक प्रचलन में था। बाद में शनैःशनैः जब बौद्ध धर्म का ह्रास होने लगा तो इसके दार्शनिक चिन्तन पर भी इसका प्रभाव पड़ा। आचार्य शंकर ने अपने प्रबल मत अद्वैत वाद से इस दर्शन को अत्यधिक प्रभावित किया। बौद्ध मत की दार्शनिक दुरवस्था में शैवमत ने भी धीरे-धीरे कश्मीर में अपना स्थान बनाना शुरु कर दिया। बाद में शैव मत में दार्शनिक प्रवृतियों का प्रचार-प्रसार हुआ और तब शैव मत अपने विविध दार्शनिक दृष्टिकोण लेकर यहाँ आया और इनमें से कश्मीरी शैव दर्शन एक पुष्ट दर्शन के रूप में खड़ा हुआ।

---

१. एन. एस. एस. पी., पृ. ११

निश्चयात्मक रूप से यह कहना तो कठिन है कि कश्मीर में शैव दर्शन अथवा शैव धर्म कब से प्रारम्भ हुआ किन्तु यह कहा जा सकता है कि कश्मीर में प्रचलित अद्वैतवादी शाखा ही कश्मीरी शैव दर्शन की प्रमुख शाखा है। इसके साथ ही यह भी कहा जा सकता है कि जैसे यहाँ पर अद्वैतवादी शाखा प्रतिष्ठित हुई, उसी तरह से यहाँ द्वैतवादी शाखाओं का प्रचार पर्याप्त रूप में रहा है।[1] एक विद्वान् का तो यह मत है कि अद्वैतवादी शाखा की अपेक्षा द्वैतवादी शाखा कश्मीर में पूर्व से विद्यमान थी।[2] यह भी कहा गया है कि कश्मीर में द्वैतवादी और अद्वैतवादी विचारधाराएँ समान रूप से पुष्पित और पल्लवित हुई।[3]

शैवधर्म के वैसे तो अनेक पक्ष हैं किन्तु जिस पक्ष ने कश्मीर शैव दर्शन को सर्वाधिक प्रभावित किया और जो अद्वयवाद का मूल स्वरूप निर्धारित हुआ, वह है शिव और शिवा को अभिन्न मानना। इस सिद्धान्त में व्यवहार के स्तर पर भले ही शिव और शिवा भिन्न हों किन्तु पारमार्थिक रूप में शिव-शिवा से भिन्न नहीं हैं और शिवा शिव से भिन्न नहीं हैं। ये दोनों ही शाश्वत रूप से अभिन्न हैं जिसमें शिव और शिवा को भिन्न-भिन्न करके नहीं देखा जा सकता। काश्मीरी शैव दर्शन में यह मान्यता प्रकाश और विमर्श अथवा शिव एवं शक्ति के एकत्व के रूप में प्रतिष्ठित हुई। इसमें कहा गया कि शिव और शक्ति में सार्वकालिक अभिन्नता है। न शिव शिवा से भिन्न हैं और न शिवा शिव से भिन्न हैं। इसी रूप में शिव दर्शन में अर्द्ध नारीश्वर अथवा अर्द्ध नटेश्वर की धारणा का भी विकास हुआ। इसमें पुरुष और प्रकृति को अभिन्न मानने की धारणा पुष्ट हुई।

---

१. भ्रा० (३), पृ० १७

१. **C.K. ,P. 107**

१. भा० (प्रा०), पृ० १७-१८

भारतीय शास्त्र परम्परा श्रुति, स्मृति, पुराण और तन्त्र के रूप में चार भागों में विभक्त है। आगम तन्त्रों का एक भाग है। सम्पूर्ण शैव दर्शन की मान्यताओं का मूल आधार तन्त्र और आगम है। शैव दर्शन के लिए तन्त्र और आगम उतने ही महत्व पूर्ण हैं जितने महत्व पूर्ण वैदिक ग्रन्थ वैदिक परम्परा के लिए हैं। वेद वाङ्मय की भांति आगम ग्रन्थों को भी अपौरुषेय माना जाता है। इनके विषय में भी रचनाकार, काल और स्थान का निर्णय करना कठिन है। एक दक्षिणी सन्त विद्वान ने यह मत दिया है कि वेद और आगम दोनों ही सत्य हैं क्योंकि दोनों ही ईश्वर की वाणी हैं। वे एक-दूसरे के पूरक हैं विरोधी नहीं हैं। वे अपना मत देते हुए यह कहते हैं कि प्रथम वेद को आप सामान्य मानिए और दूसरे को विशेष। वे कहते हैं कि वेदान्त और सिद्धान्त में जब कोई भेद होता है तब परीक्षण करने पर इनमें कोई अन्तर नहीं मिलता है। वेद यदि गौ हैं तो आगम उनका दूध।[१] इस रूप में जब आगम ग्रन्थों की प्रामाणिकता कही जाती है तो हमें यह जान लेना चाहिए कि इन ग्रन्थों में शैव धर्म के एक विशिष्ट पक्ष का निरूपण किया गया है जो इसका दार्शनिक पक्ष भी है।

तन्त्र और आगम यद्यपि शैव दर्शन को अपना वैचारिक आधार देते हैं तथापि इनका झुकाव दर्शन की ओर न होकर शैव धर्म की उपासना पद्धति की ओर अधिक है। आगम ग्रन्थों में यह एक विशेष स्थिति अवश्य देखने को मिलती है जिसके अनुसार इनमें विभापाद जोड़ा गया है औरउसमें दर्शन के विविध पक्षों का विवेचन किया गया है। इन पादों में सर्वत्र धर्म की मान्यताओं की अवधारणा के साथ-साथ दार्शनिक पृष्ठभूमि पर विचार किया गया है। इस विचार में शिव और शक्ति की एकता का विचार ही सर्वत्र दिखाई देता है जो शैव दर्शन की विचार सरणि का आधार है।

---

१. शै० म०, पृ० १६७

आगम ग्रन्थ शैव दर्शन के लिए उसी प्रकार से मान्य हैं जैसे विविध दर्शन-पन्थों के लिए उपनिषद् ग्रन्थ मूल्यवान हैं। जैसे उपनिषदों के विविध वाक्यों तथा मान्यताओं को आधार बनाकर औपनिषिदिक दर्शनों में विविध पन्थ हो गए उसी तरह से शैवागमों के विविध प्रकार के व्याख्यानों से इस दर्शन के विविध सम्प्रदायों का आविर्भाव हुआ। इस रूप में शैव दर्शन भी द्वैतवादी, द्वैताद्वैतवादी और अद्वैतवादी शाखाओं में विभाजित हुआ है। इस रूप में इस दर्शन की अनेक शाखाओं का उल्लेख भिन्न-भिन्न विद्वानों द्वारा भिन्न-भिन्न संख्या में किया जाता है। एक विद्वान ने शैव दर्शन की आठ प्रमुख शाखाओं का उल्लेख किया है। ये शाखायें हैं- पाशुपत द्वैतवाद, सिद्धान्त शैव द्वैतवाद, लकुलीश पाशुपत द्वैताद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैत शैवमत, विशेषाद्वैत अथवा वीर शैवमत, नन्दिकेश्वर शैवमत, अद्वैतवादी काश्मीरी शैवमत।[१]

एक दूसरे इतिहासकार विद्वान् का यह अभिमत है कि शैवदर्शन से सम्बन्धित सम्प्रदायों को स्थान विशेष से जोड़कर देखा जाना चाहिए। अर्थात् इनके अनुसार दक्षिण, पश्चिम और उत्तर भारत में जिस प्रकार से शैव मतों का प्रचार हुआ, उसी रूप में इनको देखा जाना चाहिए। जैसे कि तमिल प्रदेश में जिस शैव धर्म का प्रचार-प्रसार हुआ, वह आगम शैव कहा जा सकता है। इसी प्रकार से गुजरात क्षेत्र में जिस शैव मत का पल्लवन हुआ, वह पाशुपत मत है। भारत के उत्तरी क्षेत्र में, विशेषतः कश्मीर प्रदेश में प्रत्यभिज्ञा का उदय और विस्तार हुआ। इस रूप में शैव मत की तीन शाखायें ही मानी जा सकती हैं।[२]

---

१. भा० (३), पृ. ६
२. **L. H.S.S., P. 18**

एक विद्वान का कहना है कि काश्मीर दर्शन की दो शाखाऐं हैं- एक स्पन्द शाखा और दूसरी प्रत्यभिज्ञा शाखा। दोनों ही शाखाओं के विचार का आधार अद्वैतवादी शैवतन्त्र है। दोनों शाखाओं की विचार सरणि में साम्य भी है। जगत् और इसके कारण तथा जीव एवं परमतत्त्व के स्वरूप के विषय में दोनों ही शाखाओं के विचार समान हैं। परम तत्त्व की अनुभूति के विषय में दोनों में मतभेद हैं। स्पन्द शाखा के अनुयायियों का यह कथन है कि साधक को पहले भैरव या महेश्वर का चित्त में दर्शन होता है और फिर समस्त मलों की निवृत्ति होती है। इसी के बाद परमेश्वर का साक्षात्कार होता है। प्रत्यभिज्ञा मतवादियों का यह कथन है कि जीव का स्वयम् ईश्वर रूप में प्रत्यभिज्ञान करना ही शिव के साक्षात्कार का साधन है।[1]

एक अन्य विद्वान् काश्मीरी शैव दर्शन की तीन शाखाओं का वर्णन करते हैं। इनके नाम हैं- क्रम, कुल एवम् प्रत्यभिज्ञा इन तीनों शाखाओं में से क्रम शाखा को प्राचीनतम शाखा कहा जाता है क्योंकि इसका आरम्भकाल सातवीं शताब्दी का अन्तिम समय अथवा आठवीं शताब्दी का प्रारम्भ काल माना जाता है। प्रत्यभिज्ञा शाखा के दार्शनिक आचार्य सोमानन्द ने कुल दर्शन की एक रचना परात्रिंशिका पर एक वृत्ति लिखी है। इससे यह प्रमाणित होता है कि कुल शाखा से पूर्व की शाखा है। आचार्य यह भी लिखते हैं कि इन तीनों शाखाओं के मतों में साम्यतथा वैषम्य भी है। इनमें से प्रति शाखा का अपना पृथक्-पृथक् इतिहास है और इनकी गुरु परम्परा भी है। इनमें से प्रत्येक के आचार्य अपने-अपने मत व्यक्त करते हैं जिनमें परस्पर साम्य भी है और परस्पर वैषम्य भी है।[2]

---

१. बौ० वे० का० शै० , पृ० ९-१०

२. **A. H.P. , P. 543, 461**

कश्मीरीय शैवदर्शन के सिद्धान्त

शिव की जो भी परमशक्तियाँ हैं, उनमें इच्छा, ज्ञान और क्रिया शक्तियाँ प्रमुख हैं। शिव की जो एक प्रमुख शक्ति क्रिया शक्ति है, उसी से यह जगत् आभासित होता है अर्थात् अपनी स्थिति पाता है। इस शक्ति के तीन पक्षों का आख्यान शास्त्रों में किया गया है। ये तीनो हैं- भेदाभेद, मानतत्पलमेय और कार्यकारण। इन तीनों में भी भेदाभेद को प्रमुख इसलिए कहा गया है क्योंकि यही अन्य दोनों में भी व्याप्त रहता है। इस दर्शन में जो सम्बन्ध का सिद्धान्त कहा गया है, वह भेदाभेद का ही नियम है। इन तीनों से सम्बद्ध जो क्रियाशक्ति है, उसी से लोक व्यवहार चलता है।[1]

इस दर्शन की यह मान्यता है कि शिव की निर्माण शक्ति सत्य है। इसलिए इस शक्ति के द्वारा जो निर्मित है वह जगत् भी सत्य है। इस जगत् के घट-घट आदि को इसलिए सत्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि इनकी उत्पत्ति में शिव की सत्य निर्माण शक्ति हेतु है। हेतु और कार्य में भिन्नता सम्भव नहीं है। इसी तरह से इस दर्शन के दर्शनकार यह भी मत उपस्थित करते हैं कि भेदाभेद अथवा सम्बन्ध का नियम भी सत्य है। क्योंकि यह सम्बन्ध उसी परमेश की स्वतंत्र इच्छा का आभास है। इतना अवश्य है कि यह सम्बन्ध घट और पट की भांति बाह्य नहीं है। यह अनुभवकर्ता के अनुभव में है। सम्बन्ध के इस अस्तित्व को इसलिए अस्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि इसका अनुभव सभी को सभी समय में होता है। इसमें किसी भी प्रकार का देश-काल बाधक नहीं है।[2] इसी कारण से यह कल्पित और अयथार्थ नहीं है।

---

१. भेदाभेदात्मसम्बन्धसहसर्वार्थसाधिता।
लोकयात्राकृतिर्यस्य........।। सं०सि०-१

२. ई.प्र.वि. (२), पृ० २/७

सम्बन्ध के विषय में यह कहा जाता है कि इसकी पारमार्थिक स्थिति को लेकर अवश्य ही भ्रम हो सकता है अथवा द्विविधा हो सकती है किन्तु इसके व्यवहारिक स्वरूप के सम्बन्ध में किसी प्रकार के भ्रम की सम्भावना नहीं है क्योंकि इसके दैनिक व्यवहार से इसकी सत्ता स्वतः सिद्ध है। आचार्य अभिनव गुप्त का यह मत है कि सम्बन्ध व्यवहारिक जीवन का सत्य है और यह लोक-व्यवहार का मूल है। जिस तरह से लोक-व्यवहार को उपेक्षित नहीं किया जा सकता और न उसकी उपेक्षा से जीवन-व्यवहार चल सकता है उसी तरह से सम्बन्ध की सत्ता की अस्वीकृति से लोक-व्यवहार भी नहीं चल सकता। यह व्यवहारिक जीवन का मर्म है।[1]

काश्मीरी शैवदर्शन में दो प्रकार के सम्बन्धों की चर्चा की गई है। एक प्रकार का सम्बन्ध है कार्य-कारण भाव का सम्बन्ध और दूसरे प्रकार का सम्बन्ध है- ज्ञाप्यज्ञापकभाव सम्बन्ध।

कार्य-कारण के सम्बन्ध में काश्मीरी शैवदर्शन की यह दृष्टि है कि कर्तृकर्मभाव ही कार्यकारण भाव है। इस दर्शन की पारिभाषिक शब्दावली में कार्य को कर्म कहा जाता है क्योंकि वह कर्ता की ही कृति है। कारण के लिए कर्ता शब्द का प्रयोग कर यह दर्शन कर्ता में पूर्वतः अभिन्न रूप से विश्रान्त का आभासन कहना चाहता है। इस दर्शन के सिद्धान्तों के अनुसार सभी भाव अथवा वस्तु स्वयं ही भासनशील हैं। उन्हें आभासित करने की नहीं, केवल प्रेरित करने की आवश्यकता है। यही कर्तृरूप कारण का वहिराभासन रूप कार्य है।[2]

---

१. सकसलकोकयात्रानुप्राणितकल्यानल्पसम्बन्धबन्धुरीभावम्। ई.प्र.वि.(२), २/७

२. कारणमपि कर्तर्येव विश्रान्तम्.........................इति संविदात्मन्यवस्थितस्य कार्यस्य बहिरवभासनम्। तं.वि.,पृ० ८,९

काश्मीरी शैवदर्शन की यह भी मान्यता है कि लौकिक तथा अलौकिक कारणों में इच्छा का प्राधान्य है। घट के निर्माण में कुम्भकार की इच्छा कारण है। योगी भी अपनी इच्छा मात्र से घट का निर्माण करता है। इसी तरह से विश्व का आभास परमेश्वर की इच्छा से होता है। जड़ को कारण इसलिए नहीं स्वीकार किया जा सकता क्योंकि उसमें इच्छा का अभाव है। चेतन में इच्छा रहती है किन्तु चेतन मात्र ही कारण इसलिए नहीं स्वीकार किया जा सकता क्योंकि उसमें क्रिया का अभाव होता है अर्थात् उसमें कर्म सम्पादित करने की शक्ति नहीं रहती है। काश्मीर शैवदर्शन इसीलिए जब कारण-कार्य पर विचार करता है तो वह कर्ता के विचार में ही कारणवाद की इति नहीं मानता अपितु इससे कुछ अधिक का प्रतिपादन करता है। इस दर्शन का यह तर्क है कि उस कर्ता को कारण मानने में क्या औचित्य है जिसमें कर्म करने की इच्छा और कर्म करने की स्वतंत्रता न हो। स्वातन्त्र्य ही कर्ता का गौरव है। स्वतंत्र रूप से क्रिया का सम्पादन न कर सकने वाले कर्ता की परिकल्पना ही औचित्य हीन है।[1]

कर्ता की स्वतंत्रता में पांच शक्तियों का कथन भी किया गया है। ये शक्तियाँ हैं- चित्, आनन्द, इच्छा, ज्ञान एवं क्रिया। ये पांचों शक्तियाँ स्वातन्त्र्य न होकर उसी में सन्निहित है। कर्ता द्वारा संपादित लौकिक और अलौकिक सभी प्रकार के कार्यों के सम्पादन में शक्ति संचय का सामरस्य परमावश्यक है। एक आचार्य ने इसका उदाहरण देते हुए लिखा है कि घट के निर्माण काल में कुम्भकार में इच्छादि पंचशक्ति का समन्वय ही रहता है। इन शक्तियों के बिना केवल मृत्तिका मात्र से घट का निर्माण सम्भव नहीं है।[2]

---

१. अस्वतंत्रस्य कर्तृत्वे नहि जातूपपद्यते। तं.आ.९/९

२. यदेकतरनिर्माणं कार्यं जातु न जायते। शि०दृ. १/२३

सम्बन्ध के विषय में यह कहा जाता है कि इसकी पारमार्थिक स्थिति को लेकर अवश्य ही भ्रम हो सकता है अथवा द्विविधा हो सकती है किन्तु इसके व्यवहारिक स्वरूप के सम्बन्ध में किसी प्रकार के भ्रम की सम्भावना नहीं है क्योंकि इसके दैनिक व्यवहार से इसकी सत्ता स्वतः सिद्ध है। आचार्य अभिनव गुप्त का यह मत है कि सम्बन्ध व्यवहारिक जीवन का सत्य है और यह लोक-व्यवहार का मूल है। जिस तरह से लोक-व्यवहार को उपेक्षित नहीं किया जा सकता और न उसकी उपेक्षा से जीवन-व्यवहार चल सकता है उसी तरह से सम्बन्ध की सत्ता की अस्वीकृति से लोक-व्यवहार भी नहीं चल सकता। यह व्यवहारिक जीवन का मर्म है।[1]

काश्मीरी शैवदर्शन में दो प्रकार के सम्बन्धों की चर्चा की गई है। एक प्रकार का सम्बन्ध है कार्य-कारण भाव का सम्बन्ध और दूसरे प्रकार का सम्बन्ध है- ज्ञाप्यज्ञापकभाव सम्बन्ध।

कार्य-कारण के सम्बन्ध में काश्मीरी शैवदर्शन की यह दृष्टि है कि कर्तृकर्मभाव ही कार्यकारण भाव है। इस दर्शन की पारिभाषिक शब्दावली में कार्य को कर्म कहा जाता है क्योंकि वह कर्ता की ही कृति है। कारण के लिए कर्ता शब्द का प्रयोग कर यह दर्शन कर्ता में पूर्वतः अभिन्न रूप से विश्रान्त का आभासन कहना चाहता है। इस दर्शन के सिद्धान्तों के अनुसार सभी भाव अथवा वस्तु स्वयं ही भासनशील हैं। उन्हें आभासित करने की नहीं, केवल प्रेरित करने की आवश्यकता है। यही कर्तृरूप कारण का वहिराभासन रूप कार्य है।[2]

---

१. सकलकोकयात्रानुप्राणितकल्यानल्पसम्बन्धबन्धुरीभावम्। ई.प्र.वि.(२), २/७

२. कारणमपि कर्तर्येव विश्रान्तम्....................इति संविदात्मन्य वस्थितस्य कार्यस्य बहिरवभासनम्। तं.वि.,पृ० ८,९

कारण की इस स्थिति में यदि यह जिज्ञासा प्रस्तुत की जाए कि जव कर्ता नित्य है और उसमें पंच शक्तियों का स्वारस्य भी नित्य तथा सर्वदा है तो कार्योत्पत्ति सर्वकालिक क्यों नहीं दिखाई देती। इस सम्बन्ध में इस दर्शन के विद्वानों का यह उत्तर है कि यही तो कर्ता के स्वातन्त्र्य भाव का प्रमाणहै। यह क्रिया में स्वतंत्र है, इसलिए जब चाहता है क्रिया करता है और जब नहीं चाहता तब क्रिया नहीं करता। यदि वह अस्वातन्त्र्य के भाव से आबद्ध होता तो उसके द्वारा सतत् क्रिया करने और न करने की बाध्यता होती।

इसलिए काश्मीरी शैवदर्शन का यह सिद्धान्त है कि केवल जड़ अथवा केवल चेतन पृथक्-पृथक् रूप से कर्ता नहीं हो सकते। चिति शक्ति से सम्पन्न कर्ता ही अपनी क्रिया शक्ति के द्वारा विविध कार्यरूपों को धारण करने अथवा आभासित होने में समर्थ है।

इस रूप में कर्ता की एकत्व की हानि हो सकती है ऐसी शंका भी नहीं उपस्थापित की जा सकती है। इसके लिए एक विद्वान् ने दर्पण नगर का उदाहरण दिया है। जिस तरह से दर्पण में हाथी, कुत्ता, बिल्ली, नगर आदि अनेक प्रतिबिम्बों के प्रतिबिम्बित होने पर भी दर्पण के एकत्व में कोई हानि नहीं होती है, उसी तरह से एक ही कर्ता के विभिन्न रूपों में आभासित होने से उसका एकत्व भंग नहीं होता।[1]

यही कारण है कि कश्मीर शैवदर्शन में यह कहा गया है कि स्वतंत्र चिति शक्ति से सम्पन्न कर्ता की यही विशेषता है कि उसमें भेद-अभेद तथा एकत्व-अनेकत्व जैसे परस्पर विरोधी गुण रह सकते हैं।

---

१. प.सा., १२

सम्बन्ध के सामान्य स्वरूप का एक बिन्दु यह है कि यह द्विष्ठ होता है। अनेक वस्तुओं के रहने पर भी इसको दो भागों में बांटा जाता है। जैसे राजा और हस्ति, रथ और अश्व आदि। इस विभाजन में राजा का एक वर्ग है और हस्ति का दूसरा वर्ग है। इस दृष्टिकोण के आधार पर यह कहा जाता है कि अनेक के होने पर भी सम्बन्ध दो के बीच होता है।[1]

इसके अतिरिक्त सम्बन्ध के विषय में इस दर्शन की यह मान्यता भी है कि सम्बन्ध केवल दो समकालीन बाह्य वस्तुओं में ही नहीं होता है अपितु पूर्वकालीन एवं परकालीन दो वस्तुओं अथवा एक ही वस्तु की दो विभिन्न अवस्थाओं में भी हो सकता है।[2]

बीज अंकुर का पूर्ववर्ती है तथा अंकुर बीज का पश्चात्वर्ती है। फिर भी इनमें सम्बन्ध है। यदि सम्बन्ध का निर्धारण दो समकालिक वस्तुओं में ही किया जाएगा तो बीज और अंकुर में किसी प्रकार के सम्बन्ध की चर्चा नहीं हो सकेगी।

काश्मीरी शैवदर्शन की एक मान्यता यह है कि अनेकता में एकता अथवा भेदाभेद की स्थिति क्रिया शक्ति का एक पक्ष है। यह भेदाभेद एक सामान्य वर्ग है जिस पर न केवल सम्बन्ध अपितु क्रिया, जाति, द्रव्य और काल भी निर्भर है।[3] इसलिए सम्बन्ध भेदाभेद सामान्य वर्ग का एक विशेष वर्ग ही है।

यह दर्शन यह भी प्रतिपादित करता है कि जगत् की बाह्य वस्तुओं में एकता और अनेकता दोनों ही अनुभूतियाँ सत्य हैं। एकता तथा अनेकता दोनों ही अनुभूति भिन्न-भिन्न विषयों में अथवा एक ही विषय की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में हो सकती हैं।

---

१. सं०सि०, पृ०७
२. भा० (१), पृ० ८
३. ई०प्र०वि० (२). २/१

काश्मीरी दर्शन के विद्वानों ने अपना यह मत प्रस्थापित किया है कि वस्तुओं का एकत्व और अनेकत्व दोनों ही सत्य हैं। प्रमाता से बाहर जब वस्तु का आभास होता है तब वह बहिरेन्द्रिय के द्वारा संवेदित होती है और उसी समय वह अनेक रूपों में अनुभूत होने लगती है। जब वही वस्तु प्रमाता में विद्यमान रहती है या कि वह बाहर आभासित होने के बाद फिर से प्रमाता में लीन हो जाती है तब वह एक होती है।[१]

शैवदर्शनकार कहते हैं कि प्रमाता का स्वभाव विविध ज्ञानों में सामञ्जस्य करना है। उसके इस स्वतंत्र स्वभाव के कारण ही एकता के ज्ञान की प्रक्रिया चलती है। प्रमाता का स्वातन्त्र्य इसमें भी है किवह न केवल वस्तुओं को उनके भिन्न स्वरूप में दिखता है अपितु एक दूसरे से भिन्न स्वरूप में भी वस्तुओं का ज्ञान कराता है। वे यह मानते हैं कि इससे प्रमाता के स्वतंत्र स्वभाव का ही व्यञ्जन होता है। और इसमें किसी भी प्रकार की विसंगति नहीं है।

समीक्षा

इस रूप में संक्षेप में हम यह यह देख सकते हैं कि प्रारम्भ में वेदों और उपनिषदों में जो देव रूद्र के रूप में कठोर और रुलाने वाला था वही इस दर्शन में एक विशेष विचार का केन्द्र विन्दु बन गया। उसके साथ जो शक्ति जुड़ी वह सृष्टि सृजन में और कारणता में सहायक हुई। शैवदर्शन की इस लम्बी परम्परा में एक विशेष बात यह देखने को मिलती है कि इसका केवल वैचारिक आधार ही नहीं हैं, अपितु इसका व्यवहारिक और आचारात्मक आधार भी पुष्ट रहा है। यही कारण है कि विचार और आचार के सामञ्जस्य के कारण यह भारत का एक बहुव्यापी दर्शन बना।

पंचम अध्याय

(पुराण रचना में दर्शन की
पृष्ठ भूमि)

पंचम अध्याय

(पुराण रचना में दर्शन की
पृष्ठ भूमि)

रुद्र की प्रारम्भिक परिकल्पना, उपनिषदों में रुद्र,शिव स्वरूप, उत्तरकालिक शिवस्वरूप, पुराणों में शिव के विविध रूप, रुद्र और शिव के स्वरूप का दार्शनिक विकास शैव सिद्धान्त का क्रमिक विकास, आगम ग्रन्थ और अपरकालिक शैव सिद्धान्त, समीक्षा एवं निष्कर्ष।

पंचम अध्याय

(पुराण रचना में दर्शन की पृष्ठ भूमि)

रुद्र की प्रारम्भिक परिकल्पना

भारतीय परम्परा में जो साहित्य -सामग्री उपलब्ध है, उसमें वेदों का पूर्ववर्ती होना लगभग निश्चित है। यही कारण है कि सैद्धान्तिक परम्परा में जिसका भी प्रारम्भिक स्वरूप जानना होता है, उसके लिय सर्व प्रथम वेदों का आश्रय लेना ही समीचीन होता है। इसलिय जब हम शैव दर्शन के आदि प्रतीक रुद्रके विषय में कुछ जानना चाहेंगे तो हमें वेद और उपनिषद्, जो वेदों के ठीक बाद के ग्रन्थ हैं, प्रमाण के रूप में उद्घृत करने होंगे।

रुद्र के विषय में वेदों में पर्याप्त सामग्री प्राप्त है। इनको लेकर अनेक सूत्र लिखे गये हैं और इनका वर्णन विविध रूपों में किया गया है। ऋग्वेद में जब हम रुद्र के विषय में देखते हैं तो वहां यह दिखाई देता है कि इनका अग्नि के साथ गहरा सम्बन्ध है। अग्नि को अनेक बार रुद्र कहा गया है।[1]

रुद्र के अनेक अन्य रूपों में यह कहा गया है कि वे भयानक के साथ-साथ सौम्य स्वभाव के भीं हैं। वे कभी उग्र रूप धारण करते हैं। तो कभी-कभी कल्याणकारी हो जाते हैं। वे प्रायः वभ्रु रूप वाले कहे गए हैं किन्तु उन्हें श्वेत और सुनहरे वर्णवाला भी बताया गया है। वे भिषजों में सर्वश्रेष्ठ हैं। क्योंकि उनके पास रोग नाशक औषधियां हैं। वे द्विपदों और चतुष्पादों की पुष्टि करते हैं।[2]

---

१. त्वम् अग्ने रुद्रो असुरो महो दिवस्त्वं शर्धो मारुतं पृक्ष ईशिषे।
त्वं वातैरु रुणैर्यासि शंगयस्त्वं पूषा विधतः पासि नुत्मना।। ऋक् २/१/६

२. इमा रुद्राय तव से कपर्दिने क्षयद् वीराय प्रभराम हे मतीः।
यथा शम् असद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्।।
वही १।११४।१

श्री रुद्र के विषय में 'नील शिखण्डिन्' शब्द का भी प्रयोग है जो उनके नीले वर्ण अथवा गहरे रंग के केशवाला होने का संकेत है।[1] इसी के साथ ही वे एक स्थान पर ऐसे देव के रूप में भी उल्लिखित हैं जो विद्युत द्वारा मर्त्यजनों पर प्रहार करते हैं। इसी तरह से एक स्थान पर रुद्र देव के रथ का वर्णन है जिसमें उनका रथ काला और भयावह है तथा उसे रक्तवर्ण के घोड़े खीचते हैं।[2]

अथर्ववेद में ही रुद्रके जिस स्वरूप का कथन अधिकता के साथ किया गया है उसमें इस वर्णन पर अधिक बल दिया गया है जिसमें यह कहा गया है कि उनका शर विषधर होता है और उससे व्याधियाँ फैलती हैं।[3] प्राणि मात्र को उनसे डर लगता है कि वे अपने शरों को स्तुतिकर्त्ताओं की ओर से हटावें और उनका प्रहार शत्रुओं अथवा कृपणों पर करें।[4]

एक अन्य सन्दर्भ रुद्र के विषय में यह है जिसमें यह कहा गया है कि रुद्र अपने पास तीक्ष्ण शर रखता है और वह उन शरों से हमें दूर रखे, यह प्रार्थना हम उससे करते हैं।[5] एक स्थल पर रुद्रके लिए दौर्वृत्य शब्द का प्रयोग किया गया है जो उनके उच्छृड.ख आचरण को व्यक्त करता है।[6] इसका अभिप्राय यह है कि रुद्र ऐसा आचरण करते हैं जो किसी के लिये भी सह्य नहीं हैं।

---

१. ययो मृत्युरघमारो निऋर्थो बभ्रुः शर्वोस्ता नीलशिखण्डः। अथर्व ६।९३।३

२. वही ११।२।१८

३.वही ६।९०।१

४. वही ११।२।२६, ७।१५।१

५. यजु० (तैत्त०) १।१।१

६. उग्रं लोहितेन मित्रं सौव्रत्येन रुद्रं दौर्वृत्येनेन्द्रं प्रक्रीडेन मरुतो बलेन साध्यात् प्रमुदा। वही ३९।९

वेदों के इन सन्दर्भों से रुद्र का जो स्वरूप प्रकट हुआ है। वह भयकारी, उग्र और आक्रामक के रूप में दिखाई देता है। इसी को आधार मानकर कुछ पश्चिम के विद्वानों ने भी रुद्र के विषय में अपने विचार दिये हैं और यह लिखा है कि रुद्र और अग्नि में साम्य प्रतीत होता है इसलिये रुद्र केवल झंझावात के ही नहीं अपितु विनाशकारी विद्युत् के रूप में झंझावत के प्रतीक हैं।[1] रुद्र के साथ अग्नि का जो सम्बन्ध है उसके अनुसार अनेक विद्वान् अग्नि के दाहकत्व को रुद्र का मुख्य स्वभाव मानते हैं और वे रुद्र को किसी न किसी रूप में अग्नि का प्रतीक ही बताते हैं। एक विद्वान् ने रुद्र को अग्नि अथवा इन्द्र का ही एक रूप माना है।[2]

रुद्र का सौम्य रूप

रुद्र के जिस रूप को अभी तक हमने देखा, वह उनके स्वरूप का एक पक्ष है। उनके स्वरूप और स्वभाव का एक दूसरा पक्ष यह भी है जिसमें वे दयालु, करुणा पूर्वक कृपा करने वाले और भिषक् अर्थात् औषधिपति भी हैं।

रुद्र को अपने सौम्य रूप के कारण महाभिषक् कहा गया है। उनकी औषधियाँ शीतल और व्याधिनाशक होती हैं। इस रूप में वे अपने कृपालु स्वरूप से सभी को निरोग बनाते हैं तथा सभी को औषधियोंसे उपकृत करते हैं। रुद्र का यह रूप चिकित्सक का जैसा रूप दिखाई देता है जो उनकी भयंकरता से विपरीत है।

---

१. वै० मा० , पृ० ७८

२. रि० मा० ऋ० , पृ० १४७

३. रुद्रस्य मूत्रमस्यमृतस्य नाभिः।
विषाणका नाम वा असि पितृणां मूलादुत्थिता: वातीकृत नाशनी।
-- --- -- -- --
इद्मिद् वा उ भेषजमिदं रुद्रस्य भेजम्
येनेषुमेकते जनांशतशल्यामपव्रवत्। अथर्व ० ६।४४।३ , ६।५७।१

रुद्र पशुपति हैं। अर्थात् संसार के जितने भी पशु हैं, वे उनके पति हैं। यद्यपि वहां पशु शब्द से स्पष्ट अर्थ नहीं किया जा सकता किन्तु आगे इसका अर्थ सम्पूर्ण प्राणियों से किया गया है और पशु पति का अर्थ प्राणिमात्र का पति ग्रहण किया गया है।[१] रुद्र पशुपति हैं। क्योंकि वे अपने अन्य अनेक रूपों में प्राणियों की रक्षा करते हैं। यजुर्वेद में एक सन्दर्भ इस प्रकार का है जिसमें भगवान् शंकर को सन्तानवृद्धि करने वाला देवता भी माना गया है।

यजुर्वेद में रुद्र के लिए जो प्रार्थना की गई है, वह इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं क्योंकि उसमें रुद्र के न केवल अनेक नामों का कथन किया गया है अपितु उनकी शक्तियों का संकेत भी है। इस रुद्र-स्तवन में उनको पशुप, कपर्दिन, नीललोहित, क्षेत्रपति और वणिक् के रूप में कहा गया है

रुद्र के लिये दिए गए नामों में कुछ नाम अद्भुत और आश्चर्य कर हैं। जैसे उन्हें चोरों का राजा, ठगों का सरदार, तस्करों का पति कहा गया है।[३]

इसी प्रकार से स्तवन में रुद्र के उन स्वरूपों का कथन है जो सभा के सभापति हैं और विश्व रूप हैं। जो सेनानी हैं। सेनापति हैं। जो रथकार हैं, कृपालु है और शिव हैं तथा सभी के लिए कल्याण करने वाले है।[४]

---

१. य ईशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुत यो द्विपदाम्।
निष्क्रीतः स यज्ञियं भागमेतु रायस्पोषा यजमानं सचन्ताम्।।अथर्व.२।३४।१
पशूनां शर्मासि शर्म यजमानस्य शर्म मे यच्छक एव रुद्रो नं द्वितीयाय तस्थ। यजु० १।८।६

२. वही (तै०) १।८।६

३. नमो वञ्चते स्तायूनां पतये नमो नमो निषङ्गि.ण इशुधिमते तस्काराणां पतये नमो नमः सृकाविभ्यो जिधांसद्भ्यो मुष्णतां पतये नमः। यजु० १६।१।६६(२१.२२)

उपनिषदों में रुद्र

उपनिषद् परम्परा वैदिक परम्परा की अनुगामिनी इस अर्थ में मानी जा सकती है क्योंकि इसमें वेदों में व्यक्त किये गये विचारों को ही पल्लवित तथा पुष्पित किया गया है। वृहदारण्यक में एक-दो स्थानों पर अन्य देवताओं के साथ रुद्र का उल्लेख किया गया है। जैसे कि एक स्थान पर शाकल्य ने प्रश्न किया कि यह रुद्र कौन है, तो याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि जिस समय प्राणियों के प्रारब्ध कर्म समाप्त हो जाते हैं उस समय यही एकादश रुद्र मरण शील शरीर से उत्क्रमण काल में अपने सम्बन्धियों को रुलाते हैं। इसी रोदन के निमित्त होने से ये रुद्र कहे जाते हैं।[१]

श्वेताश्वेतरोपनिषद् रुद्र के विषय में अधिक विस्तार से लिखती है। इस उपनिषद् में रुद्र के विषय में जो लिखा गया है,वह एकदम से नया और बदला हुआ है। वहां पर कहा गया कि जो एक माया पति अपनी ईश्वरीय शक्ति से सम्पूर्ण लोकों पर शासन करता है, जो अकेला ही उत्पत्ति और प्रलय का आधान किए हैं, वह रुद्र एक ही है। वह रुद्र अपनी शक्तियों से इन लोकों पर शासन करता है। वही सम्पूर्ण प्राणियों के भीतर विद्यमान है और समस्त भुवनों को बनाकर पुनः प्रलयकाल में समेट लेता है।[२]

हे रुद्र! तुम्हारी जो कल्याणकारी शान्त और स्मृति मात्र से पाप को नष्ट कर पुण्य को प्रकाशने वाली मूर्ति है, उसी सुखमयी मूर्ति से हमें देखो। जिससे कि हम कल्याणकारी पथ में दृढ़ता से लग सकें।

इस उपनिषद् में यही रुद्र पुरुष के रूप में भी है और ईश के रूप में भी हैं। यही रुद्र प्रकृति और पुरुष के साथ शिव के नाम से भी अभिहित है।

---

१. ई० द्वा० उ० , पृ० ३३९

२. वही , पृ० ४३९.४४०

रुद्र के सम्बन्ध में अन्य उपनिषदों में जो सन्दर्भ हैं उनके अनुसार एक उपनिषद् में रुद्र का सम्बन्ध तमोगुण से जोड़ा गया है।[1] इससे यह संकेत लिया जा सकता है कि इस कथन में वेद की वही अवधारणा काम कर रही है जो रुद्र को तम का भयंकर देवता मानती थी। एक दूसरे सन्दर्भ में रुद्र परिरक्षिता कहा गया है और प्रजापति के साथ उनका तादात्म्य स्थापित किया गया है। वहां पर यह कहा गया है कि हे रुद्र! तू अपने सौम्य रूप से जगत् का रक्षक है।[2]

एक अन्य उपनिषद् में एक अन्य स्थल पर रुद्र और आत्मा को एक ही माना गया है। वहाँ पर रुद्र की एक उपाधि शम्भु भी दी गई है और वहां पर उन्हें शान्तिदाता के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।[3]

शिव स्वरूप

वैदिक साहित्य में तो हम यह देख सके हैं। कि रुद्र के नाम का व्यवहार ही अनेकशः किया गया है और उन्हीं के वर्णन में तरह-तरह के प्रतीक दिए गए हैं। वेदों में शिव के स्वरूप पर पृथक् से कोई चर्चा नहीं है और शिव नाम से किसी विशेष देवता को सम्बोधित भी नहीं किया गया। केवल एक दो सन्दर्भ ऐसे हैं जिनमें रुद्र के व्याख्यान क्रम में शिव का नाम लिया गया है। हाँ युजर्वेद में अवश्य शिव को अनेक रूपों में सम्बोधित किया गया है।

यजुर्वेद की बाजसनेयीं संहिता में रुद्र के स्थान पर उनका सम्बोधन शिव के रूप में किया गया है और इस रूप में यह कहा गया है कि आपको नमस्कार है। इस रूप में आप हमारी हिंसा न करें।[4]

---

१. मै० उ० ४।५

२. इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता।
   त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्यस्त्वं ज्योतिषां इतिः। ई० द्वा० उ०, पृ० ४३

३. मै० उ० ५।८

४. यजु ० (तै०) ३।६३

इसी तरह से अन्य स्थानों पर भी शिव शब्द का प्रयोग रुद्र के लिए किया गया है।[1]

उपनिषद् परम्परा में हम अवश्य यह देख सकते हैं कि अनेकशः शिव का नामोल्लेख किया गया है। श्वेताश्वरोपनिषद् में तो रुद्र को ईश, महेश्वर, शिव और ईशान कहा गया है। इस उपनिषद् में शिव की अपरिमित शक्ति का कथन करने के साथ यह कहा गया है कि उसके सभी ओर मुख, मस्तक और ग्रीवा हैं। वे सम्पूर्ण भूतों के हृदय में स्थित हैं। वे भगवान सर्व व्यापक और सभी का कल्याण करने वाले हैं। वे स्वयम् सर्वगत और कल्याण रूप हैं।[2]

इसी प्रकार से अन्य स्थान पर यह वर्णन किया गया है कि परमेश्वर सूक्ष्म से भी सूक्ष्म हैं, तथा अविद्या एवं उसके कार्य रूप दुर्गम स्थान में स्थित सम्पूर्ण विश्व का स्रष्टा नाना रूप वाला और संसार को एक मात्र कर्म फल प्रदान करने वाला कल्याण स्वरूप शिव को जानकर जीव परम शान्ति प्राप्त कर लेता है।[3]

इस रूप में रुद्र के लिए जो शिव नाम दिया गया वह काफी कुछ अर्थ परिवर्तन को इस दृष्टि से सूचित करता है कि रुद्र भय के देवता थे, वे कल्याण के देवता बन गए और वे सर्व कल्याण कारी के रूप में स्थापित हुए। पूर्व में वे यद्यपि पशुप और चिकित्सक थे किन्तु सर्वव्याप्त और कल्याणकारी उनका स्वरूप उपनिषद् ही व्यक्त कर सकी।

---

१. शिवेन वचसा त्वा गिरिशाच्छावदामसि।
- - - यजु० (श०) १६।१।६६-४

निशीर्य शल्यानाम्मुखं शिवो नः सुमना भव। वही १६।१।६६-१३
- - - -

नमःशम्भवे च भयोभवे च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च। - - - - वही १६।१।६६-४१

२. सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः। सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात् सर्वगतः शिवः। श्वे० ३।११

३. सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्। विश्वैस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवम्। वही ४।१४

उत्तरकालिक शिव स्वरूप

शिव स्वरूप के सम्बन्ध में जब हम रामायण और महाभारत के संदर्भों को लेते हैं तो हमें वहां पर एतद् विषयक सामग्री पर्याप्त मात्रा में मिलती है। रामायण में यह संकेत है कि रुद्र अब रुलाने वाले देवता न होकर मनुष्य के कल्याण करने वाले देवता हैं। वे वरदाता हैं, आशुतोष हैं और दयानिधि हैं।[1] बाल्मीकि रामायण में श्री राम का चरित होने के कारण यद्यपि श्रीराम की महिमा अधिक रूप में गाई गई है किन्तु जहां शिव का सम्बन्ध आया है वहां पर शिव को सर्वश्रेष्ठ देव कहा गया है और उन्हें देवों में सर्वोच्च देवता निरूपित किया गया है।[2]

एक स्थान पर यह सन्दर्भ है कि वे जगत् की सृष्टि करने वाले हैं, वे जगत् का अन्त करने वाले हैं, वे सभी के आधार हैं और परं गुरु हैं। वे अमर हैं, अक्षय हैं और अव्यय भी हैं।[3]

बाल्मीकि रामायण में शिवोपासना का जो रूप प्रचलित हुआ, वह लोक-उपासना के भाव के अत्यधिक समीप दिखाई देता है। इस महाकाव्य में शिव के साथ-साथ उमा का नाम भी उनकी अर्धाङ्गि.नी अथवा एक शक्ति के रूप में जोड़ा गया है। वे कल्याणकारी देवता होने के साथ-साथ हिमवान् की पुत्री के साथ रहते हैं, जो उनके लिए एक शक्ति-स्वरूपा हैं। भवानी अनेकशः देवी के पद से वाच्य हैं और वे एक सौम्य देवी तथा कृपा करने के कारण करुणामयी हैं। उनकी कृपाऔर करुणा से सम्पूर्ण सृष्टि आप्लावित रहती है इस लिए वे महत्त्वपूर्ण देवी के रूप में प्रतिष्ठित हैं।[4]

---

१. बा० रा० बाल० ५५ ।१३
२. वही ४५ ।२२-२६
३. वही ६ ।२, ४ ।२९
४. वही ३६ ।६, ३५ ।२१

बाल्मीकि रामायण में शिव और पार्वती को लेकर जो आख्यान दिये गए हैं, वे भी उनकी महिमा का ही बखान करते हैं। समुद्र द्वारा निकले विष की उसके पान की कथा में देव और दानव मन्दराचल पर्वत को मथानी बनाकर समुद्र का मन्थन करते हैं। वासु कि इस मन्थन कर्म में रज्जु का काम करते हैं। इस स्थिति में समुद्र से जब हलाहल विष प्रकट होता है तब सभी देवता विष्णु के साथ मिलकर शिव के पास जाते हैं और उनसे प्रार्थना करते हैं कि भगवन्! यह विष सभी के लिए मारक है। कृपाकर आप इसका पान कर लीजिए तो सभी का जीवन बच जाएगा, अन्यथा देव और दानव के साथ समग्र सृष्टि इस विष की भयानकता से नष्ट हो जाएगी। शिव ने कृपा की और देवताओं के आग्रह से ही उसे कण्ठ में धारण कर लिया। तब से शिव नीलकण्ठ कहे जाने लगे।[1] रामायण में इस कथा का संकेत मात्र ही किया गया है किन्तु इससे शिव के कारुण्य स्वभाव को अवश्य व्यक्त किया जा सकता है।

दूसरा आख्यान शिव के द्वारा किये गए गंगावतरण का है। भगीरथ अपने पूर्वजों के उद्धार के लिए गंगा को स्वंग से पृथिवी पर लाना चाहते हैं किन्तु समस्या यह आती है कि उसे पाताल लोक जाने से कौन रोक सकेगा। इसके लिए भगीरथ श्री शिव से उसे अपने मस्तक में धारण करने की प्रार्थना करते हैं। गंगा के अवतरण की इस विधि को शिव स्वीकार कर लेते हैं। यह शिव की कृपालुता का स्वभाव है। इसमें भी जब गंगा अपना अभिमान दिखाती हैं और वे शिव को पाताल लोक ले जाना चाहती हैं तो शिव अपनी जटाओं में उलझा देते हैं। इससे शिव का सामर्थ्य प्रकट होता है।[2]

---

१. बा० रा० बाल० ४५-१८-२६
२. वही ४२।४३

शिव केस्वरूप को लेकर और भी अनेक सन्दर्भ बाल्मीकि रामायण से दिए जा सकते हैं। जैसे कि महत्त्व शिव का ही है कि उनकी उपासना केवल मनुष्य ही नहीं करते अपितु देव और दानव भी उनकी उपासना करते हैं। यदि देवता शिव को अपना उपास्य मानते रहे तो रावण ने भी अपना उपास्य शिव को माना। श्री राम ने नर रूप में उनकी उपासना की ही थी।

बाल्मीकि रामायण में शिव को हर और वृषभध्वज के नामों से पुकारा गया है।[१] इस सम्बन्ध में एक विद्वान का यह मन्तव्य है कि इसमें से हृ धातु से प्रथम शब्द की व्युत्पत्ति हुई है जिसका अर्थ हरण करके ले जाना हुआ। यह कार्य प्रारम्भ में अग्नि का था जो हवन की गई सामग्री देवताओं को ले जाती थी। इसी कारण ही हर और अग्नि का सम्बन्ध भी सम्भवतः स्थापित किया गया। एक दूसरी उपाधि शिव की वृषभध्वज है। इसका प्रारम्भिक अर्थ 'वर्षयिता' अर्थात् वर्षा करने वाला रहा है किन्तु बाद में यह अर्थ वृषभ के रूप में हो गया जो बाद में शिव के वाहन के रूप में माना जाने लगा।[२]

वेदों में शिव की रुद्र संज्ञा का व्यवहार भी अनेकशः हुआ है और वहां पर इन्हें भैषज्य के रूप में भी निरूपित किया गया है। रामायण में भी इन्हें एक बार भैषज्य के रूप में सर्वोत्तम देवता माना गया है।[३]

इस रूप में हम यह देख सकते है कि पूर्व में रुद्र का जो स्वरूप था और जिसमें कर्कशता का भाव अधिक था, वह रामायण में बदल गया और इस महाकाव्य में वे करुणा और कृपा के देवता हो गए।

---

१. रामा० बा० ४३।६ उ० का० ४।३२
२. शै० म०, पृ० ६४-६५
३. रामा० उ० का० ९०।१२

महाभारत में शिव

रामायण की अपेक्षा महाभारत में ऐसे अनेक सन्दर्भ हैं जिनमें शिव से सम्बन्धित सामग्री पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होती है। महाभारत में शिव के स्वरूप का कथन कुछ-कुछ दार्शनिक स्वरूप में किया गया है। जिसमें कहा गया है कि वे असीम हैं, अचिन्त्य हैं, विश्व के सर्जक हैं और सृष्टि को अपने में समाए हुए हैं। वे परम परमार्थ रूप हैं और उनसे परे कोई नहीं है। वे महाभूतों के एक मात्र उद्गम हैं और एक मात्र आधार हैं। वे नित्य, अव्यक्त और कारण भूत हैं।[1]

एक स्थान पर शिव का जो वर्णन किया गया उसके अनुसार वे सांख्य दर्शन के साथ सम्बद्ध दिखाई देते हैं। उन्हें स्वयम् सांख्य ही कह दिया गया और यह कहा गया कि जो सांख्य के सिद्धान्तों के विशेषज्ञ हैं तथा उसके तत्त्वों और गुणों को जानते हैं, वहीं शिव को भजते हैं तथा मोक्ष प्राप्त करने के अधिकारी बनते हैं।[2]

शिव के लोक रूप में यह कहा गया है कि वे जगत् के स्रष्टा हैं, पालन करने वाले हैं और जगत् का संहार करने वाले हैं। वे देवों, दानवों और मानवों सभी के परम प्रभु हैं। वे ही भूत काल में उपास्य थे, वर्तमान में उनकी ही उपासना होती रहेगी। वे असीम स्वरूप वाले हैं, उनका स्वरूप अचिन्त्य है, और वे देवों द्वारा भी अधिगम्य नहीं हैं। अर्थात् उन्हें देवताओं के द्वारा भी भली प्रकार जाना नहीं जा सकता है।[3]

---

१. लोकादिं विश्वकर्माणं अजमीशानमव्ययम्।
तमसः परमं ज्योतिः खं वायुं ज्योतिषां गतिम्।।
योगिनां परमाव्यक्तं वेदविदां निधिम् ।
चराचरस्य स्रष्टारं प्रतिहतरितेव च ।।
यं प्रपश्यन्ति विद्वांसः सूक्ष्माध्यात्मनिदर्शनात् ।
तमजं कारणात्मानं जग्मतुः शरणं भवम्।। म०भा० द्रोण. ७४।४१-४४

२. वही, अनु० २३।४३

३. वही, कर्ण० २४।६८

महाभरत काल में शिव के स्वरूप के सम्बन्ध में यह कहा गया है कि वे पार्वती पति हैं और इनकी उपासना साथ-साथ की जाती है। शिव दयानिधि हैं, कल्याणकारी हैं और सौम्य स्वभाव के हैं। उनकी पत्नी शिवा भी इसी स्वभाव की हैं। ये दोनों ही परम आनन्द की अवस्था में कैलाश पर्वत पर निवास करते हैं और लोक के लिए कल्याण कारी हैं। देवता भी शिव के इसी रूप की उपासना करते हैं और वे भी शिव तथा पार्वती से दया की अपेक्षा करते हैं।[1]

शिव को इस महाभारत में भव, शर्व, रुद्र और वर देने वाला होने के कारण वरद कहा गया है। वे नील ग्रीव हैं, व्यालों को यज्ञोपवीत के रूप में धरण करने वाले हैं, भीम रूप वाले हैं, त्रयम्बकपद से अभिहित होने वाले हैं और शिव पद से व्यज्जित हैं। वे सहस्त्र शिर वाले भी कहे जाते हैं और उनके सहस्त्रों भुजाएँ हैं। वे सहस्त्र नेत्रों वाले, सहस्त्रोंपदों वाले और असंख्य कर्मों को सम्पादित करने वाले हैं।[2]

महाभारत में यद्यपि शिव सौम्य रूप में कहे गए हैं तथापि पापियों और कुकर्मियों को दण्ड देने के लिए वे उग्र रूप धारण कर लेते हैं। उनका पिनाक नाम का धनुष तथा शूल नाम का वज्र उन्हें अधिक प्रिय हैं। उनका जो विरोध करते हैं उनके लिए वे साक्षत् काल हैं।[3]

---

१. म० भा० द्रोण० २४।५४

२. नमो भवाय शर्वाय रुद्राय वरदाय च ।
पशूनां पतये नित्यं उग्राय च कपर्दिने ।।
कुमारमुखे नित्यं नीलग्रीवाय वेधसे।
विलोहिताय धूमाय व्यालयज्ञोपवीतिने ।।
महादेवाय भीमाय त्र्यम्बकाय शिवाय च ।
ईशानाय मखघ्नाय नमोऽस्तुन्धकधातिने ।।
\- \- \- \-
नम: सहस्त्रशिरसे सहस्त्रभुजमन्यवे।
सहस्त्रनेत्रपादाय नमोऽसंख्येयकर्मणि।। वही ७४-/५२-६१

३. वही, कर्ण० २६।२६

पुराणों में शिव के विविध रूप

पुराणों में अनेक प्रकार से शिव के स्वरूप का कथन किया गया है। इसमें हम यह देखते हैं कि शिव यदि कृपालु देवता के रूप में कहे गये हैं तो वे कठोर और क्रूर देवता के रूप में भी कहे गये हैं। एक पुराण में जब भगवान् शिव की स्तुति की जाती है तो वहां पर यह कहा जाता है कि वे विरूप रूप वाले हैं, कपालों की माला धारण किए हैं, हाथों में भी उनके कपाल ही हैं, वे काल के भी काल हैं, श्मशान में रहते हैं और श्मशान सेवी को वरदान देते हैं।[1]

एक अन्य पुराण में उनको कराल, रुद्र और क्रूर कहा गया है। उनकी जिह्वा और दांत बाहर निकले हुए हैं। वे अनेक प्रकार से भीषण हैं। वे वस्त्र हीन होने के कारण दिगम्बर उपाधि से युक्त हैं। उनके पूरे शरीर में भस्म का लेपन है। इसलिए वे भस्मनाथ हैं।[2]

शिव के इन रूपों के विपरीत वे अन्य स्थानों में त्रैलोक्य के नाथ कहे गये हैं, दक्ष के यज्ञ के विध्वंसक माने गये हैं, सृष्टि के आदि कर्ता के रूप में वर्णित हैं, सर्वदा सभी रूपों में रहने वाले हैं, काल रूप भी हैं और सर्वत्र गमन करने वाले हैं।[3]

शिव की स्तुति श्री राम ने जिस रूप में की है, उसमें यह कहा गया है कि वे पुराण पुरुष हैं, सर्वज्ञ हैं। अर्थात् सभी कुछ जानने वाले हैं। वे अक्षर रूप हैं और उनकी महिमा अनन्त है।

---

१. नमः पर्वतलिंगाय..........पवनवेनाय विरूपाय च..................कपालमालाय कपालसूत्र धारिणे कपालहस्ताय दण्डिने गदिने ....त्र्यैलोक्यनाथाय पशुलोकरताय.............. कालकालाय.................. श्मशानरतये श्मशानवरदाय।

ब्र० पु० ३७।२-१३

२. मत्स्य० ६०।१४-१४, ४७।१२७, अ०पु० ३२४।१६

३. नमस्त्रैलोक्यनाथाय दक्षयज्ञविभेदिने ।
आदिकर्त्रे नमस्तुभ्यं नमस्त्रैलोक्यरूचिणे ।।
सर्वदा सर्वरूपाय कालरूपाय ते नमः।
पाहि शंकर सर्वेश पाहि सोमेश सर्वग।

ब्र० पु० ११५।७-९

वे वेदत्रयी के लिए नेत्रवत हैं, यज्ञेश्वर हैं, अज हैं, सुरों और असुरों के द्वारा समान रूप से अर्चित हैं।[1]

शिव के सर्वव्यापक और सर्वज्ञ रूप का कथन इस प्रकार भी किया गया है जिसमें यह कहा गया है कि उन्हें कोई नहीं जानता है। वे अमूर्त भी हैं और मूर्तिमान भी हैं। वे जगत् के कर्ता भी हैं और जगत् रूप भी हैं। वे रुद्र हैं और रुद्र रूप में शिव हैं। वे स्थावर, जंगम में सर्वत्र व्याप्त होकर अवस्थित हैं।[2]

पुराणों में शिव को लेकर और उनको नायक बनाकर अनेक कथाएं लिखी गई हैं। जैसे- दक्ष यज्ञ के विध्वंस की कथा, मदन-दहन की कथा, सागर मन्थन की कथा आदि। इन सभी कथाओं में शिव ने विविध रूप में कार्य किया। उस रूप में शिव के विविध रूप देखने को मिलते हैं। समुद्र मन्थन की कथा में वे देव रक्षा के लिये और संसार की रक्षा के लिए हलाहल पी लेते हैं और उसे कन्ठ में धारण कर नील कण्ठ हो जाते हैं।[3] शिव का यह रूप अत्यधिक प्रिय हो गया और फिर वे नीलकण्ठ के रूप में जाने जाने लगे।

---

१. नमामि शम्भुं पुरुषं पुराणं नमामि सर्वज्ञमपारभावम्।
नमामि रुद्रं प्रभुमक्षरं तं नमामि शर्वं शिरसा नमामि।।
नमामि वेदत्रयलोचनं तं नमामि मूर्तित्रयवर्जितं तम् ।
यज्ञेश्वरं सम्प्रति हव्यकव्यं तथागतिं लोक रूद:शिवो य:।।
नमाम्यजादीशपुरन्दरादिसुरासुरैरर्चितपादपद्मम् ।
नमामि देवीमुखवादनानामीक्षार्थभक्षित्रितयं च ऐच्छात्।।
ब्र० पु० १२३।१९५-२६५

२. नैवकश्चित् तं वेत्ति य: सर्वे वेत्ति सर्वदा ।
अमूर्तं मूर्तमप्येतद् वेत्ति कर्ता जगन्मय: ।।
स एव रुद्ररूपी स्याद् रुद्रो मन्यु: शिवोऽभवत्।
स्थावरं जगमं चैव सर्वे व्याप्त हि मन्युना।। वही १६२।१७, २८

३. वायु० ५०।४९, मत्स्य अ० २४

शिव के साथ उनकी अर्धाङ्गिनी देवी पार्वती का वर्णन भी पुराणों में अनेकशः किया गया है। उनके वर्णन में एक ओर तो शिवा के रूप में वे सौम्य और शान्त तथा कल्याण कारिणी कृपा की देवी के रूप में दिखाई देती हैं और दूसरी ओर उनका स्वरूप भयानक तथा रौद्र है। यह तथ्य अवश्य ध्यान में रखना चाहिए कि जब-जब कृपालु रूपा देवी का स्तवन होता है तब-तब उनके भीषण रूप का संकेत भी हो जाता है। एक पुराण में देवी के दो रूपों का कथन करते हुए यह कहा गया कि वे श्वेत रूप वाली हैं और काली रूपवाली हैं। पुराण कहता है कि ये देवी प्रारम्भ में आधी श्वेत थीं और आधी काली थीं।[1]

इन रूपों में जब देवी की उपासना होती थी तो पार्वती के रूप में उन्हें श्वेत रूप की देवी के रूप में जाना जाता था और जब दानवों के विरुद्ध संहार करने वाली देवी के रूप में उनकी उपासना होती थी, तब वे कृष्णवर्ण की देवी होती थीं। इस सन्दर्भ में एक स्थान पर यह कहा गया है कि दानवों के विरुद्ध युद्ध करने से पूर्व देवी ने अपने आपको अम्बिका से पृथक् कर लिया और इसके बाद उनका रंग काला हो गया।[2]

यद्यपि देवी की उपासना पृथक् रूप से भी होती रही है किन्तु शिव की सहचरी के रूप में वे परम उपास्य रही हैं। जब देवी राक्षसों के संहारक के रूप में रहीं तब वे चण्डिका, काली, दुर्गा, आदि के नामों से वाच्य रही हैं। वे तीक्ष्ण दष्ट्रा, करालाकृति और उनके सिंहों पर आरुढ़ रहने वाली भी रही हैं। उनके बीस भुजा हैं, जिनमें वे विविध प्रकार के अस्त्र-शस्त्र धारण करती हैं।[3]

---

१. वा० पु० ९।८२ से

२. मार्क० ८५।४०-४१

३. वरा० २८।२४, ब्र० वै० (२) ६४।१४

रुद्र और शिव के स्वरूप का दार्शनिक विकास

वेद ग्रन्थों में रुद्र को जिस रूप में प्रस्तुत किया गया है, वह उनका इसी प्रकार का प्रारम्भिक स्वरूप है जैसा प्रकृति के अन्य देवों के लिए प्रस्तुत किया गया है। तब वे अपने नाम के अनुरूप रोदन कराने वाले ही देवता थे और कठोरता तथा कर्कशता के स्वरूप से प्रतिष्ठित थे। किन्तु उपनिषदों का अवलोकन करने के पश्चात् यह परिवर्तन दिखाई देता है जिसमें रुद्र एक दूसरे रूप में प्रस्तुत हुए और अपने शिवत्व अर्थात् कल्याणकारी रूप में उपस्थित हुए। इसी के साथ शिव केवल एक देवता न रहकर एक तत्त्व के रूप में भी जाने जाने लगे, जिससे वे देवों के भी देव बन गए और यह कहा जाने लगा कि रुद्र एक ही हैं द्वितीय कोई तत्त्व नहीं हैं। यह ईश्वर हैं और सभी के ईश हैं। सम्पूर्ण विश्व के रक्षक हैं और अन्त में सम्पूर्ण विश्व इन्हीं में समाहित हो जाता है।[१]

एक और अन्य स्थान पर यह कहा गया है कि यह आत्मा है, ईश है, शम्भु है, रुद्र है, सत्य, प्राण, विष्णु, नारायण, अर्क, प्रजापति है।[२] यह स्वरूप ऐसा है कि इसमें एक देव के रूप में होतें हुए भी रुद्र के स्वरूप का और उनके आयाम का बहुत विस्तार हो गया। यह एक विशेष बात है जो दर्शाती है कि रुद्र की व्यापकता बढ़ी है।

---

१. एको हि रुद्रो न द्वितीयाय तस्थुर्य
   इमाल्लोकान् ईशत् ईशनीमिः।

श्वे० ३।२

२. एष खल्वात्मेशानः शम्भुर्वो रुद्रः प्रजापतिर्विश्व सृड्धिरण्यगर्भः सत्यं प्राणो हंस..................ए एष। मै० उ० ५।८

इसके अतिरिक्त भी रुद्र के साथ शिव के स्वरूप और उनकी व्यापकता का कथन श्वेताश्वतरोपनिषद् में किया गया है। जैसा कि वहाँ पर कहा गया है कि वह भगवान् सभी स्थानों पर व्याप्त है, सभी का मुख, शिर, ग्रीवा वही है। सर्वगत और सर्वत्र वही है।[1]

एक दूसरा स्थान इस प्रकार का है जिसमें यह वर्णन है कि वह सूक्ष्म से भी सूक्ष्मतम है, विश्व का एक मात्र स्रष्टा है, विश्व को परिवेष्टित करके अवस्थित है, जिस शिव को जानकर शन्ति प्राप्त होती है।[2]

रुद्र अथवा शिव के लिए महेश्वर शब्द का प्रयोग करके एक स्थान पर यह कहा गया है कि प्रकृति को माया जानो और महेश्वर को मायावी समझो। क्योंकि मायावी ही अपनी माया से इस सृष्टि का सृजन करता है।[3]

इस रूप में वेदों की अवधारणा के पश्चात् उपनिषद् जो भी प्रतिपादन करती हैं, वह साभिप्राय है और वहाँ के कथन से बहुआयामी अभिप्राय समझा जा सकता है। साथ ही साथ यह भी कहा जा सकता है कि शिव न केवल एक देव के रूप में मान्य माने गए अपितु वे एक ऐसे तत्त्व के रूप में संकेतित किए जाने लगे, जो सृष्टि का कर्ता बना और सर्वव्यापक तथा सर्वगत हुआ। यह शिव का दार्शनिक स्वरूप है।

---

१. सर्वाननशिरोग्रीवा सर्वभूतगुहाशयः।
सर्वव्यापी स भगवान् तस्मात् सर्वगतः शिवः।।
श्वे० ३।११

२. सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये, विश्वस्य स्रष्टारमनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टतारं शाखा शिवं शान्तिमत्यन्तयेति।।
वही० ३।१४

३. मायां तु प्रकृति विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्।
वही० ३।१७, ३।९

भारत का पौराणिक काल एक विस्तृत काल है जिसका पूर्वोपर समय निर्धारित कर पाना कठिन है। इस दृष्टि से यदि हम पुराणों को एक प्राचीन निधि मानकर वहाँ शिव के दार्शनिक स्वरूप के विकास को देखें तो वहाँ पर पर्याप्त सामग्री मिल सकती है।

महाभारत में ऐसा प्रसंग आया है जिसमें यह संकेत किया गया है कि शिव महेश्वर, सर्वेश्वर, कल्याणकारी, परमकारण, सर्वव्यापक हैं। श्रीकृष्ण और अर्जुन भी शिव से वर प्राप्त करने के लिए हिमालय पर जातें हैं।[1]

पुराणों अन्य जो सन्दर्भ प्राप्त होते हैं उनके अनुसार ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, तपस्या, क्षमा, धृति, सृष्टि-योग्यता, शासन-गुण और आत्मा बोध-ये दस गुण शंकर में सर्वदा वर्तमान रहते हैं। शिव एक ऐसे देव हैं जो सुरों और असुरों में श्रेष्ठ हैं और इसीलिए सम्भवतः उनका नाम महादेव है। उन्होनें अपने ऐश्वर्य से देवों को, बल से असुरों को और ज्ञान से ऋषियों को पराजित किया है। वे परमयोगी हैं।[2]

एक अन्य सन्दर्भ में शिव के आठ स्वरूपों का कथन किया गया है। इनमें शिव तत्त्व का अधिष्ठान है, इसीलिए इनका समादर अधिक है।[3] शिव में लोक रक्षा के लिए शिवा का आधान है। अर्थात् वे लोक रक्षा करने के लिए शिवा अर्थात् शक्ति का सानिध्य प्राप्त करते हैं और उसी शक्ति के बल से वे लोक की रक्षा करते हैं।[4] इसी हेतु से वे लोक रक्षक के रूप कहे जाते हैं।[4]

---

१. भ० भा० वन ३९ से ४२, अनु० पर्व० १४ वाँ अध्याय

२. वा० पु० १० ।६५-६८

३. वही० २६ वाँ अध्याय

४. भा० पु० ४ ।२४ ।१८

पुराणों में कुछ ऐसे भी सन्दर्भ हैं जिनमें शिव के स्वरूप का कथन केवल एक देवता के रूप में नहीं हुआ, अपितु उन्हें अज, अमर, देवताओं का स्रष्टा आदि रूपों में कहा गया है। वह प्रधान पुरूष है, वह अमृतरूप हैं, परमात्मा हैं, ईश्वर हैं और जगत के कारण हैं।[1]

एक और सन्दर्भ इस प्रकार का प्रस्तुत किया जा सकता है जिसमें यह वर्णन आया है कि वह अपनी माया से अखिल जगत का पालन करता है और विनाश करता है। सनत्, सनातन, सनन्दनादि भी जिनके रहस्य को नहीं जान पाते और वेदान्तादि शास्त्र भी उन्हीं के द्वारा ज्ञातव्य है।[2]

एक और सन्दर्भ इसी प्रकार का है जिसमें शिव के उत्कर्ष का और सर्वव्यापक स्वरूप का कथन किया गया है। वहाँ पर कहा गया है कि वे सभी देवों में महान देवता हैं, इसलिए महादेव कहे गए हैं। सभी के ईश हैं इसलिए सर्वेश उनका नाम है। लोक का उन पर वश नहीं है, इसलिए ईशत्व होने से ईश्वर हैं। वृहत् होने के कारण वे ब्रह्मा है, भूतत्त्व से भूत कहे जाते हैं।[3]

इन सभी शिव-स्वरूपों को देखकर यह कहना संगत हो सकता है कि जहाँ शिव एक देव के रूप में प्रतिष्ठित हुए, वहीं वे एक तत्त्व के रूप में भी कहे गए, जो शिव-दर्शन का आधार बना।

---

१. अजस्त्वमजरो देवः स्रष्टा विभुः परात्परम्।
प्रधानपुरूषो यस्त्वं ब्रहमध्येयं तदक्षरम्।।
अमृतं परमात्मा च ईश्वरः कारणं महत्।।

ब्र० पु० ३६।३९-४१

२. स्वमायया हयोऽखिलं चराचरम्।
सृजत्यवत्वत्ति न सज्जतेऽस्मिन्।
न तस्य तत्त्वं सनकादयोऽपि।
जानन्ति वेदान्तरहस्य विज्ञाः।।

वही० १२९।६८-६९

३. वा० पु० ५।३८-३९

शैव सिद्धान्त का क्रमिक विकास-

वेदों में रुद्र और शिव के सम्बन्ध में जो प्रारम्भिक संकेत थे, वे उपनिषदों में आकर अधिक स्पष्ट हो सके थे और वहीं पर शिव-सिद्धान्तों का प्रारम्भिक रूप भी कुछ-कुछ स्थिर हो सका था, जिसमें शिव को एक तत्त्व के रूप में देखा जाने लगा था। श्वेताश्वतर उपनिषद् में हम यह देख चुके हैं कि उस समय शिव एक ओर भक्तों के ईश्वर हैं, तो दूसरी ओर वे दार्शनिकों के परम पुरुष भी हैं। वहाँ पर परम पुरुष के रूप में शिव को परम सत्य और स्रष्टा माना गया है जो अपनी माया के द्वारा सृष्टि का कार्य सम्पन्न करते हैं। सृष्टि की अभिव्यक्ति में माया ही सक्रिय होकर कार्य करती है और पुरुष उसका केवल प्रेरक मात्र होता है।

शिव तत्त्व के इस विचार में सांख्य सिद्धान्तों का जो प्रभाव हुआ, वह पुराणों में आकर अधिक स्पष्ट हुआ जिनमें यह कहा गया कि शिव की सृष्टि में सक्रिय वह देवी है जो सर्जन करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं और शिव जिसमें केवल दर्शक मात्र रहता है। यही वह विचारधारा है जिसमें शिव एक देवता के रूप में प्रतिष्ठित रहे और बाद में वे माया के साथ मिलकर सृष्टि संरचना के परम पुरुष बन गये।

आगम ग्रन्थ और शैव दर्शनः-

इस विचारधारा को अधिक स्पष्ट आकार आगम ग्रन्थों ने दिया जिसमें शैव दर्शन को एक विशेष स्वरूप मिला और ये आगम ग्रन्थ ही शैव दर्शन के प्रामाणिक तथा आधार ग्रन्थ बने। इन ग्रन्थों में शिव को एक तत्त्व के

रूप में प्रतिष्ठित किया गया और उनके परम सत्य स्वरूप को प्रस्थापित करने के साथ-साथ उनको सृष्टि का सर्जक भी कहा गया। बाद में इसी का आधार लेकर विविध शैव दर्शन-मत प्रचलित हुए।

अपर कालिक शैव सिद्धान्तः-

इसके पश्चात् अर्थात् आगम काल के पश्चात् दक्षिण भारत में ही मुख्य रूप से शैव सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार होता रहा और पूर्व सिद्धान्तों में कोई बहुत बड़ा परिवर्तन नहीं हुआ। आचार्य शंकर ने अपने अद्वैतमत के द्वारा यद्यपि यत् किंचित् रूप में शैव दर्शन में आक्षेप किया किन्तु उनके विरोध में कोई बड़ी शक्ति उदित नहीं हुई और जब तक वे अपने अद्वैत का प्रचार-प्रसार करते रहे, तब तक शैव दर्शन भी अपने पूर्व स्वरूप में ही चलता रहा।

बाद में जब कश्मीर क्षेत्र में शैव सम्प्रादायों का प्रचार-प्रसार हुआ तो वे भी दक्षिण के शैव आचार्यों के अनुरूप ही शैव सिद्धान्तों की व्याख्या करते रहे और आगम ग्रन्थों को ही प्रमाण मानकर चलते रहे। इसी के साथ आचार्य वसु गुप्त ने यद्यपि विशुद्ध रूप से अद्वैत सिद्धान्त के अनुसार शैव मत की व्याख्या की, फिर भी कुछ आचार्य ऐसे भी हुए जो बाद में कश्मीरी शैव दर्शन के आधार भित्ति बने।

शैव सिद्धान्तों में शक्ति को उसी प्रकार शिव की समवर्तिनी माना जाता था, जिस प्रकार सांख्य में प्रकृति को। किन्तु प्रत्यभिज्ञा दर्शन में, जो कश्मीर में ग्रथित हुआ, शिवा को पुरुष की अभिव्यक्ति मात्र माना गया। इसी कारण वह परम शिव से अभिन्न है। उनकी अभिन्नता

इस प्रकार की है जैसे ज्वाला और अग्नि की अभिन्नता है। जो ज्वाला है वही अग्नि है और जो अग्नि है, वही ज्वाला है। यही दोनों की भिन्नता में अभिन्नता है।

समीक्षा और निष्कर्ष :-

इस रूप में हम यह देख सकते हैं कि शिव सिद्धान्त यद्यपि प्रारम्भ में रुद्र के एक देव के रूप में आरम्भ हुए, जिसमें रुद्र को रुलाने वाला और कर्षक देव के रूप में कहा गया किन्तु बाद में उपनिषदों की परम्परा से वे ही रुद्र शिव रूप में परिवर्तित हो गये और दया तथा करुणा के देवता बन गये।

शिव का यही रूप देव रूप में स्थापित रहते हुए ऐसे तत्त्व के रूप में भी विकसित हो गया, जो अज, अद्वैत और अचिन्त्य के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।

पुराणों में भी शिव का देव स्वरूप और एक विशेष तत्त्व के रूप में प्रतिष्ठापन हुआ जबकि शिव पुराण तथा लिंग पुराण में शिव देव रूप में भी प्रतिष्ठित हैं और एक सर्व व्यापक तथा सर्वातिशायी तत्त्व के रूप में भी स्थापित हैं। शिव स्वरूप और शैव दर्शन का एक वैशिष्ट्य यह है कि यह दोनों ही रूप में प्रारम्भ से लेकर आज तक प्रतिष्ठित और प्रचलित है। ऐसा किसी अन्य देवता और दर्शन के साथ नहीं दिखाई देता। यही इसकी विशेषता है।

आगम ग्रन्थों में शैव दर्शन का जो स्वरूप स्थापित हुआ है उसके अनुरूप यह है कि शिव ही सर्व श्रेष्ठ सत्य हैं। वे अनादि, अकारण और स्वयम् में परिपूर्ण हैं। वे सर्वज्ञ हैं, सर्वकर्ता हैं। उनके साधन स्वरूप उनकी शक्ति है, जिससे समन्वित होकर वे सृष्टि का कार्य सम्पादित करते हैं। वह

शक्ति शिव की समवर्तिनी है और उनसे अभिन्न है। अपनी इसी शक्ति के द्वारा शिव समस्त विश्व में इस प्रकार से व्याप्त हैं कि वे इससे भिन्न-अभिन्न नहीं प्रतीत होते हैं। किन्तु शिव का सृष्टि से तादात्म्य इसलिए सिद्ध नहीं किया जा सकता क्योंकि शिव विश्व से परे हैं और विश्व का अस्तित्त्व शिव के अन्दर है। विश्व और इसमें रहने वाले सभी शरीर हैं जिनकी आत्मा शिव हैं।

इसमें प्रतिपादित शैव सिद्धान्त के अनुसार जीवात्मा असंख्य और शाश्वत हैं। ये जीवात्मा परम शिव के अंश हैं परन्तु शिव से भिन्न नहीं हैं। दर असल, शिव और जीवात्मा परस्पर भेदाभेद सम्बन्ध से जुड़े हुए हैं। यह सम्बन्ध वैसा ही है जैसा ज्वाला और ताप का सम्बन्ध होता है। आत्मा का शिव के साथ तादात्म्य नहीं होता, अपितु वह उनके समक्ष एक आदर्श अवस्था में रहता है और परम शिव का प्रकाश उसे ज्योर्तिमय बनाए रखता है। इसमें जो विशुद्ध अद्वैतवाद का सिद्धान्त है उसके अनुसार विश्व ब्रह्म से पृथक् नहीं है, क्योंकि इस विश्व के पीछे ब्रह्म की ही एक मात्र सत्ता है। विश्व के नाम और रूप की अनेकता केवल माया है। माया का यथार्थ में कोई अस्तित्त्व नहीं है। माया की मायात्मकता शिव की शक्ति पर ही आश्रित है अथवा शिव में ही उसका तादात्म्य है। केवल सृष्टि काल में वह शिव से भिन्न दिखाई देती है।

उद्घृत ग्रन्थ सूची

क्रम सं०	पुस्तक का नाम	लेखक प्रकाशक
१.	अग्नि पुराण	आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज
२.	अथर्ववेद (प्रथम खण्ड)	संस्कृति संस्थान बरेली १६७६
३.	अथर्ववेद (द्वितीय खण्ड)	संस्कृति संस्थान बरेली १६७५
४.	अथर्वशिरस् १०८ उपनिषद् (ज्ञानखण्ड)	संस्कृति संस्थान बरेली १६७६
५.	अनुभव सूत्र	मयिदेव शोलापुर-१६०६
६.	ईशादिद्वादशोपनिषद्	कैलाश विद्या प्रकाशन ऋषिकेश १६७६
७.	ईशोपनिषद्	उपनिषद् संग्रह से
८.	ईश्वरप्रत्यभिज्ञा	सं० अय्यर एवं पाण्डेय सरस्वती भवन, इलाहाबाद
६.	ऋग्वेद	संस्कृति संस्थान बरेली
१०.	एपिग्राफाफिका कर्णाटिका भाग-२ एवं ३	
११.	कल्याण (भगवल्लीलाङ्क)	गीता प्रेस, गोरखपुर १६६८
१२.	कल्याण का संस्कृति अंक	गीता प्रेस, गोरखपुर १६५०
१३.	कृष्णयजुर्वेद तैत्तरीय संहिता	स्वाध्याय मण्डल १६५७
१४.	कौटिलीय अर्थशास्त्र	चौखम्भा विद्या भवन १६६२
१५.	गरुण पुराण	गीता प्रेस, गोरखपुर २०००
१६.	गीता	गोरखपुर प्रेस
१७.	जनरल आफ वेंकटेश्वर इन्स्टीट्यूट	भाग-७ एवं ८

१८.	तन्त्रालोक	अभिनव गुप्त काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली
१६.	तन्त्रालोकविवृति	काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली १६१८-३८
२०.	तैत्तरीय संहिता	बम्बई १८२३
२१.	देवी भागवत	बंगवसी प्रेस कलकत्ता
२२.	निरुक्त	यास्काचार्य
२३.	परमार्थसार	काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली श्री नगर १६१६
२४.	पद्म पुराण	डॉ. अशोक चक्रवर्ती
२५.	पद्म पुराण	सं०उी० अशोक चटर्जी
२६.	पातञ्जलि महाभाष्य	महर्षि पतञ्जलि
२७.	पुराणम्	वर्ष २ जुलाई १६६० काशिराज न्यास,प्रकाशित
२८.	पुराण विमर्श	आचार्य बलदेव उपाध्याय चौखम्बा विद्या भवन,वाराणसी १६८७
२६.	पुराणमीमांसा श्रीकृष्णमति	हि. प्र. मण्डल, लखनऊ १६६१
३०.	पुराण समीक्षा	श्री बल्देव उपाध्याय
३१.	प्रश्नोपनिषद्	गीता प्रेस, गोरखपुर
३२.	प्राचीन भारतीय साहित्य (प्रथम माला)	मोतीलाल बनारसी दास
३३.	ब्रह्माण्ड पुराण	खेमराज मुम्बई-१६०६

३४.	बौद्ध वेदान्त एवं काश्मीर शैवदर्शन	श्री सूर्यप्रकाश व्यास विवेक पब्लिकेशन, अलीगढ़ १९८६
३५.	भास्करी	सरस्वती भवन- १९५८
३६.	महाभारत	बम्बई संस्करण १९०६
३७.	महाभारत	गीता प्रेस, गोरखपुर १९५५
३८	मत्स्य पुराण	गीता प्रेस गोरखपुर १९८५
३९.	मालती माधव	भवनभूति कालका संस्करण बम्बई
४०.	मालती माधव	रा० कृ० भण्डारकर तृतीय संस्करण
४१.	मार्कण्डेय पुराण	बिब्लियोथ्किा इण्डिका
४२.	मार्कण्डेय पुराण	नाग, प्रकाशन १९८९
४३.	मैत्रायणी उपनिषद्	उपनिषद् संग्रह से
४४.	यजुर्वेद	संस्कृति संस्थान बरेली १९७६
४५.	रिलिजन एण्ड माइथलाजी आफ दी ऋग्वेद	डॉ० कीथ
४६.	लिंगपुराणम्	सं० आचार्य जगदीश शास्त्री मोतीलाल बनारसी दास १९८०
४७.	लिंग पुराण (हिन्दी टीका)	सं० डॉ. रामचन्द्र वर्मा धर्मग्रन्थ प्रकाशन, दिल्ली १९८७
४८.	वराह पुराण	बिब्लिमोथिक इण्डिका
४९.	वायु पुराण	आनन्दाश्रम संस्कृत सीरीज
५०.	वायु पुराण	नाग प्रकाशन, दिल्ली १९८३

५१.	विष्णु पुराण (प्रथम खण्ड)	संस्कृति संस्थान, बरेली १६८६
५२.	बाल्मीकि रामायण	निर्णय सागर प्रेस
५३.	वीरशैवाचार प्रदीपिका	पूना १६०४
५४.	वैदिक कोश	बनारस हिन्दू यूनिवसिटी १६६३
५५.	वैदिक माइथालाजी	मैक्डानल
५६.	वैष्णवशैव और अन्य धार्मिक मत	श्री रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर भारतीय विद्या प्रकाशन वाराणसी १६७७
५७.	वृहदारण्यकोपनिषद्	गीता प्रेस, गोरखपुर
५८.	स्कन्द पुराण	वेकटेश्वर प्रेस १६१६
५६.	सर्वदर्शन संग्रह(हिन्दी टीक)	प्रो. उमाशंकर शर्मा ऋषि चौखम्बा वाराण्सी १६६४
६०.	संस्कृत साहित्य का इतिहास अनु. श्री चारूचन्द्र शास्त्री	चौखम्बा १६६२
६१.	संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ्	रामनारायण लाल बेनीप्रसाद इलाहाबाद १६७७
६२.	सम्बन्ध सिद्धिः	काश्मीर संस्कृति ग्रन्थवली १६२१
६३.	सिद्धान्त कौमुदी (बाल मनोरमा)	चौखम्बा सं० सीरीज, वाराणसी १६५८
६४.	श्वेताश्वतरोपनिषद्	डॉ. तुलसीराम शर्मा ईस्टर्न बुक लिंकर्स दिल्ली १६७६
६५.	शतपथ ब्राह्मण	काशी वि० वि० १६६४
६६.	शांकर भाष्य श्वेताश्वतरोपनिषद्	ईस्टर्न बुक लिंकर्स दिल्ली १६७६

६७.	शिवतोषिणी टीका	सं० आचार्य जगदीश शास्त्री मोतीलाल बनारसीदास १६८०
६८.	शिवदृष्टिः	काश्मीर संस्कृत ग्रन्थावली १६३४
६६.	संक्षिप्त शिवपुराण	गीता प्रेस गोरखपुर सं० १६८६
७०.	शिवमहापुराण	सं० श्री रामतेज पाण्डेय चौखम्बा विद्या भवन वाराणसी १६८६
७१.	शुकनीतिसार	कलकत्ता १६६०
७२.	हिन्दू सभ्यता	डॉ० राधाकुमुद मुखर्जी राजकमल प्रकाशन दिल्ली १६६६
७३.	हिस्ट्री आफ अण्डियन लिटरेचर- भाग १	विण्टर नित्ज
७४.	Abhinava Gupta- An Historical & Philosophical Study (2)	Chaukhamba 1963
75-	Culture Heritage of Kasmir	S. C. Banerji Sanskrit Pustak Bhandar -Calcutta 1965
76-	Literalure and history of Southern Saivesm	Das Gupta
77-	Non DAULISM IN SHIVSHAKTI PHILO SOPHY	Pro.- Kundu भारतीय जागेश्वरी मठ, कलकत्ता
78-	Travels-Tra-S Beal	H.S. Trubner's Orilntal Series